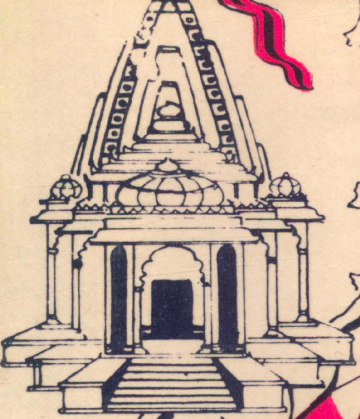


मूर्ति की सिद्धि एवं मूर्ति पूजा की प्राचीनता



-: लेखक :-

प. पू. आचार्य देव श्री मद्
विजय सुशील सूरीधरजी
महाराज साहेब



❀ सम्पादक ❀

जैनधर्मदिवाकर-राजस्थान-
दीपक - मरुधरदेशोद्धारक -
शासनरत्न - तीर्थप्रभावक -
परमपूज्याचार्यदेव श्रीमद्-
विजयमुशीलसूरीश्वरजी म.
सा. के विद्वान् पट्टधर-सुम-
धुरप्रवचनकार पूज्य पंन्यास
श्रीजिनोत्तमविजयजी गणि-
वर्य ।

卐

❀ सत्प्रेरक ❀

नित्यसूरिमन्त्रसमाराधक -
शास्त्रविशारद-साहित्यरत्न-
कविभूषण - बालब्रह्मचारी-
परमपूज्याचार्यदेव श्रीमद्-
विजयमुशीलसूरीश्वरजी म.
सा. के मुख्य पट्टधर-मधुर-
भाषी पूज्य वाचकप्रवरश्री-
विनोदविजयजी महाराज ।

卐

श्रीवीर सं. २५१६
प्रतियाँ-१०००

विक्रम सं. २०४६
प्रथमावृत्ति

नेमि सं. ४१
मूल्य २५) रुपये

❀ प्राप्ति-स्थान ❀

- (१) मुशील-सन्देश प्रकाशन मन्दिर
सुराणा कुटीर, रूपाखाना मार्ग, पुराने बस स्टेण्ड के पास,
सिरोही-३०७००१ (राजस्थान)
- (२) श्री अरिहन्त-जिनोत्तम जैन ज्ञानमन्दिर
जावाल, जिला-सिरोही (राजस्थान)
- (३) श्री नेमिनाथ जैन श्वेताम्बर तीर्थ
अम्बाजीनगर, फालना (राजस्थान)

❀ प्रकाशक ❀

आचार्यश्री मुशीलसूरि
जैनज्ञानमन्दिर
शान्तिनगर
सिरोही (राजस्थान)

卐
卐
卐

❀ मुद्रक ❀

ताज प्रिण्टर्स
जोधपुर
(राजस्थान)

संमर्ष...ण

जैनधर्मदिवाकर-राजस्थानदीपक - मरुधरदेशोद्धा-
रक-शास्त्रविशारद - साहित्यरत्न - कविभूषण-परमोप-
कारी-परमपूज्य-मुगुरुदेव आचार्य भगवन्त श्रीमद्
विजय सुशील सूरीश्वरजी म. सा. !

आपश्री ने विक्रम सं. २०२८ ज्येष्ठ (वैशाख)
वद पंचमी के दिन जन्मभूमि जावालनगर में ही भव-
कूप में से मेरा उद्धार कर श्री पारमेश्वरी प्रव्रज्या
(भागवती दीक्षा) प्रदान की। शास्त्राध्ययन और
विधिपूर्वक योगोद्धहन करवाया तथा सम्यग्दर्शन,
सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की निर्मल आराधना में
दिन-प्रतिदिन आगे बढ़ाया तथा गरिण-पंन्यास पद प्रदान
किया, इत्यादि अनेक उपकारों के प्रत्युपकार की मुझ
में तथाप्रकार की अल्प भी शक्ति न होते हुए भी उन
अगणित परोपकारों की स्मृति में यह आप द्वारा रचित
'मूर्ति की सिद्धि एवं मूर्तिपूजा की प्राचीनता' नामक
ग्रन्थरत्न आपके ही कर-कमलों में सादर-बहुमानपूर्वक
समर्पित करता हुआ मैं अत्यन्त आनन्दित होता हूँ।

आपका

लघुशिष्य-बालमुनि

पंन्यास जिनोत्तम विजय गरिण

प्रस्तावना

मन्दिर व मूर्ति की प्राचीनता, प्रामाणिकता, आवश्यकता और उपयोगिता पर दार्शनिक, चिन्तक एवं विद्वान् लेखक आचार्य सुशील सूरेश्वरजी महाराज साहब की पुस्तक “मूर्ति की सिद्धि एवं मूर्ति-पूजा की प्राचीनता” एक महती आवश्यकता को पूरा करती है। लेखक ने जिनागम सहित अनेक प्राचीन धर्मग्रन्थों का प्रमाण देते हुए मूर्तिपूजा की प्राचीनता को प्रमाणित करने का सफल प्रयास किया है। प्रस्तुत पुस्तक के लेखन की पृष्ठभूमि में आचार्यप्रवर की पूरे साठ वर्षों की दर्शन, ज्ञान, चारित्र्य और तप की आराधना व अनुभूति है जिसकी कल्पना सामान्य दृष्टि वाला व भौतिकज्ञान-प्राप्त व्यक्ति प्रायः नहीं कर सकता है।

इस तथ्य को सभी स्वीकार करते हैं कि भारतीय संस्कृति में मन्दिरों और मूर्तियों की प्रधानता ही नहीं रही है अपितु कश्मीर से कन्याकुमारी और सौराष्ट्र से पूर्वांचल सम्पूर्ण राष्ट्र में प्रायः प्रत्येक नगर और ग्राम

में श्रद्धालुओं द्वारा निर्मित हिन्दू, जैन व बौद्ध मन्दिर हमारी शिल्प और स्थापत्य कला के प्रतीक एवं हमारी संस्कृति के केन्द्र रहे हैं। धर्म और मोक्ष पुरुषार्थ में वे धर्माराधना के पवित्र स्थान व मोक्ष-प्राप्ति के उत्कृष्ट साधन माने गये हैं, अन्यथा हमारे पूर्वज उन पर अपार धनराशि क्यों व्यय करते, यह विचारणीय प्रश्न है।

मन्दिरों व मूर्तियों का निर्माण अनादिकालीन चला आ रहा है जिसका स्पष्ट प्रमाण है कि उनके भग्नावशेष व खण्डहर आदि समय-समय पर खुदाई में प्राप्त होते रहते हैं। मूर्तियों की प्राप्ति महासागरों में भी हुई है क्योंकि आज जहाँ पानी है उनमें से कई जगह हजारों लाखों वर्ष पूर्व भूमि व ग्राम थे। प्रायः विश्व की सभी प्राचीन सभ्यताओं में विभिन्न देवी-देवताओं व महापुरुषों की मूर्तियों को वन्दनीय माना गया है। जैन धर्म में भगवान महावीर के समय में उनके बड़े भाई नन्दिवर्धन द्वारा जीवंत स्वामी के नाम से जो मूर्तियाँ भराई गई वे आज भी सुरक्षित रूप से उपलब्ध हैं। 'नांणां, दियाणां नांदिया। जीवंतस्वामी वांदिया।' अर्थात् यह मान्यता है कि दक्षिण राजस्थान में सिरोही जिले में दियाणां व

नांदियां तथा पड़ोस में नांणां ग्राम की भगवान महावीर की मूर्तियाँ उनके जीवित समय की हैं । गुजरात में श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ की मूर्ति तो भगवान श्रीकृष्ण के समय आज से पच्चीस हजार वर्ष पूर्व की प्रकट प्रभावी एवं अत्यन्त चमत्कारिक प्रमाणित हुई है । परन्तु मूर्ति का चमत्कार हर किसी को प्राप्त नहीं होता है । साक्षात् गुरु से भी ज्ञान प्राप्त करने हेतु शिष्य की पात्रता व उसकी श्रद्धाभक्ति की आवश्यकता होती है । अतः मूर्ति से चमत्कारी अनुभव तो कोई पुण्यात्मा विरला ही प्राप्त करता है जिसका मन निर्मल और आत्मा पवित्र होती है । महाभारत का प्रत्यक्ष उदाहरण है कि जो धनुर्विद्या अर्जुन ने साक्षात् गुरु द्रोणाचार्य के चरणों में बैठकर प्राप्त की, वही विद्या श्रद्धालु भील बालक एकलव्य ने बिना किसी शिल्प या वास्तुकला के स्थापित गुरु की काल्पनिक मूर्ति के समक्ष स्वयं ही प्राप्त कर ली इसलिए उसने उसका श्रेय गुरु को ही देते हुए गुरु-दक्षिणा में सम्पूर्ण विद्या ही समर्पित कर दी ।

रामायण का यह उदाहरण कितना महत्त्वपूर्ण है कि भरत ने श्री रामचन्द्रजी की चरण-पादुका सिंहासन पर स्थापित कर वर्षों तक शासन चला लिया । अन्य

शब्दों में वे चरणपादुका साक्षात् श्री रामचन्द्रजी की प्रतीक बन गईं। इस दृष्टि से पत्थर की मूर्ति का शिल्पकार द्वारा निर्मित होना भी आवश्यक नहीं कहा जा सकता। वह धातु, काष्ठ, बालू या रेत की भी हो सकती है व उसका ऐसा कोई भी आकार स्वरूप हो सकता है जो उसके श्रद्धालु के मन-मन्दिर में स्थान प्राप्त कर सके। विद्वान् लेखक ने पृष्ठ ग्यारह पर सही लिखा है कि परमात्मा का स्वरूप तो निराकार है परन्तु हमें उसे पाने हेतु उसकी साकार आकृति-आकार का अवलम्बन लेना पड़ता है अन्यथा हम अधिक समय तक उसके सम्बन्ध में अपने ध्यान को केन्द्रित नहीं बनाये रख सकते हैं। इसीलिए मूर्ति अथवा किसी अन्य आकृति-आकार आदि को मानने का सिद्धान्त प्रायः विश्व-व्यापक है। धार्मिक कार्यों में ही नहीं अपितु अपने सामाजिक, व्यावसायिक एवं व्यावहारिक कार्यों में भी हम इनका सहारा किसी-न-किसी रूप से प्रतिदिन के जीवन में लेते रहते हैं जो अप्रत्यक्ष रूप से मन्दिर और मूर्ति की आवश्यकता स्वयं प्रमाणित कर देते हैं। हमारे धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रीय जीवन में भी राष्ट्रचिह्न व राष्ट्रध्वज आदि इसी मनोवृत्ति के प्रतीक हैं क्योंकि उनमें हम अपने राष्ट्र और मातृभूमि के दर्शन करते हैं। ऐसी

स्थिति में मन्दिर अथवा मूर्ति की मान्यता स्वतः सिद्ध हो जाती है ।

वर्तमान भारत में उत्तरप्रदेश की अयोध्या नगरी में राम जन्मभूमि/बाबरी मस्जिद का विवाद मन्दिर और मूर्तियाँ या उससे सम्बन्धित भूमि का ऐसा विवाद उपस्थित हुआ है कि जिसने असंख्य हिन्दुओं एवं मुसलमानों की भावनाओं को झकझोर दिया है और देश में नवम्बर १९८९ के आम चुनावों तक को चमत्कारिक रूप से प्रभावित किया है । अधिकांश हिन्दुओं में तो भगवान श्री राम की जन्मभूमि के मन्दिर के प्रति अटूट श्रद्धा-भक्ति विद्यमान होने से उस स्थान विशेष का लगाव होना स्वाभाविक है परन्तु मूर्तिपूजा के विरोधी अधिकांश मुसलमानों में उस भूमि के सम्बन्ध में मस्जिद के नाम पर उतना ही लगाव एवं आग्रह होना इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि मन्दिर, मूर्ति, मस्जिद, दरगाह, गिरजाघर आदि के प्रति अधिकांश व्यक्तियों की आस्था है क्योंकि वे उसे अपने आत्मोत्थान या इष्ट की प्राप्ति का मूल्यवान् एवं पवित्र साधन मानते हैं ।

विद्वान् लेखक ने पृष्ठ २४ पर विश्व के कई अन्य देशों के भी उदाहरण प्रस्तुत किये हैं जहाँ मूर्तियों के

भग्नावशेष मिले हैं। मूर्ति के सम्बन्ध में विभिन्न धर्मावलम्बियों के दृष्टिकोणों को भी उद्धृत करते हुए उन पर तर्कपूर्ण रूप से पुस्तक में विवेचन किया गया है।

पुस्तक सरल भाषा में परन्तु सारगर्भित रूप से विषय को पूर्णतया स्पष्ट करते हुए लिखी गई है जो लेखक के पुस्तक-लेखन के दीर्घ अनुभव का द्योतक है।

मैं गुरु-चरणों में वन्दन करते हुए व इस कृति की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए लेखक आचार्य सुशील सूरेश्वरजी का अपने मन-मस्तिष्क से सादर अभिनन्दन करता हूँ।

—डॉ० अमृतलाल गांधी
अवकाशप्राप्त प्राध्यापक (राजनीति शास्त्र)
जोधपुर विश्वविद्यालय



ॐ द्रव्य-सहायकों की शुभ नामावली ॐ

- [१] ५०००) प. पू. आचार्यदेव श्रीमद् विजय सुशील सूरेश्वरजी म. सा. के सदुपदेश से श्री मूथाजी मन्दिर की पेढी की ओर से; जोधपुर, राजस्थान ।
- [२] ५०००) सौजन्यमूर्ति स्वर्गीय प. पू. आचार्य श्री जिनेन्द्र सूरेश्वरजी म. सा. की पुण्य स्मृति में, श्रीमती तेजोबाई भीकमचन्दजी संघवी साध-
मिक ज्ञानखाता संचालित श्री साण्डेराव जिनेन्द्र-
भवन जैन धर्मशाला ट्रस्ट की ओर से;
पालीताणा, गुजरात ।
- [३] २१००) पूज्य मुनिराज श्री प्रमोद विजयजी म.
के सदुपदेश से श्री ओसवाल जैन संघ की ओर
से; देसूरी, राजस्थान ।
- [४] ११११) पूज्य उपाध्याय श्री विनोद विजयजी

महाराज के सदुपदेश से कैलाशनगर वाले शा. रतनचन्दजी चुन्नीलालजी परिवार की ओर से; जावाल, राजस्थान ।

[५] ११११) पूज्य पंन्यास श्री जिनोत्तम विजयजी गणि-महाराज के सदुपदेश से शा. समरथमल ताराचन्दजी कपूरचन्दजी की ओर से; जावाल, राजस्थान ।

[६] १०००) पूज्य मुनिराज श्री अरिहन्त विजयजी म. के सदुपदेश से संघवी श्री रिखबचन्दजी भूरमलजी लुम्बाजी कवरात वाले की ओर से; जावाल, राजस्थान ।

[७] १०००) पूज्य मुनिप्रवर श्री रत्नशेखर विजयजी म. के सदुपदेश से शा. रिखबदास चिमनाजी की ओर से; पालड़ी (सिरोही) राजस्थान ।

[८] १०००) पूज्य मुनिराज श्री शालिभद्र विजयजी म. के सदुपदेश से शा. शान्तिलाल छोगमलजी द्वारा; पालड़ी (थाना वाली) राजस्थान ।

[९] १०००) पूज्य मुनिराज श्री रविचन्द्र विजयजी

म. के सदुपदेश से गोइली श्री जैनसंघ पेढी की ओर से; गोइली, राजस्थान ।

[१०] ५००) शा. धरमचन्दजी केसरीमलजी पद्माजी जावाल, राजस्थान ।

[११] ५००) स्वर्गीय धर्मशिक्षिका पूरीबाई जेठालाल जी की ओर से । हस्ते-शा. धरमचन्द केसरीमल जी, जावाल (सिरोही) राजस्थान ।

[१२] २७५) पूज्य मुनिराज श्री प्रमोद विजयजी महाराज के सदुपदेश से शा. अचलचन्दजी हजारीमलजी तलेसरा के परिवार की ओर से; रानी स्टेशन, राजस्थान ।

[१३] १५१) शा. छोगालालजी दलीचन्दजी बुरड़ की तरफ से; लुणावस जि. जोधपुर राजस्थान ।



प्रकाशकीय निवेदन

‘मूर्ति की सिद्धि एवं मूर्तिपूजा की प्राचीनता’ नाम से समलंकृत यह ग्रन्थरत्न प्रकाशित करते हुए हमें अत्यन्त ही आनन्द हो रहा है ।

इस ग्रन्थरत्न के लेखक शासनसम्राट् समुदाय के सुप्रसिद्ध, १०८ ग्रन्थों के सर्जक, जैनधर्म-दिवाकर, राजस्थानदीपक, मरुधरदेशोद्धारक एवं शास्त्रविशारद परमपूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय सुशील सूरेश्वरजी म. सा. हैं ।

जगत् में मूर्ति की सिद्धि किस तरह से हो सकती है ? मूर्तिपूजा की प्राचीनता कितने वर्षों से है ? और अपने देवाधिदेव वीतराग विभु श्री जिनेश्वर भगवान के दर्शन एवं पूजन-पूजादि विधिपूर्वक करने से जीव-आत्मा को क्या-क्या लाभ मिलते हैं ?

इस विषय को सही रूप में समझने के लिए और समझाने के लिए शास्त्रीय प्राचीन-अर्वाचीन युक्ति युक्त अनेक पुरावा तथा उदाहरण-दृष्टान्तों सहित इस ग्रन्थ-रत्न के लेखक पूज्यपाद आचार्य महाराजश्री ने आगम-शास्त्रों का तथा मूर्त्तिपूजा विषयक मुद्रित अनेक ग्रन्थों-पुस्तकों आदि का अवलोकन कर और चिन्तन-मनन कर अतीव सुन्दर आलेखन अपने पट्टधर-शिष्यरत्न मधुरभाषी पूज्य उपाध्याय श्री विनोद विजयजी महाराज की सत् प्रेरणा से सरल हिन्दी भाषा में सुन्दर रीत्या किया है ।

इसका सम्पादन कार्य पूज्यपाद आचार्य म. सा. के पट्टधर-शिष्यरत्न सुमधुर प्रवचनकार पूज्य पंन्यास श्री जिनोत्तम विजयजी महाराज ने सावधानी पूर्वक किया है ।

इस ग्रन्थरत्न के स्वच्छ, शुद्ध एवं निर्दोष प्रकाशन का कार्य डॉ. चेतनप्रकाशजी पाटनी की देख-रेख में सम्पन्न हुआ है ।

ग्रन्थरत्न की प्रस्तावना लिखने वाले सिरोही वाले प्रोफेसर डॉ. अमृतलालजी गांधी जोधपुरनिवासी हैं ।

पूज्यपाद आचार्य म. सा. की आज्ञानुसार हमारे

प्रेस सम्बन्धी प्रकाशन-कार्य में पूर्ण सहकार देनेवाले जोधपुरनिवासी श्री सुखपालजी भंडारी, संघवी श्री गुणदयालचन्दजी भंडारी, श्री मंगलचन्दजी गोलिया, श्री मोतीलालजी पारेख तथा श्री प्रकाशचन्दजी बाफणा आदि हैं ।

सुशील-सन्देश के सम्पादक सिरोही निवासी श्री नैनमलजी सुराणा तथा नवयुवक विधिकारक श्री मनोज कुमार बाबूलालजी हरण इत्यादि ने भी इस विशिष्ट ग्रन्थरत्न को शीघ्र प्रकाशित करने की प्रेरणा की है ।

हम इन सभी महानुभावों का हार्दिक आभार मानते हैं और भविष्य में भी ऐसे ही सहयोग की अपेक्षा करते हैं ।



श्री महादेव-स्तुत्यष्टकम्

[कर्त्ता-पूज्याचार्य श्रीमद् विजय सुशील सूरीश्वरजी म.सा.]

(अनुष्टुप-वृत्तम्)

जगत्पूज्यं जगन्नाथं, जगद्गुरुं जिनेश्वरम् ।
निरञ्जनं निराकारं, महादेवं नमामि तम् ॥ १ ॥
राग-द्वेष-विनिर्मुक्तं, क्रोध-मानविनिर्जितम् ।
माया-लोभभयान्मुक्तं, महादेवं नमामि तम् ॥ २ ॥
सुरासुरनरैः सेव्यं, सिद्धं बुद्धं शिवङ्करम् ।
सर्वगुणानिधानं वै, महादेवं नमामि तम् ॥ ३ ॥
यस्य मूर्त्तिर्महारम्या, प्रशान्तं दर्शनं शुभम् ।
वदनपूर्णिमाचन्द्रं, महादेवं नमामि तम् ॥ ४ ॥
यस्य नेत्रद्वयं रम्यं, निर्विकारं च निर्मलम् ।
तथाष्टभोन्दुभालं वै, महादेवं नमामि तम् ॥ ५ ॥
यस्य करद्विकं श्रेष्ठं, शस्त्रादिरहितं सदा ।
तथा स्त्रीसङ्गशून्याङ्कं, महादेवं नमामि तम् ॥ ६ ॥
चारित्र्यमुत्तमं यस्य, सर्वभूताऽभयप्रदम् ।
माङ्गल्यं च प्रशस्तं वै, महादेवं नमामि तम् ॥ ७ ॥
अष्टकर्मविनिर्मुक्तं, केवलज्ञानसंयुतम् ।
कामदं भोक्षदं चापि, महादेवं नमामि तम् ॥ ८ ॥

(हरिगीत-वृत्तम्)

तपगच्छनायकनेमि - लावण्य - दक्षसूरिवराणां,
पट्टधराचार्य-सुशील-सूरिणा सुप्रसन्न-मनसा ।
विधिकारक-श्रीमनोजकुमार-प्रार्थनया रचितं,
महादेवस्तुत्यष्टकमिदं, सर्वमङ्गलसिद्धिदम् ॥ ९ ॥ ॐ

◉ विषयानुक्रमणिका ◉

क्र. सं.	विषय	पृ. सं.
१	मंगलाचरणम्	१
२	विश्व में सर्वश्रेष्ठ आलम्बन	२
३	अनादिकालीन आकार	५
४	जड़ और चेतन	७
५	साकार और निराकार	११
६	'मूर्ति' शब्द का व्युत्पत्त्यर्थ	१२
७	मूर्ति शब्द के पर्यायवाची शब्द	१३
८	मूर्ति का विश्वव्यापक सिद्धान्त	१४
९	पूजा शब्द का अर्थ	१५
१०	पूजा शब्द के पर्यायवाची शब्द	१६
११	मूर्तिपूजा की अत्यन्त आवश्यकता	१७
१२	मूर्तिपूजा का प्राचीन इतिहास	२२
१३	मूर्तिपूजा का पवित्र उद्देश्य	३२
१४	मूर्तिपूजा के विरोधी भी मूर्तिपूजा को मानते हैं	३४
१५	मूर्तिपूजा को शाश्वतता एवं पारमार्थिक साधकता	३६
१६	मूर्तियों का प्रभाव	४५
१७	मूर्ति के दर्शन-पूजन से लाभ	५७

क्र. सं.	विषय	पृ. सं.
१८	प्रभु की पूजा में दानादि चार धर्मों की आराधना	६०
१९	प्रभु के दर्शन-पूजन से अष्ट कर्म का क्षय	६१
२०	मूर्त्ति को नहीं मानने से नुकसान	६४
२१	जिनमन्दिरों की उपयोगिता	६७
२२	चैत्य शब्द का वास्तविक अर्थ	७१
२३	जिनमूर्त्ति-जिनप्रतिमा कैसी है और क्या करती-कराती है ?	७५
२४	अशुभालम्बन से आत्मभाव में अशुद्धता और शुभालम्बन से शुद्धता	८६
२५	सगुण से निर्गुण और साकार से निराकार	८८
२६	जिनमूर्त्ति की पूजादिक से रोगादिक का दूरीकरण और अनुपम लाभ	९०
२७	जिनमूर्त्तिपूजा में हिंसासम्बन्धी शंका और समाधान	९७
२८	मूर्त्ति की वन्दनीयता एवं पूजनीयता के शास्त्रीय प्रमाण	१०३
卐	शिव (शंकर) पार्वती संवाद	१३६
卐	जिनमूर्त्तियों तथा जिनमन्दिरों को बनवाने वाले भूतकाल के भाग्यशाली महापुरुष	१५४
❀	दर्शनपाठ	१६२
❀	प्रार्थनामङ्गलम्	१६४
卐	स्तुति-चौबीसी	१७३
卐	श्री चतुर्विंशति जिनस्तुति	१८०
❀	श्री जिनपूजादि चैत्यवन्दनादि फल	१८६
❀	श्री शाश्वता-अशाश्वता जिन चैत्यवन्दन	१८८
卐	श्री जिनबिम्ब स्थापना-स्तवन	१९१

क्र. सं.	विषय	पृ. सं.
卐	श्री जिनप्रतिमास्थापन-स्तवन	१६३
卐	श्री जिनप्रतिमा-स्थापन-श्री शान्तिनाथ जिनस्तवन	१६६
✽	श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ जिनस्तवन	१६६
✽	श्री जिनप्रतिमानुं स्तवन	२०१
卐	श्री जिनमूर्त्ति स्थापन स्तवन	२०६
✽	जिनपूजादि-फल स्तवन	२११
卐	जिनमूर्त्ति-महिमा का गीत	२१६
✽	श्री शाश्वत जिन-स्तुति	२१७
卐	श्री वीतरागदेव की भक्ति	२१८
✽	तीर्थवन्दना-सूत्र	२१६
卐	जिनमूर्त्ति वन्दन-पूजनादि-समर्थक श्लोकादि	२२४
✽	उपसंहार	२३५
	परिशिष्ट-१	
✽	मूर्त्तिपूजा विषयक प्रश्नोत्तरी	२३८
	परिशिष्ट-२	
卐	मूर्त्ति की नहीं, बल्कि मूर्त्तिमान् कौ पूजा एक परिचय	२४८
	परिशिष्ट-३	
✽	श्री जिनप्रतिमाष्टकम्	२६२
卐	श्री प्रतिमा-छत्रासी	२६६
✽	जिन स्तवन	२७७
✽	वि. सं. २०४५ देसूरी-चानुर्मास विवरण	२८०
✽	वि. सं. २०४६ में शासनप्रभावना की संक्षिप्त बोध	३१८
✽	सद्वाचनामृत	३२१

卐 श्री नमस्कार-महामन्त्राष्टकम् 卐

[कर्त्ता-पूज्याचार्यदेव श्रीमद् विजय सुशीलसूरिः]

(अनुष्टुप्-छन्दः)

नमस्कार-महामन्त्रं, सनातनं च शाश्वतम् ।
प्रोक्तं जिनेश्वरैर्देवैः, प्रख्यातं भुवनत्रये ॥ १ ॥
मन्त्रेषु मुख्यमन्त्रं वै, न कोऽपि तुल्यकं तथा ।
निखिलमङ्गलेष्वेव, प्रथमं मङ्गलं वरम् ॥ २ ॥
श्रीअर्हद्भ्यो नमो नित्यं, श्रीसिद्धेभ्यो नमः पुनः ।
आचार्येभ्यो नमो भक्त्या, वाचकेभ्यो नमस्तथा ॥ ३ ॥
लोके समस्तसाधुभ्यो, नमो नित्यं पुनः पुनः ।
एतद् महाश्रुतस्कन्धं, श्री पञ्चपरमेष्ठिनम् ॥ ४ ॥
सर्वविघ्नहरं नित्यं, सर्वपापप्रणाशकम् ।
सर्वदुःखहरं चैव, सर्वकर्मविनाशकम् ॥ ५ ॥
सकल-ऋद्धिदातारं, सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।
कामदं मोक्षदं चैव, मनोवाञ्छितपूरकम् ॥ ६ ॥
एतद् मन्त्रं स्मरेद् देवाः, दानवाश्च नृपाः नराः ।
योगिनो भोगिनश्चैव, रंकादयोऽपि सर्वदा ॥ ७ ॥
जिनेन्द्र-द्वादशाङ्गीनां, रहस्यं तदेतस्मिन्नपि ।
श्रीचतुर्दशपूर्वाणां, पूर्णसारं हि मन्त्रके ॥ ८ ॥
इदं मन्त्राष्टकं नित्यं, पठनात् स्मरणात् तथा ।
जापाच्च सोऽपि प्राप्नोति, सुशीलपदमव्ययम् ॥ ९ ॥

卐

शासन समाद परम पूज्य आचार्य
महाराजाधिराज श्रीमद् विजय

ॐ

ॐ

साहित्य समाद परम पूज्य
आचार्य देवेश श्रीमद् विजय

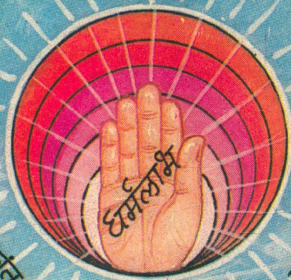
धर्म प्रभावक परम पूज्य
आचार्य प्रवर श्रीमद् विजय



नेमिसूरीश्वरजी महाराज साहेब

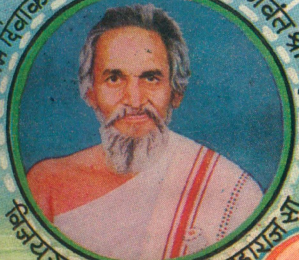
लावण्यसूरीश्वरजी महाराज सा.

दक्षसूरीश्वरजी महाराज सा.



नेने धर्म दिवाकर परम पूज्य आचार्य भगवत श्रीमद्

सुमधुर प्रवचनकार परम पूज्य मुनिराज श्री



विजय सुशील सूरीश्वरजी महाराज सा.

श्रीगिनीतम विजयजी महाराज सा.



योगेश आर्ट पालीताना

ॐ ह्रीं अहं नमः ॐ

॥ शासनसम्राट्-श्रीविजयनेमिसूरीश्वर-परमगुरुभ्यो नमः ॥

॥ साहित्यसम्राट्-श्रीविजयलावण्यसूरीश्वर-प्रगुरुभ्यो नमः ॥

मूर्ति की सिद्धि
एवं
मूर्तिपूजा की प्राचीनता

मंगलाचरणम्

सकलार्हत्-प्रतिष्ठान-मधिष्ठानं शिवश्रियः ।

भूर्भुवः स्वस्त्रयीशान-मार्हन्त्यं प्रणिदध्महे ॥ १ ॥

अर्थ—सभी अरिहन्तों की प्रतिष्ठा के कारण, मोक्ष-
लक्ष्मी के आधार, पाताल, मृत्युलोक और स्वर्ग, इन तीनों
लोकों के स्वामी ऐसे अर्हत् पद का हम ध्यान करते
हैं ॥ १ ॥

नामाकृतिद्रव्यभावेः, पुनतस्त्रिजगज्जनम् ।

क्षेत्रे काले च सर्वस्मिन्नर्हतः समुपास्महे ॥ २ ॥

त-१ मूर्ति की सिद्धि एवं मूर्तिपूजा की प्राचीनता-१

अर्थ—सब क्षेत्रों में और सब कालों में नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव के द्वारा तीनों जगत्-भू, भुवः, स्वर्ग के प्राणियों को पवित्र करने वाले अरिहन्तों की हम उपासना करते हैं ॥ २ ॥

—सकलाहंत्स्तोत्रे प्रोक्तमिति

पाताले यानि बिम्बानि, यानि बिम्बानि भूतले ।
स्वर्गेषुपि यानि बिम्बानि, तानि वन्दे निरन्तरम् ॥ ३ ॥

अर्थ—पाताललोक में विद्यमान, भूतल पर विद्यमान तथा स्वर्गलोक में विद्यमान सभी जिनबिम्बों की मैं निरन्तर वन्दना करता हूँ ॥ ३ ॥

(१) विश्व में सर्वश्रेष्ठ आलम्बन

अनादि और अनन्तकालीन विश्व-जगत् में अनादि काल से चौरासी लाख जीवायोनी में चारों गतियों में परिभ्रमण करने वाले संसारी जीवों के लिए संसार-सागर से पार उतरने के लिये अर्थात् तिरने के लिये और मोक्ष का शाश्वत सुख पाने के लिये सद्धर्म के अनेक प्रशस्त आलम्बन हैं । उनमें भी प्रशस्ततम दो ही आलम्बन सर्वोत्कृष्ट यानी सर्वश्रेष्ठ हैं—‘जिनबिम्ब और जिनागम ।’

इस अवसर्पिणी काल के पंचम आरे में धर्मी जीवों-

धर्मात्माओं को भवसिन्धु पार करने के लिये स्टीमर-नौका-जहाज के समान प्रशस्ततम ये दो आलम्बन ही अत्युत्तम हैं। इस सम्बन्ध में पंडित श्री वीरविजयजी महाराज कृत चौंसठ प्रकारी पूजा के अन्तर्गत अन्तरायकर्म-निवारण की सातवीं पूजा में कहा है कि—

अरूपी पण रूपारोपण से,
 ठवणा अनुयोगद्वारा ॥ जिणंदा ॥
 विषमकाल जिनबिम्ब जिनागम,
 भवियणकुं आधारा ॥ जिणंदा ॥ ५ ॥

आत्मा निमित्तवासी है। जगत् में उसके उन्नत और अवनत होने में निमित्त कारण की ही मुख्यता है। इसलिये प्रत्येक आत्मा का यह कर्त्तव्य है कि यदि वह अपनी उन्नति करना चाहे तो उसको अच्छे निमित्तों में रहना चाहिये और अच्छे प्रशस्त आलम्बन ग्रहण करने चाहिये।

विश्व में प्रायः प्रत्येक धर्म में प्रभु-परमेश्वर के दर्शन, वन्दन और पूजन को आत्मा के उन्नत होने में सर्वोत्कृष्ट निमित्त-आलम्बन माना गया है। जगत् में सुप्रसिद्ध ऐसे जैनधर्म में भी श्री जिनेश्वरदेव की अनुपम उपासना-सेवा-

भक्ति को आत्मोन्नति में प्रथम साधन स्वरूप बतलाया गया है। वह उपासनादि उनके नाम-स्मरण, गुणोत्कीर्तन, दर्शन, वन्दन, पूजन एवं आज्ञापालन इत्यादिक से की जा सकती है। प्राकृतिक नियम के अनुसार विश्व के प्राणियों का विशेष-अधिक भुकाव मूर्ति-प्रतिमा-प्रतिबिम्ब की ओर देखा जाता है। क्योंकि मूल वस्तु-पदार्थ को पहचानने और स्मरण करने में प्रत्येक प्राणी को मूर्ति या चित्र की आवश्यकता रहती है। ऐसा माने बिना किसी का भी व्यवहार विश्व में नहीं चल सकता।

जीवों के कल्याण और मूर्तिपूजा इन दोनों का परस्पर अति घनिष्ट सम्बन्ध है। ऐसे वीतरागीदेवों की तथा त्यागी परमपुरुषों-दिव्यपुरुषों-महापुरुषों की मूर्तियों के आलम्बन से ही संसारी जीवों की अनादिकालीन पापवासनाएँ मंद होती हैं, विषय और कषाय का तीव्र वेग कम होता है, संसार के आरम्भ-समारम्भ और परिग्रह के त्याग की भावना का जन्म-उत्थान होता है। इतना ही नहीं, किन्तु सन्मार्ग की ओर अग्रसरता-मुख्यता स्थायी हो जाती है; तथा अहर्निश सुन्दर उच्च गुणों का आदर्श मिलता ही रहता है।

आत्मा में अनन्त गुण हैं, किन्तु उन गुणों में मुख्य

तीन गुण सुप्रसिद्ध हैं—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र्य । उन्हीं के विकास के लिये एवं उन्हीं गुणों की सम्यग् आराधना के लिये अपने आगमशास्त्रों में अनेक अनुष्ठान बतलाये हैं ।

इसमें दर्शनविशुद्धि का महान् आलम्बन जिनबिम्ब-जिनमूर्ति-जिनप्रतिमा है । वीतराग परमात्मा जिनेश्वर-देव के दर्शन, वन्दन एवं पूजन से ही अन्त में आत्मदर्शन होता है । जैसे ज्योति से ज्योति प्रगट होती है, वैसे ही वीतराग परमात्मा के दर्शनादिक से आत्मस्वरूप की पहचान होती है । जिनमूर्ति-प्रभुप्रतिमा के आलम्बन-योग से ही आत्मा को अपनी प्रभुता का ख्याल आता है । इससे यह सिद्ध होता है कि संसारी आत्मा को परमात्मा बनने के लिये सारे विश्व में सर्वश्रेष्ठ आलम्बन जिनबिम्ब एवं जिनागम ही हैं । उनकी तुलना में अन्य कोई श्रेष्ठ आलम्बन नहीं है ।

(२) अनादिकालीन आकार

अनादिकालीन विश्व के साथ मूर्ति एवं मूर्तिपूजा का घनिष्ट सम्बन्ध है अर्थात् मूर्ति एवं मूर्तिपूजा का इतिहास मानव जाति के साथ जुड़ा हुआ है । इस विश्व

में जब से मानव जाति का अस्तित्व है तब से ही मूर्ति एवं मूर्तिपूजा विद्यमान है। इसका कारण यही है कि— 'विश्व ही स्वयं मूर्तिमान् पदार्थों का समूह है।' अर्थात्-समस्त विश्व मूर्तिमान् पदार्थों का समुदाय रूप है। जितना ही प्राचीन यह विश्व-जगत् है, उतनी ही प्राचीन मूर्ति तथा उसकी पूजा-अर्चना है।

सर्वज्ञ जिनेश्वर-तीर्थंकर भगवन्त भाषित जैनसिद्धान्त-आगमशास्त्रों में धर्मास्तिकाय इत्यादि 'षट्द्रव्य' अविनश्वर शाश्वत बतलाये गये हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं— (१) धर्मास्तिकाय, (२) अधर्मास्तिकाय, (३) आकाशास्तिकाय, (४) पुद्गलास्तिकाय, (५) जीवास्तिकाय और (६) काल। इनमें पाँच द्रव्य अमूर्त यानी अरूपी हैं और एक द्रव्य मूर्त यानी रूपी है। इस विश्व में धर्मास्तिकाय इत्यादि पाँच द्रव्य अमूर्त कहे जाते हैं। सिर्फ एक पुद्गलास्तिकाय द्रव्य ही मूर्त कहा जाता है। इतना होते हुए भी धर्मास्तिकायादि पाँच अमूर्त द्रव्यों का ज्ञान भी मूर्त पुद्गलास्तिकाय द्रव्य से ही होता है। इन अमूर्त द्रव्यों का भी कोई आकारविशेष माना गया है। यावत् अलोकाकाश या जहाँ पर केवल एक आकाश द्रव्य ही है, वहाँ पर उसको भी गोले जैसे आकृति-आकार वाला माना

है। अतएव मूर्तिमान् द्रव्य अनादि और अनन्त हैं। जब मूर्त्त द्रव्य अनादि है तो मूर्त्ति को भी अनादिकालीन मानना ही पड़ेगा। इस प्रकार आकृति-आकार को तथा मूर्त्ति-प्रतिमा को मानने का इतिहास विश्व की विद्यमानता-अस्तित्ता तक सर्वकाल के लिये सर्जित ही है। इसमें संदेह-संशय करने की या रखने की आवश्यकता नहीं है।

(३) जड़ और चेतन

विश्व में जड़ और चेतन दोनों ही पदार्थों की विद्यमानता है। सदा ही जड़ पदार्थ जड़ रूप में रहता है और चेतन पदार्थ चेतन रूप में। अर्थात् न जड़ कभी चेतन हो सकता है और न चेतन कभी जड़।

“पत्थरप्रमुख से बनी हुई मूर्त्ति-प्रतिमा को भगवान कहना और भगवान स्वरूप मानना गलत ही है। कारण कि वह तो मात्र पत्थरप्रमुख की एक जड़ आकृति है, अर्थात् अचेतन द्रव्य है। शिल्पी-कारीगर द्वारा बनाया हुआ एक प्रकार का खिलौना-रमकड़ा है। उससे चेतन स्वरूप आत्मद्रव्य को कुछ भी लाभ नहीं हो सकता है, तो फिर मूर्त्ति-प्रतिमा क्यों मानना और पूजना ?”

ऐसी बातें करने वाले और मूर्ति-प्रतिमा को अचेतन तथा निरर्थक मानने वाले महानुभाव जरा गहराई से सोचें—सत्य को स्वीकारें और आत्मोन्नतिकारक सन्मार्ग तरफ प्रयाण करें। भगवान की मूर्ति-प्रतिमा अचेतन और निरर्थक होने से कुछ भी लाभ नहीं कर सकती है, तो संसारवर्द्धक ऐसे सिनेमा टी.वी. इत्यादिक में जो-जो दृश्य आते हैं वे भी किसी प्रकार का कुछ भी नुकसान नहीं कर सकेंगे। क्योंकि वे भी अचेतन द्रव्य हैं। यदि जो वे अचेतन द्रव्य भी अपनी आत्मा को कामी-विषयी विकारी और खूनी-हिंसक इत्यादि बना सकते हैं, तो वीतराग विभु की मूर्ति-प्रतिमा भी अपनी आत्मा को अकामी-अविषयी, निर्विकारी और अखूनी-अहिंसक इत्यादि अवश्य बना सकती है। अचेतन आकृति-आकार का विकारी दृश्य चैतन्यवंत विकारी व्यक्ति को बरबाद कर सकता है और अधोगति में ले जाता है तथा अचेतन आकृति-आकार का निर्विकारी दृश्य निर्विकारी व्यक्ति को उन्नत बनाता है और ऊर्ध्वगति में ले जाता है।

अचेतन वस्तु-पदार्थों में क्या ताकत और कितनी शक्ति है, वह तो प्रायः सभी लोक जानते ही हैं। यह बात तो सारे संसार में सर्वत्र प्रसिद्ध है। शराब-मदिरा पीने

वाले की क्या दशा होती है, वह कैसा पागल बनता है और मादक भोजन करने वाले की भी क्या दशा होती है, वह कैसा उन्मादी बनता है; इन बातों का सबको पता है। अरे ! एक छोटा सा बच्चा भी यह बात जानता है ।

(१) मूर्ति-प्रतिमाजी का विरोध करने वाले लोग अपने पूज्य पिताजी की छवि-फोटो देखकर प्रणाम करते हैं, इतना ही नहीं किन्तु उनके प्रति अपनी हार्दिक भावना प्रदर्शित करते हैं ।

(२) मूर्ति-प्रतिमाजी का विरोध करने वाले लोग दीवाली के प्रसंग पर धनतेरस के दिन चांदी के सिक्कारूपये आदि का दूध से प्रक्षालन करते हैं ।

(३) मूर्ति-प्रतिमाजी का विरोध करने वाले लोग दीवाली के दिन बहीपूजन के प्रसंग पर दुकान के चौपड़े आदि का विधिपूर्वक पूजन श्रद्धा से करते हैं ।

(४) मूर्ति-प्रतिमाजी का विरोध करने वाले लोग दुकान के दरवाजे खोलने के बाद प्रवेश द्वार की यष्टि-लकड़ी या भूमि-जमीन को अपना मस्तक-सिर भुकाकर हाथ से तीन बार स्पर्श करते हैं ।

(५) मूर्ति-प्रतिमाजी का विरोध करने वाले ऐसे साधु-संत भी अपने गुरु के फोटो और खुद अपने फोटो की भी प्रभावना बँटवाते हैं। इतना ही नहीं, अब तो आगे बढ़कर गुरुमन्दिर एवं स्तूप आदि का निर्माण कार्य भी उपदेश एवं प्रेरणा द्वारा करवाते हैं।

उनको यह सब तो मंजूर है, लेकिन भगवान की मूर्ति-प्रतिमा-फोटो इत्यादि नामंजूर है। क्योंकि वह जड़ है। इस तरह कहने वाला ही जड़ जैसा होगा। उन्हें अपने कदाग्रह को छोड़कर स्वयंबुद्धि से विचारना चाहिये कि—जैसे अपने सामने दो कागज पड़े हैं। एक कोरे कागज के अलावा दूसरे कागज पर सरकार की टकसाल द्वारा एक, सौ, हजार रुपये की मोहर छाप पड़ी है तो उसकी कीमत कितनी बढ़ जाती है; वैसे ही जब कुशल कारीगरों द्वारा पत्थर इत्यादि से बनाई हुई मूर्ति-प्रतिमा पर आचार्य महाराज आदि द्वारा अंजनशलाका-प्राणप्रतिष्ठा विधि से प्राण पूरे जाते हैं तब वह मूर्ति-प्रतिमाजी साक्षात् परमात्मा स्वरूप-दिव्यरूप धारण करती है।

वह मूर्ति-प्रतिमा प्रतिदिन वन्दनीय एवं पूजनीय बनती है। नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव, इन चारों

निक्षेपों से पूजनीक ऐसी वीतराग विभु-प्रभु की मूर्ति-प्रतिमाजी को हमारा हरदम कोटि-कोटिशः वन्दन-नमस्कार हो ।

(४) साकार और निराकार

विश्व में साकार और निराकार दोनों ही पदार्थ हैं । परमात्मा विश्वव्यापक है इसलिये वे विभु, प्रभु, परमेश्वर कहलाते हैं ।

परमात्मा का स्वरूप निराकार है । वे निराकार होते हुए भी आकार से ही पाये जाते हैं । क्योंकि विश्व में किसी प्रकार की भी निराकार वस्तु-पदार्थ आकृति-आकार से ही उपलब्ध होती है । निराकार ऐसे विश्व-व्यापक विभु-प्रभु-परमेश्वर को भेंटने के लिये और उनकी मूर्ति-प्रतिमा के दर्शन-वन्दन-पूजन करने के लिये मन्दिर में जाना होता है । जैसे-पुष्प में विद्यमान 'सौरभ-सुगन्ध' निराकार है । उसको पाने के लिये आकारवन्त पुष्प-फूल के पास जाना ही पड़ेगा । वैसे ही निराकार परमात्मा को पाने के लिये आकृति-आकार का अवलम्बन अति-आवश्यक है । बिना आकृति-आकार निराकार की प्राप्ति होना असम्भव है । इसलिये कहा जाता है कि—

आकृति-आकार बिना निराकार नहीं ,
और मूर्ति-प्रतिमा बिना प्रभु-परमात्मा नहीं ।

अर्थात्-परमात्मा ज्ञान से सर्वव्यापक होते हुए भी मूर्ति-प्रतिमा के आलम्बन बिना प्राप्त नहीं हो सकते हैं । इसलिये परमात्मा की मूर्ति-प्रतिमा का आलम्बन अवश्य लेना चाहिये । परमात्मा की मूर्ति-प्रतिमा का आकार-आकृति देखने से परमात्मा का असली स्वरूप अपने आप अपनी दृष्टि में आ जाता है । परमात्मा की मूर्ति-प्रतिमा देखते ही अपना अन्तःकरण-हृदय अनुपम-भक्ति और आनन्द से भर जाता है, मन रूपी मयूर नाच उठता है और शरीर रोमांचित हो उठता है ।

(५) 'मूर्ति' शब्द का व्युत्पत्त्यर्थ

'मूर्च्छा=मोह-समुच्छ्राययोः' अर्थात् मूर्च्छा धातु मोह और समुच्छ्राय अर्थ में है । इसलिये मूर्ति शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार होती है—'मूर्च्छति समुच्छ्रयतीति मूर्तिः' सम्-सुष्ठु उत्-ऊर्ध्व श्रयः—श्रवणं-समुच्छ्रय; समुच्छ्रयः एव समुच्छ्रायः । अर्थात्-अच्छी तरह उच्च सुख के लिये यानी परम शान्ति के लिये या परमसुख के लिये अथवा उच्च लोक के लिये जिसकी उपासना-सेवा-भक्ति की जाय,

अर्थात् जिसका आश्रय-आलम्बन लिया जाय उसे 'मूर्ति' कहते हैं ।

(६) मूर्ति शब्द के पर्यायवाची शब्द

मूर्ति शब्द के पर्यायवाची शब्द अनेक हैं इस विषय में—

(१) कलिकालसर्वज्ञ श्रीमद् हेमचन्द्रसूरीश्वरजी महाराज विरचित 'श्री अभिधान चिन्तामणि कोष' में कहा है कि—“मूर्तिः पुनः प्रतिमायां कायकाठिन्ययोरपि” अर्थात्—मूर्ति शब्द प्रतिमावाचक है, काय (देह-शरीर) वाचक है और कठिनता (कड़ापन) वाचक है ।

(२) कवि श्री अमरसिंह ने 'अमर कोष' में कहा है कि—

गात्रं वपुः संहननं, शरीरं वर्ष्म विग्रहः ।

कायो देह क्लीव पुंसोः, स्त्रियां मूर्तिस्तनुस्तनूः ॥

अर्थात्—गात्र, वपुस्, संहनन, शरीर, वर्ष्म, विग्रह, काय, देह, मूर्ति, तनू, ये ग्यारह शब्द मूर्ति के पर्यायवाची हैं ।

(३) मत्कृतिः—'सुशीलनाममाला' ग्रन्थ में भी कहा

है—*प्रतिमा नामानि* “प्रतिमा १ प्रतिमान २ च्च, प्रतिकायः ३ प्रतिकृतिः ४ ॥ २६६० ॥ प्रतिच्छाया ५ प्रतिच्छन्दः ६, प्रतिरूपं ७ प्रतिनिधिः ८ । प्रतिबिम्ब ९ प्रसिद्धं वै, तथाऽर्वा १० प्रतियाति नाथ ११ ॥ २६६१ ॥ एतन्नामानि मन्यन्ते, प्रति-मायाश्च पण्डितैः” ।

- | | | |
|----------------------|---|------------------------|
| १. मूर्ति का अर्थ है | — | आकार, आकृति । |
| २. ” | — | पडिमा, प्रतिमा । |
| ३. ” | — | प्रतिबिम्ब, प्रतिरूप । |
| ४. ” | — | प्लान, नक्शा । |
| ५. ” | — | चित्र, छवि, फोटो । |

ये सभी एक ही अर्थ के सूचक पर्यायवाची शब्द हैं ।

(७) मूर्ति का विश्वव्यापक सिद्धान्त

उक्त इन आकृति-आकारों को किसी-न-किसी प्रकार से स्वीकार किये बिना अर्थात् आदर किये बिना किसी वस्तु-पदार्थ का काम नहीं चल सकता । एक छोटे शिशु-बालक से लगाकर यावत् बड़े ज्ञानी तक सभी को अपने अभीष्ट-इच्छित की सिद्धि के लिये सबसे पूर्व मूर्ति-प्रतिमा की अत्यन्त आवश्यकता रहती ही है । विश्व में चाहे वह धार्मिक कार्य हो, व्यावहारिक कार्य हो, सामाजिक कार्य

हो अथवा वैज्ञानिक, कोई भी कार्य हो, किन्तु मूर्ति एवं आकृति-आकार को माने बिना न तो इतना ज्ञान हो सकता है और न किसी का कार्य-काम भी चल सकता है ।

इसलिये मूर्ति एवं आकृति-आकार को मानने का सिद्धान्त विश्व व्यापक है । जिस तरह सोना और उसका पीला वर्ण-रंग अभिन्न है, उसी तरह विश्व और मूर्ति अभिन्न है, अर्थात्—जैसे सुवर्ण और उसमें विद्यमान पीलेपन को कभी अलग नहीं किया जा सकता है, वैसे ही विश्व से उसके आकार की मूर्ति को भी अलग नहीं किया जा सकता ।

(द) पूजा शब्द का अर्थ—

मूर्ति शब्द के साथ लगे हुए 'पूजा' शब्द का भी व्युत्पत्ति-अर्थ इस प्रकार है—'पूज्-पूजायाम्', अर्थात् पूज् धातु पूजन अर्थ में है । अतः पूज्यते-मनसा वाचा फूल-फल-धूप-दीप-जल-गन्धाक्षतादिना सत्कारविशेषो विधीयतेऽने-नेति पूजनम्, पूजनमेव पूजा' । अर्थात्—मन से, वचन से और सामयिक फूल-फल-धूप-दीप-गन्ध-जल-अक्षत-नैवेद्य इत्यादि सामग्री के द्वारा इष्टदेव की मूर्ति का जो विशेष

सत्कार किया जाता है, उसी का नाम पूजन है। उस को ही पूजा कहते हैं।

(६) पूजा शब्द के पर्यायवाची शब्द

पूजा शब्द के पर्यायवाची शब्द नीचे प्रमाणे हैं। 'अमरकोष' ग्रन्थ में कहा है कि—“पूजा नमस्याऽपचितिः सपर्याऽर्चाहंणाः समाः”। अर्थात्—पूजा नमस्या, अपचिति, सपर्या, अर्चा और अर्हणा, ये छह नाम पूजा के हैं।

(१०) मूर्त्तिपूजा का स्पष्ट अर्थ—

मूर्त्ति और पूजा ये दोनों पद मिलने से 'मूर्त्तिपूजा' यह एक संयुक्त पद होता है। उसी को समासान्त पद कहते हैं। यहाँ पर 'मूर्त्तेः पूजा-मूर्त्तिपूजा' या 'मूर्त्तीणां पूजा-मूर्त्तिपूजा' इस तरह षष्ठी तत्पुरुष समास होता है। अर्थात्—'मूर्त्ति की पूजा या मूर्त्तियों की पूजा=मूर्त्तिपूजा कही जाती है।'

श्री वीतराग विभु-प्रभु की मूर्त्ति की श्रद्धा युक्त भक्ति भाव से अष्टप्रकारी आदि पूजा की जाती है, वे ही 'जिनमूर्त्ति पूजा' हैं। विशेष सत्कार करने का नाम ही 'मूर्त्तिपूजा' है।

(११) मूर्तिपूजा की अत्यन्त आवश्यकता

संसार में परिभ्रमण करने वाले संसारी जीवों, मुमुक्षुओं एवं धर्मी भव्यात्माओं का अन्तिम ध्येय जन्म-मरणादि समस्त दुःखों का, अनादि काल से अपनी आत्मा के साथ रहे हुए अन्तर शत्रु ज्ञानावरणीयादि अष्ट कर्मों का सर्वथा क्षय यानी विनाश करके मोक्ष का अक्षय-शाश्वत सुख प्राप्त करने का होता है ।

इसी उद्देश्य को लक्ष्य में रखकर वे धर्मी भव्य जीव यथासाध्य विशेष प्रयत्न भी करते हैं । इस भगीरथ महान् कार्य की पूर्ति-पूर्णाता के लिये सबसे पूर्व निमित्त कारण की अति आवश्यकता रहती है ।

इससे ही अपनी आत्मा अपना समस्त कार्य जैसे चंचल-चपल चित्त की एकाग्रता, पाँचों इन्द्रियों का दमन और सभी कर्मायों पर विजय-प्राप्ति कर सकता है ।

वह निमित्त कारण सारे विश्व में मुख्यतः वीतराग विभु की प्रशान्त मुद्रामय मूर्ति-प्रतिमा हो है ।

वह मूर्ति चाहे रत्नों की हो, पंच धातु की हो, पाषाण की हो, धातु की हो, काष्ठ या मिट्टी इत्यादि की हो ।

उपासक-भक्त का तो लक्ष्य यही रहता है कि इस वीतराग विभु-प्रभु की मूर्ति द्वारा ही मैं वीतराग विभु के वास्तविक स्वरूप का दर्शन-वन्दन-पूजन-ध्यान-चिन्तन करूँ ।

वीतराग प्रभु के प्रति अनुपम आत्मश्रद्धा, स्नेह-प्रेम और भक्ति, सद्धर्म पर दृढ़ श्रद्धा और पूर्ण विश्वास तथा ईश्वरत्व के विषय में अस्तित्व-बुद्धि रखना यही उनका मुख्य ध्येय होता है । अतः यह सिद्ध है कि विश्व में सदाचार, शान्ति, सुख और समृद्धि का कारण मूर्तिपूजा ही है ।

जब हम धार्मिक सिद्धान्तों की ओर दृष्टिपात करते हैं तब भी हमें मूर्ति-प्रतिमा की परमावश्यकता प्रतीत होती है । कारण कि वीतराग परमेश्वर परमात्मा की उपासनादि करना यही सद्धर्म का एक मुख्य अंग है । इतना ही नहीं किन्तु उसकी सिद्धि के लिये मूर्ति-प्रतिमा की अवश्य ही अति आवश्यकता है । क्योंकि निराकार परमेश्वर की उपासना मूर्ति-प्रतिमा के बिना नहीं हो सकती है । यदि कोई कहे कि उपासना के लिये जड़ रूप मूर्ति-प्रतिमा की क्या आवश्यकता है ? हम तो केवल परमेश्वर के गुणों की उपासना कर सकते हैं ? ऐसा कहना भी उचित

नहीं है । कारण कि, जैसे परमेश्वर निराकार है वैसे ही उनके गुण भी निराकार ही हैं ।

जब परमेश्वर और उनके गुण भी निराकार हैं तो उनको चर्मचक्षु वाले प्राणी कैसे देख सकेंगे ? और उनकी उपासनादि भी कैसे कर सकेंगे ?

इसके लिये चर्मचक्षु वाले को साकार, इन्द्रियगोचर ऐसे दृश्य वस्तु-पदार्थों की ही आवश्यकता रहती है ।

विश्व में ऐसा सर्वोत्तम साधन शुक्ल ध्यानावस्थित और प्रशान्त मुद्रा युक्त श्री जिनेश्वर भगवान की मनोहर मूर्ति-प्रतिमा से बढ़कर अन्य कोई भी नहीं है । चाहे वह मूर्ति-प्रतिमा पत्थर-पाषाण की हो, काष्ठ की हो, रत्न-सोना-चांदी, सर्वधातु की हो, मिट्टी की हो, बालू-रेती की हो, या किसी अन्य पदार्थ की भी क्यों न हो; किन्तु उपासक का लक्ष्य तो उस मूर्ति द्वारा श्रीवीतराग परमात्मा के सच्चे स्वरूप का चिन्तन-ध्यान करना ही रहता है ।

यदि परमेश्वर की उपासना सद्धर्म का एक मुख्य अंग है तो उसकी सिद्धि के लिये मूर्ति-प्रतिमा की आवश्यकता अवश्य ही है । इससे इन्कार नहीं हो सकता । मूर्ति-प्रतिमा के अभाव में किसी भी निराकार वस्तु-पदार्थ

की उपासना असम्भव है। इस बात को सभी धर्मावलम्बी मानते हैं। इसलिये विश्व में परमेश्वर के प्रति श्रद्धा, भक्ति तथा उसके अस्तित्व का आत्मविश्वास बनाये रखने के लिये मूर्त्तिपूजा-पूजन की परम आवश्यकता है।

प्राकृतिक पद्धति-नियम के अनुसार जीवों का मूर्त्ति-प्रतिमा की ओर विशेष झुकाव देखा जाता है। विश्व में मूल वस्तु को पहचानने के लिए और स्मृति-स्मरण करने में मूर्त्ति या चित्र की अति आवश्यकता रहती है। गुण-पूजा के लिए भी आकृति-आकार जरूरी है।

यदि यहाँ कोई ऐसा प्रश्न करे कि परमेश्वर या परमेश्वर के निराकार गुणों की, हम हमारे मनमन्दिर में मात्र मानसिक कल्पना द्वारा उपासना कर लेंगे, तो फिर पाषाणमय मन्दिर मूर्त्ति की क्या आवश्यकता है? अर्थात् परमेश्वर की उपासना हेतु जड़मूर्त्ति का आलम्बन लेने की अपेक्षा उनके गुणों का आलम्बन लेना अच्छा क्यों नहीं? किन्तु यह प्रश्न सही रूप में कम समझ का है। कारण कि—जिस प्रकार परमेश्वर निराकार है, उसी प्रकार परमेश्वर के गुण भी निराकार हैं। दोनों निराकार हैं तो फिर अल्पज्ञ जीवों को उपासना में लीन-मग्न करने के लिये

साकार, इन्द्रियगोचर तथा दृश्य वस्तु-पदार्थों की आवश्यकता अवश्य रहेगी ही ।

अपने मनोमन्दिर में हम मानसिक कल्पना द्वारा परमेश्वर या परमेश्वर के निराकार गुणों की उपासना कर लेंगे । ऐसी परिस्थिति में मन्दिर-मूर्ति की क्या आवश्यकता है ? ऐसा कहना भी अज्ञानता है । कारण कि अपने मनो-मन्दिर में निराकार ऐसे परमेश्वर की कल्पना करेंगे तो वह भी साकार ही होगी । जैसेकि—श्री तीर्थंकर परमात्मा अष्ट महाप्रातिहार्य से विभूषित तथा केवलज्ञानादि अनन्त चतुष्टय से समलंकृत दिव्य समवसरण में बिराजमान ऐसे श्री तीर्थंकर परमात्मा-जिनेश्वर भगवन्त की धर्मदेशना-समय की अवस्था । इस अवस्था की कल्पना निराकार नहीं, किन्तु साकार ही है । मूर्तिपूजक जो मन्दिर और मूर्ति के मानने वाले हैं वे भी इस प्रकार की कल्पना को ही मूर्ति स्वरूप प्रदान करके प्रभु की उपासना करते हैं ।

कल्पना करके या साक्षात् मूर्ति-प्रतिमा बनाकर उपासना करना, दोनों का ध्येय तो एक ही है । यदि अन्तर है तो इतना ही है कि—काल्पनिक मनोमन्दिर क्षणविध्वंसी अर्थात् क्षणस्थायी है और साक्षात् मन्दिर मूर्ति चिर-स्थायी है ।

अतः सर्वश्रेष्ठ तो यह है कि चिरस्थायी बने, बनाये हुए ऐसे दृश्य मन्दिरों में जाकर देवाधिदेव श्री जिनेश्वर भगवान की प्रशान्त मुद्रा युक्त भव्य मनोहर मूर्ति की भक्तिभावपूर्वक पूजा-अर्चनादि करके आत्म-कल्याण करें।

(१२) मूर्तिपूजा का प्राचीन इतिहास

मूर्ति एवं मूर्तिपूजा के प्राचीन इतिहास की ओर जब हम दृष्टिपात करते हैं तब हमें स्पष्ट पता चलता है कि जितनी प्राचीनता इस संसार के इतिहास की है, उतनी ही प्राचीनता मूर्ति एवं मूर्तिपूजा की है। इसका कारण यह है कि—जगत् के इतिहास के साथ ही संसारी जीवों के कल्याण के लिये स्थापित आवश्यक मूर्ति एवं मूर्तिपूजा, दोनों का परस्पर घनिष्ट ही नहीं किन्तु घनिष्टतम सम्बन्ध है।

मूर्तिपूजा इतनी प्राचीन-पुरानी एवं कल्याणकारी है तो फिर इसका विरोध कब से हुआ ? किसके द्वारा और किस कारण से हुआ ?

विश्वस्त तथ्यों से इतिहास द्वारा यह निश्चय होता है

कि विक्रम की सातवीं शताब्दी पूर्व क्या यूरोप, क्या एशिया यावत् समस्त संसार मूर्त्तिपूजा का उपासक था । मूल वस्तु को पहचानने के लिये मूर्त्ति की या चित्र-छबि की आवश्यकता रहती है ।

विश्व में स्थापना को माने बिना किसी का भी व्यवहार नहीं चल सकता । इसलिये अतिप्राचीन काल से भारत देश की जनता मूर्त्तिपूजा को मानती आई है । जब भारत में मुसलमानों का साम्राज्य हुआ, तबसे उनके जुल्मी बर्त्ताव से भारतदेश की जनता को खूब सहना पड़ा ।

सर्वप्रथम प्रायः १३०० से १४०० वर्ष पूर्व हजरत मोहम्मद पैगम्बर ने अरबिस्तान में मूर्त्तिपूजा के विरुद्ध उद्घोषणा की थी । क्योंकि उस देश में मूर्त्तिपूजा के नाम पर अत्याचार अत्यन्त ही बढ़ गये थे । 'अपने सिर पर बाल बढ़ जाने से बालों के बजाय सिर को ही काट डालने का' निर्णय किया गया । अर्थात् अत्याचार का विरोध नहीं करके मूर्त्तिपूजा का विरोध किया गया । यह विरोध किसी भी प्रमाण के आधार पर नहीं, किन्तु केवल तलवार के बल पर ही किया गया ।

आज विद्यमान इतिहास भी बतला रहा है कि केवल

आर्य प्रजा में ही नहीं, किन्तु पाश्चात्य प्रदेशों में भी मूर्ति-पूजा का बहुत ही प्रचार था, ऐसे ऐतिहासिक प्रमाण भी उपलब्ध हैं। श्री विक्रम संवत् की चौदहवीं शताब्दी तक सुप्रसिद्ध जर्मन इत्यादि पाश्चात्य प्रदेशों में भी मूर्तिपूजा का काफी प्रचार था। उस समय उन प्रदेशों में जैनमन्दिर भी विद्यमान थे, जिनके विनाश के अवशेष संशोधन करने पर आज भी मिल रहे हैं।

जैसे—आस्ट्रेलिया में श्रमण भगवान महावीर परमात्मा की मूर्ति, अमेरिका में ताम्रमय श्री सिद्धचक्र का गट्टा, मंगोलिया प्रान्त में अनेक भग्न मूर्तियों के अवशेष मिले हैं। पुरातन काल में मक्का मदीना में भी जैनमन्दिर थे किन्तु जब वहाँ पर पूजने वाले कोई जैन नहीं रहे तब वे मूर्तियाँ भारत देश में सुप्रसिद्ध मधुमति (महुवा बन्दर) में लाई गईं। इस प्रकार प्राचीन काल में मूर्तिपूजा के अनेक प्रमाण मिलते हैं।

जिस प्रदेश में सबसे पूर्व मूर्तिपूजा का विरोध पैदा हुआ था, वह आज भी मूर्तिपूजा से विहीन नहीं है। व्यक्तिगत कोई मूर्तिपूजा नहीं माने, यह अलग बात है, किन्तु आधुनिक देशाटन वालों की जानकारी से यह बात छिपी

हुई नहीं है कि आज भी विश्व में ऐसा प्रदेश खोजने पर भी नहीं है कि जहाँ पर मूर्तिपूजा का प्रचार न हो ।

मुस्लिम मत यानी मुसलमान समाज की उत्पत्ति के पश्चात् मुसलमानों ने भारतवर्ष पर कई बार आक्रमण किये और धर्मान्धता के कारण इस देश के अनुपम आदर्श ऐसे मन्दिर एवं मूर्तियों को तथा अति सुन्दर शिल्प-कलाओं को तोड़-फोड़ कर नष्ट-भ्रष्ट किया । इतना होते हुए भी विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी तक भारत देश की आर्य प्रजा पर मुस्लिम संस्कृति का अल्प भी प्रभाव नहीं पड़ा । किन्तु भारतीय जनता अपने आर्यधर्म, आर्यसंस्कृति और उनके मन्तव्यों पर अटल-दृढ़ रही ।

विक्रम को तेरहवीं शताब्दी की ओर दृष्टि करने से लगता है कि १३वीं शताब्दी में भारत की सुप्रसिद्ध राजधानी दिल्ली पर मुस्लिम सत्ता का शासन हुआ और सत्ता की मदान्धता के कारण तलवार के पाशविक पराक्रम-बल पर अनेक मन्दिर एवं भद्रिक अज्ञात लोगों को हिन्दू धर्म से भ्रष्ट कर अपने अन्दर मिलाने लगे । फिर भी उन्हें पूर्ण सफलता नहीं मिली । अल्प-बहुत जो विधर्मी बने वे भी अधिकांश स्वार्थी और धर्म से नितान्त अनभिज्ञ लोग थे । इस प्रकार की विकट परिस्थिति में भी भारतीय

धर्मवीरों पर उस अनार्य संस्कृति का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ सका । अर्थात् भारतीय धर्मवीर अपने आर्यधर्म और आर्यसंस्कृति से अंश मात्र भी विमुख न हुए ।

विक्रम की चौदहवीं शताब्दी में दिल्ली, मालवा और गुर्जर (गुजरात) की भूमि पर मुस्लिम सुल्तानों की सत्ता का आधिपत्य-अधिकार कायम हुआ । उन्होंने वहाँ के अनेक भव्य मन्दिरों और सुन्दर शिल्पकला को नष्ट-भ्रष्ट कर हिन्दू प्रजा को अनेक प्रकार के कष्ट पहुँचाये । विधर्मी नहीं बनने वालों के धन-माल को लूटा, इतना ही नहीं लेकिन उनको प्राण-दण्ड देने में भी उन मुस्लिमों ने कमी नहीं रखी । इतने प्राणघातक जुल्म होने पर भी उन आर्य धर्मवीरों के दिल पर अनार्य संस्कृति का अंश मात्र भी असर नहीं हुआ । किन्तु इसके विपरीत प्रतिस्पर्धा के कारण उनकी सद्धर्म पर श्रद्धा, मूर्त्तिपूजा पर दृढ़ विश्वास और भक्तिभाव बढ़ता ही गया ।

मन्दिरों और मूर्त्तियों के शिलालेखों पर से यह ज्ञात होता है कि ऐसी विकट परिस्थिति के समय में भी पुराने मन्दिरों के विनाश की अपेक्षा नये मन्दिर अधिक संख्या में बने थे ।

जैसे उदाहरणस्वरूप—वि. सं. १३६६ की साल में मुस्लिमों ने जैनों के महान् तीर्थ श्री शत्रुञ्जय के सभी मन्दिरों का विनाश किया। उसको वि. सं. १३७१ की साल में ही स्वनामधन्य श्रेष्ठिवर्य समरसिंह ने करोड़ों का द्रव्य खर्च करके दो वर्ष की अल्प अवधि में पुनः श्री शत्रुञ्जय महातीर्थ को स्वर्ग के विमान सदृश जिन-मन्दिरों से विभूषित कर दिया।

उन अनार्यों के समय में भी आर्य लोगों की सद्धर्म के प्रति और मन्दिर-मूर्तियों पर कैसी अटूट श्रद्धा थी, यह इस बात का ज्वलन्त उदाहरण है।

विक्रम की सोलहवीं शताब्दी भारतवर्ष के लिए महा-दुःखमय और भयंकर कलंक रूप साबित हुई थी। आर्य देश के कई व्यक्तियों पर अनार्य संस्कृति का दोषपूर्ण प्रभाव पड़ चुका था तथा तद् फलस्वरूप उन अज्ञानी व्यक्तियों ने बिना कुछ सोचे समझे अनार्य संस्कृति का अन्धानुकरण करके आर्य मन्दिरों एवं मूर्तियों की ओर क्रूर दृष्टि से देखना भी प्रारम्भ कर दिया था। जैसे—(१) श्री श्वेताम्बर जैनों में लोकाशा, (२) दिगम्बर जैनों में तारण स्वामी, (३) वैष्णवों में रामचरण, (४) सिक्खों में गुरु नानक, (५) जुलाहों में कबीर और (६) अंग्रेजों में मार्टिन लूथर

इत्यादि व्यक्तियों ने बिना सोचे-समझे सोलहवीं सदी में अनाय संस्कृति के दूषित-बुरे प्रभाव से प्रभावित होकर के आर्यसंस्कृति के आधार-स्तम्भ कलात्मक मनोहर मन्दिरों और मूर्तियों के विरुद्ध घोषणा कर दी कि—ईश्वर की उपासना के लिये इन जड़ वस्तु-पदार्थों की कोई आवश्यकता नहीं है। ऐसा कहकर मूर्तियों द्वारा अपने अभीष्ट देवों की उपासना करने वालों को उन्होंने आत्मकल्याण के पवित्र मार्ग से दूर हटा दिया था।

श्री श्वेताम्बर जैनों का लोंकाशा के साथ सम्बन्ध है। लोंकाशा एक जैनकुल में जन्मा व्यक्ति था। उनके जीवन के विषय में भिन्न-भिन्न लेखकों के भिन्न-भिन्न उल्लेख मिलते हैं, किन्तु 'लोंकाशा का जैन यतियों द्वारा अपमान हुआ', इस विषय में सभी सहमत अर्थात् एकमत ही हैं। क्योंकि-इसके बिना त्रिकालपूजा करने वाले लोंकाशा का सहसा मन्दिर-मूर्तियों के विरुद्ध होना कदापि सिद्ध नहीं हो सकता। एक ओर लोंकाशा का अपमान हुआ तथा दूसरी ओर उसे मुसलमानों का सहयोग मिला। यही लोंकाशा को कर्तव्य-च्युत करने वाला सिद्ध हुआ।

इसके सम्बन्ध में वि. सं. १५४४ के आस-पास हुए

उपाध्याय श्री कमलसंयमजी ने अपनी 'सिद्धान्तसार चौपाई' में लिखा है कि—

अहवई हुऊ पीरोज्जिखान ।
तेहनई पातशाह दिई मान ॥
पाडइ देहरा नई पोसाल ।
जिनमत पीडई दुषमकाल ॥
लुंका नेइ ते मिलियु संयोग ।
ताव मांहि जिम शीषक रोग ॥

इससे ज्ञात होता है कि—पीरोज्जिखान (फिरोजखान) नाम का बादशाह मन्दिरों और पौषधशालाओं का विनाश कर जिनमत (जैनधर्म) को कष्ट पहुँचाता था । दुषमकाल के प्रभाव से बुखार (ताव) के साथ सिरदर्द के माफिक, लोंकाशा को उसका सहयोग मिल गया । क्रोधावेश में लोंकाशा ने मुसलमान सैयदों के वचनों पर विश्वास किया और वह अपने धर्म से च्युत हुआ ।

लोंकाशा ने केवल मूर्तिपूजा का ही विरोध नहीं किया, किन्तु जैनागम, जैनसंस्कृति, सामायिक-प्रतिक्रमण, देवपूजा, दान तथा प्रत्याख्यान प्रमुख का भी विरोध किया ।

पश्चात् अन्तिमावस्था में उनको अपने दुष्कृत्यों का पश्चाताप भी हुआ है ।

बाद में उन्होंने सामायिक-प्रतिक्रमण-पौषध इत्यादि क्रियाओं को आदरपूर्वक स्थान दिया और दान देने की भी छूट दे दी ।

इसके पश्चात् लोंकागच्छीय श्री पूज्य मेघजी तथा श्रीपालजी आदि सैकड़ों साधुओं ने इस लोंकामत का त्याग कर पुनः जैनदीक्षा को स्वीकार किया है, इतना ही नहीं किन्तु वे मूर्त्तिपूजा के समर्थक एवं प्रचारक भी बने ।

लोंकागच्छीय आचार्यों ने तो कई एक मन्दिर-मूर्त्तियों की प्रतिष्ठायें भी कराई हैं, तथा अपने धार्मिक उपाश्रयों में भी वीतराग प्रभु की मूर्त्ति-प्रतिमाएँ स्थापित कर स्वयं भी उनकी उपासना की है । लोंकागच्छ का एक भी उपाश्रय ऐसा नहीं था कि जहाँ वीतरागदेव श्री जिनेश्वर भगवान की मूर्त्ति-प्रतिमा न हो ।

आज भी लोंकागच्छ के उपाश्रयों में मूर्त्तियों की अस्तित्वा-विद्यमानता से मूर्त्तिपूजा स्पष्ट प्रमाणित होती है ।

विक्रम की अठारहवीं शताब्दी में यति धर्मसिंहजी और

लवजी ऋषि ने लोंकागच्छ से अलग होकर पुनः मूर्ति-मन्दिर का विरोध किया । उसी समय लोंकागच्छ के श्री-पूज्यों ने इन दोनों को गच्छ से बाहर कर दिया । किन्तु इन दोनों के द्वारा नूतन प्रचारित मत चल पड़ा । इस प्रकार के नये मत को 'ढूँढक मत' कहा गया । जो 'साधु-मार्गी' तथा 'स्थानकवासी' नाम से प्रसिद्ध है । इस नये मत में आज भी मन्दिर और मूर्ति का विरोध विद्यमान-चालू है । लेकिन ये लोंकाशा के अनुयायी नहीं कहे जाते हैं । क्योंकि इन ढूँढियों में और लोंकाशा के अनुयायियों में क्रिया और श्रद्धा में दिन-रात का अन्तर है ।

स्थानकमार्गी समाज के ढूँढक तो यति लवजी ऋषि के ही अनुयायी हैं ।

स्थानकवासी समाज की उत्पत्ति के संक्षिप्त इतिहास की ओर दृष्टिपात करते हुए लग रहा है कि आज उनमें से भी अनेक लोगों ने 'मूर्तिपूजा-प्रतिमापूजन' की परम आवश्यकता को एवं आत्म-हितकारिता को स्वीकार किया है । इतना ही नहीं, अब तो ये लोग भी तीर्थयात्रा में जाते हैं और प्रभु की पूजा प्रमुख का भी सुन्दर लाभ लेते हैं । जिनेन्द्रदेव के प्रतिष्ठादि महोत्सव में भी अपनी लक्ष्मी का सदुपयोग सानन्द-सोल्लास करते हैं ।

इस प्रकार मूर्तिपूजा का अस्तित्व सनातन काल का विद्यमान है और भविष्य में भी रहने वाला है। सभी आचार्यों आदि ने इस विधान को आदर बहुमानपूर्वक सम्मान देकर जैन समाज पर महान् उपकार किया है।

(१३) मूर्तिपूजा का पवित्र उद्देश्य

वीतराग विभु श्री जिनेश्वर भगवन्त की भव्य मूर्ति जिनेश्वर के समान है। “जिन प्रतिमा जिन सारिखी” जो साक्षात् सर्वज्ञ जिनेश्वर प्रभु की उपासना का उद्देश्य है वही उद्देश्य मूर्तिपूजा का है। यही उद्देश्य समझकर सभी को ऐसे तरगतारण देवाधिदेव श्री जिनेश्वर भगवन्त की मूर्ति-प्रतिमाजी की विधिपूर्वक पूजा अवश्य अर्हनिश करनी चाहिये।

सर्वज्ञ विभु श्री जिनेश्वर-तीर्थंकरभगवन्त भाषित जैन-सिद्धान्त-आगमशास्त्रों का यह कथन है कि—इस विश्व में प्रत्येक आत्मा सत्ता या निश्चयनय से परमात्मस्वरूप है। लेकिन संसारी आत्मा-जीवों की यह परिस्थिति ज्ञानावरणीयादि अष्ट कर्मों के अधीन-वश है। कारण कि संसारी आत्मा परपुद्गल के विषय में आसक्त होकर कर्मबन्धन करता है अर्थात् कर्म का बन्ध करता है। यही कर्म युक्त सांसारिक अवस्था आत्मा की है। इसलिये संसारी

आत्मा-जीव कर्म सहित है और परमात्मा कर्म-रहित विशुद्ध स्वरूप परमेश्वर है। परमात्मा और आत्मा में यही अन्तर है। आत्मा को परमात्मा बनाने के लिये जैन परमात्मा की उपासना अर्चना-सेवा-भक्ति परम आलम्बनभूत हितकारी है। सेवा-भक्ति का यह उद्देश्य नहीं है कि उनसे हम कोई सांसारिक सुखों की याचना करें। सिर्फ उनके दर्शन और अर्चन आदि का उद्देश्य तो यही है कि उनके गुणों का कीर्तन-स्मरण-ध्यान इत्यादि करना। अर्थात् आत्मा के शुद्ध परमात्म स्वरूप का ध्यान करना-स्मरण करना। यह करके हृदय में ऐसा विचारना कि—“मैं परमात्मस्वरूप होते हुए भी ऐसी दशा में और इस प्रकार की परिस्थिति में क्यों हूँ। कब मैं आत्मोन्नति-आत्मिक विकास के द्वारा परमात्मस्वरूप को प्राप्त करूँगा।” प्रभुदर्शन-अर्चनादिक का मुख्य उद्देश्य यही है। उनके गुणानुरागी बनकर उनके गुणों को प्राप्त करना और अपने जीवन में से दुर्गुणों का विध्वंस-विनाश करना।

अतः अपनी आत्मा को परमात्मस्वरूप बनाने में 'मूर्तिपूजा' कारण है, इतना ही नहीं किन्तु अपने जीवन को भी उज्ज्वल करने के लिए पुष्ट आलम्बन है।

सांसारिक मोह में फँसे हुए संसारी जीवों-प्राणियों को प्रभु की मूर्ति-प्रभु की प्रतिमा एक सर्वोत्तम मार्गदर्शक है। उपकारी के उपकार को मानना यह भी उद्देश्य है। वीतराग विभु श्री जिनेश्वर तीर्थंकर परमात्मा ने धर्मतीर्थ प्रवर्त्ताया और आत्मोन्नति के लिये धर्ममार्ग का निःस्वार्थ सद्धर्म-देशना-सदुपदेश देकर अपने पर महान् उपकार किया है। इसलिये उनके उपकार को स्मरण कर हरदम उनकी उपासना, अर्चना एवं सेवा-भक्ति करना अति आवश्यक उचित-योग्य है।

(१४) मूर्तिपूजा के विरोधी भी मूर्तिपूजा को मानते हैं

अनादिकाल से विश्व में दो पदार्थ विशेष प्रसिद्ध हैं। चेतन और जड़। संसार की समस्त अवस्थाओं में जीव-आत्मा का कार्य रूपी मूर्त्तिक पदार्थ को स्वीकार किये बिना नहीं चल सकता। प्रत्येक चेतनावन्त व्यक्ति को जड़ वस्तु-पदार्थ का आलम्बन लेना ही पड़ता है। जैसे-(१) काल-समय अरूपी है, तो भी उसको पहचानने के लिए घटिका-यन्त्र [घड़ियाल] रूपी आकृति-आकार मानना ही पड़ता है।

(२) अपने खाद्य और पेय पदार्थ, वस्त्र एवं अलंकार-

आभूषणादि तथा अपना शरीर-शस्त्र-मुकाम-पुस्तकादि सभी अपने-अपने आकार-आकृति से पहचाने जाते हैं ।

(३) अक्षर का ज्ञान, अंक का ज्ञान तथा चित्रों आदि का ज्ञान आकार-आकृति आदि से ही सबको मालूम पड़ता है । जैसे—

१. अ आ इत्यादि चौदह स्वरों का तथा क ख ग इत्यादि तैंतीस व्यंजनों का ज्ञान ।

२. एक, दो, तीन इत्यादि अंक-संख्या का ज्ञान ।

३. मूर्ति-प्रतिमा तथा चित्रों का ज्ञान । यह सब आकृति से ही मालूम पड़ता है ।

(४) अभाव पदार्थ का ज्ञान भी आकार से ही होता है । जैसे—पच्चीस में से पच्चीस जावे तो शेष क्या रहे ? उसका जवाब यही मिलेगा कि कुछ नहीं रहा । तो भी उसकी निशानी $२५-२५=००$ यह आकार ही बतायेगा ।

लोक में चेतनवन्त व्यक्ति का अपना कार्य जड़ वस्तु के संयोग-सम्बन्ध से ही होता है ।

मूर्ति एवं मूर्तिपूजा का सख्त विरोध करने वाले को

भी मूर्ति को एवं मूर्तिपूजा को मानना ही पड़ता है ।
इसके उदाहरण—

(१) इस्लाम धर्मः—मूर्ति एवं मूर्तिपूजा का सर्वप्रथम विरोध करने वाले मुस्लिम मत के संस्थापक हजरत मुहम्मद सा. थे । किन्तु समयान्तर में उनके अनुयायी भी अपने मस्जिदों में पीरों की आकृतियाँ बनाकर उन्हें पुष्प-धूपादिक से पूजते हैं । मोहर्रम के दिनों में ताजिया बनाकर उनके आगे रोना-पीटना भी करते हैं तथा यात्रा के लिये अपने माने हुए धर्मतीर्थ मक्का-मदीना जाते हैं । वहाँ पर एक गोल काले पत्थर को चुम्बन करते हैं तथा ऐसा मानते हैं कि इस पत्थर का चुम्बन करने से अपने कृत कर्मों का विनाश हो जाता है । क्या यह मूर्तिपूजा नहीं कही जाती ? अवश्यमेव कही जाती है ।

तदुपरान्त मुस्लिम धर्म के अनुयायी कहते हैं कि जहाँ पर दो मीनारों का दृश्य दिखाई देता है और भीतर में तीन पगथीएँ होते हैं, वही हमारी मस्जिद है और वही हमारा धर्मस्थानक है ।

यह सब चेतन है कि जड़ है ? कहना ही पड़ेगा कि जड़ ही है ।

(२) ईसाई धर्म—मूर्त्तिपूजा नहीं मानने वाले ईसाई भी सूली पर लटकती हुई ईसामसीह की मूर्त्ति और क्रॉस अपने चर्च में-गिरजाघरों में स्थापित कर उन्हें पूज्यभाव से देखते हैं, द्रव्य और भाव से उनकी पूजा करते हैं तथा पुष्प-हार चढ़ाते हैं। आज भी यूरोपप्रदेश की भूमि में से पाँच-पाँच हजार वर्षों की अनेक देवी-देवताओं की प्राचीन मूर्त्तियाँ मिलती हैं। इतना ही नहीं किन्तु यूरोप के प्रान्तों में किसी-न-किसी प्रकार से मूर्त्तिपूजा की जाती है। क्या यह मूर्त्तिपूजा नहीं मानी जायगी ? मूर्त्तिपूजा का ही यह रूपान्तर है।

(३) पारसी धर्म—पारसी अग्नि को देवता मानते हैं। इतना ही नहीं सूर्यदेव की भी पूजा करते हैं। यह मूर्त्ति-पूजा का परिवर्तित स्वरूप है।

(४) बौद्ध धर्म—इस धर्म के मठ स्थान-स्थान पर देश-विदेश में विद्यमान हैं। इस धर्म के अनुयायी भी अपने मठों में श्री गौतमबुद्ध की मूर्त्ति रखते हैं। आज भी श्री गौतमबुद्ध की अनेक प्राचीन मूर्त्तियाँ पाई जाती हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि बौद्धमत में भी मूर्त्ति-प्रतिमा श्रद्धा का केन्द्र बनी है।

(५) सिख धर्म—इस धर्म की मान्यता वाले अपने

आपको मूर्त्तिपूजा का विरोधी कहते हुए भी गुरुग्रन्थ साहब की पूजा करते हैं तथा पुष्प एवं अगरबत्ती भी लगाते हैं। यह भी मूर्त्तिपूजा का ही एक प्रकार है।

(६) कबीर, नानक और रामचरण इत्यादि मूर्त्ति-विरोधियों के अनुयायी भी आज अपने-अपने पूज्य पुरुषों की समाधियाँ बनाकर उनकी पूजा करते हैं। बनी हुई समाधियों के दर्शनार्थ भक्तिभाव से भक्त लोग दूर-दूर से आते हैं, दर्शन करते हैं तथा पुष्प प्रमुख पूजनीय पदार्थों से उन पर श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं और अपने आप को कृतकृत्य मानते हैं।

(७) स्थानकवासी वर्ग भी अपने पूज्य पुरुषों की समाधि, चरण-पादुका, मूर्त्ति तथा चित्र-फोटो इत्यादि बनाकर उनकी उपासना करते हैं। अपने-अपने भक्तों को भी दर्शनार्थ चित्र-फोटो देते हैं। वे भक्त उन चित्र-फोटो के दर्शनादि करके अपने आपको कृतकृत्य मानते हैं।

(८) व्यापार करने वाले ऐसे व्यापारी लोग भी प्रातःकाल दुकान खोलते समय दुकान के ओटले को और आसन को अपने हाथ से दो-तीन बार नमन करते हैं तथा दुकान बन्द करके घर तरफ जाते समय भी ऐसा ही करते हैं।

यह सब अमूर्त्त की पूजा भी मूर्त्ति के माध्यम से होती है। विश्व में कोई भी धर्म, मत, पंथ, सम्प्रदाय, समाज, जाति तथा व्यक्ति मूर्त्तिपूजा से अलग नहीं रह सकता। चाहे प्रत्यक्ष रूप में मानो या अप्रत्यक्ष रूप में मानो, किन्तु समस्त संसार मूर्त्तिपूजा को मानता अवश्य ही है।

इस विश्व में मूर्त्तिपूजकों ने विश्व की जनता पर जितना उपकार किया है, उतना ही मूर्त्तिविरोधियों ने उपकार किया है।

विश्व में मूर्त्ति-प्रतिमा आत्मकल्याणकारक है, इतना ही नहीं किन्तु विश्व के सभी जीवों की सच्ची उन्नति का परम साधन है। इसका विरोध करना आत्म-अहित का, अधःपतन का कारण है। इसलिये प्रत्येक आत्मार्थी जीव को आत्मिकविकास के लिए यह चाहिए कि वह मूर्त्ति-पूजा में विश्वास रखते हुए सच्चा उपासक बनकर विश्व में स्व और पर कल्याण का साधन करे।

(१५) मूर्त्तिपूजा की शाश्वतता एवं पारमार्थिक साधकता

श्री सिद्धान्त-शास्त्रवेदी समस्त महापुरुषों ने फरमाया

है कि—“सर्वज्ञ विभु श्री वीतरागदेव की आराधना एवं उपासना मुख्यपने उनकी मूर्ति-प्रतिमा के द्वारा ही सम्भवती है। इसके बिना अन्य कोटि उपायों से भी वह आराधना उपासना सुशक्य नहीं होती है।”

श्री जिनेश्वरदेव-तीर्थंकर परमात्मा की साधना, आराधना एवं उपासना जिस तरह उनके नाम-स्मरण से, उनके गुण-कीर्तन से, उनके उत्तम जीवन-चरित्रों के श्रवण से, उनकी सम्यक् आज्ञाओं के पालन से तथा उनकी सेवा-भक्ति से होती है; उसी तरह उनकी आकृति-आकार, मूर्ति-प्रतिमा या प्रतिबिम्ब इत्यादिक से भी होती है।

विश्व में श्री जिनेश्वर-वीतरागदेव की पूजा एवं उपासनादि कोई कल्पित वस्तु नहीं है, तथा किन्हीं अबोध व्यक्तियों के द्वारा आविष्कृत वस्तु-पदार्थ भी नहीं है। किंतु यह तो धर्मी जीवों-भक्त आत्माओं के अन्तःकरण की गहरी-गाढ़ भक्ति में से निकली हुई एक सहज और अनिवार्य अनुपम वृत्ति तथा सद्प्रवृत्ति है।

अमूर्त या मूर्त दोनों में से किसी भी वस्तु-पदार्थ के समस्त गुणधर्मों तथा स्वरूप का बोध छद्मस्थ जीवों को उनके नाम, आकृति-आकार के आलम्बन के बिना अंशमात्र

भी नहीं होता है। प्रत्येक वस्तु-पदार्थ की स्थिति कम-से-कम चार प्रकार की होती है। नाम, आकृति-आकार, पिण्ड तथा वर्तमान अवस्था। प्रस्तुत में 'श्री अरिहन्त परमात्मा' हैं। इनमें यह चारों प्रकार की स्थिति कैसे है, इस सम्बन्ध में कलिकालसर्वज्ञ श्रीमद् हेमचन्द्रसूरीश्वरजी म. श्री ने 'सकलार्हत् स्तोत्र' में कहा है कि—

“नामाकृतिद्रव्यभावेः, पुनतस्त्रिजगज्जनम् ।
क्षेत्रे काले च सर्वस्मिन्नर्हतः समुपास्महे ॥१॥”

अर्थ—'सर्व कालों में तथा सभी क्षेत्रों में 'नाम-आकृति-द्रव्य और भाव' इन चारों स्वरूपों द्वारा तीनों जगत् के लोगों को पवित्र करने वाले श्री अरिहंतों की हम उपासना करते हैं।'

इस श्लोक से यह स्पष्ट हो जाता है कि श्री अरिहंत भगवन्तों की प्रतिमाएँ और उनकी पूजा आजकल की नहीं है, किन्तु सर्व कालों में और सर्व क्षेत्रों में सदा की है।

इससे यह बात सिद्ध होती है कि श्री अरिहन्त भगवन्तों के नामादि चारों निक्षेप उपास्य हैं अर्थात् वन्दनीय एवं पूजनीय अवश्य हैं।

इन चारों में से एक भी निक्षेप की उपेक्षा सम्यक्त्व

की प्राप्ति में बाधक होती है। इतना ही नहीं किन्तु प्राप्त सम्यक्त्व-समकित का भी विनाश करने वाली होती है।

विश्व में कोई भी काल या क्षेत्र ऐसा नहीं है कि जिसमें मूर्ति और मूर्तिपूजा की अस्तित्वा-विद्यमानता न हो तथा श्री अरिहन्त भगवन्तों की वे मूर्तियाँ उनके उपासकों को पवित्र न करती हों।

इसलिये मूर्ति एवं मूर्तिपूजा आत्मकल्याण का एक प्रारम्भिक-प्राथमिक परम अंग है। अपने अधिकार और अपनी योग्यता के अनुसार संसारत्यागी साधु-साध्वियों को श्री अरिहन्त परमात्मा की भावपूजा प्रतिदिन करनी अति आवश्यक है तथा श्रावक-श्राविकाओं को द्रव्यपूजा और भावपूजा दोनों निरन्तर करनी अति आवश्यक है। नहीं करने वाले साधु-साध्वी को तथा श्रावक-श्राविका को शास्त्रकार भगवन्तों ने प्रायश्चित्त का भागीदार कहा है। इसीलिये साधु-साध्वी को श्री अरिहन्त परमात्मा की भावपूजा से कभी भी वंचित नहीं रहना चाहिए। श्रावक-श्राविकाओं को भी द्रव्यपूजा और भावपूजा दोनों से कभी भी वंचित नहीं रहना चाहिये।

जिस तरह श्री जिनेश्वरदेव की साधना उनके नाम-

स्मरण से उनके गुण-स्मरण से उनके चरित्रों के श्रवण से, उनकी भक्ति से तथा उनकी आज्ञाओं के पालन से होती है; उसी तरह उनके आकार-आकृति की तथा उनकी मूर्ति-प्रतिमा या प्रतिबिम्ब की भक्ति से भी होती है। यह कथन सत्य है, इसलिये सर्वदा स्वीकार्य है।

सर्वज्ञदेव श्री वीतराग विभु की आराधना एवं उपासना मुख्यपने उनकी मूर्ति के द्वारा ही सम्भव है। इसके बिना अन्य अनेक उपायों से भी वह सुशक्य नहीं है। यह बात भी कभी भूलने योग्य नहीं है।

यदि प्रभु का नाम कल्याणकारी है, तो फिर यह नाम जिस स्वरूप का है वह स्वरूप भी अधिक कल्याणकारी है।

जैसे नाम दो प्रकार के होते हैं, वैसे ही स्थापना भी दो प्रकार की होती है।

जिस तरह मूल वस्तु स्थापना से पहचानी जाती है, इसी तरह स्थापना वस्तु भी आकार से ही पहचानी जाती है। दोनों की पहचान आकार मात्र से होने के कारण दोनों के द्वारा बोध कराने का कार्य समान रूप से हो ही जाता है।

अपने उपास्य वीतरागदेव और उनकी स्थापना दोनों की पहचान आकार-आकृति से होती है ।

इसलिये ये दोनों एक नाम से ही सम्बोधित होते हैं । भक्ति आदि के लिये भाव पदार्थ में तथा भिन्न पदार्थ में निहित आकार, सरीखा कार्य करता है ।

सर्वज्ञ श्री तीर्थंकर परमात्मा, श्रुतकेवली श्री गणधर महाराजा तथा अन्य इष्ट एवं आराध्य महापुरुष अपने काल में स्वयं अपने आकार से ही पहचाने जाते थे । कारण कि अवधिज्ञानादिक अतीन्द्रिय ज्ञान को धारण करने वाले ऐसे महर्षि भी श्री तीर्थंकर भगवन्तों की अमूर्त्त आत्मा का या उनके गुणों का प्रत्यक्ष ज्ञान करने में असमर्थ होते हुए भी उनके औदारिक देह रूपी पिण्ड या उनके आकार से ही उन्हें पहचानते थे ।

जैसे उपास्य को पहचानने का या उनका परिचय कराने का कार्य उनके मूल आकार से होता है, वैसे ही अन्य पदार्थ में स्थापित उपास्य के आकार से भी वह कार्य हो जाता है ।

इस कार्य से उपास्य की आकार-आकृतिमय स्थापना

भी उपासक के लिए उपास्य के समान ही सम्माननीय, वन्दनीय एवं पूजनीय हो जाती है ।

उपासक जिस प्रकार प्रत्यक्ष परमाराध्य की उपासना से कार्य-सिद्धि प्राप्त करता है, उसी प्रकार मूर्त्ति-प्रतिमा की उपासना से भी उसकी कार्यसिद्धि होती है । यदि मूल वस्तु वन्दनीय एवं पूजनीय होती है तो उसका नाम भी वन्दनीय एवं पूजनीय हो जाता है । ऐसी स्थिति में उसका आकार इत्यादि भी वन्दनीय एवं पूजनीय बन जाये तो इसमें आश्चर्य क्या ?

(१६) मूर्त्तियों का प्रभाव

दर्शकों पर चित्रों का प्रभाव पड़ता है क्योंकि चित्रों में एक विशिष्ट प्रकार का अनूठा आकर्षण होता है । वे अपना प्रभाव देखने वाले जीवों पर डालते हैं । चित्र देखने पर उसमें चित्रित भावों का प्रभाव मनुष्यों पर प्रायः पड़ता ही है । अच्छा चित्र होगा तो मानव पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा और खराब चित्र होगा तो खराब प्रभाव पड़ेगा । देव-गुरुओं के तथा महापुरुषों आदि के चित्र देखकर उनके प्रति हार्दिक आदर बहुमान होता ही है । जैसे—(१) श्री ऋषभदेव भगवान का चित्र, श्री

महावीरस्वामी का चित्र, श्री गौतमस्वामी आदि का चित्र ।

(२) चक्रवर्ती श्री भरत महाराजा आदि का चित्र, संवत् प्रवर्त्तिक श्री विक्रमादित्य का, महाराणा प्रताप का तथा महाराजा कुमारपाल आदि का चित्र ।

प्रायः यह देखा जाता है कि शत्रु के चित्र को देखकर आत्मा में क्रोध आ जाता है और मित्र के चित्र को देखकर प्रेम का प्रादुर्भाव होता है । धार्मिक चित्र देखने से धर्म-भावना बढ़ती है और अधार्मिक शृङ्गारिक स्त्रियों के चित्र देखने से कामुकता जागृत होती है । वीर सैनिकों एवं शूरवीर योद्धाओं के चित्र देखने से देशभक्ति के साथ शूरवीरता की छाप पड़ती है और निर्बल एवं कायर व्यक्तियों के चित्र देखने से निर्बलता और कायरता आ जाती है ।

जब चित्रों का भी ऐसा प्रभाव पड़ता है, तो मूर्तियों का क्यों नहीं पड़ेगा ?

विश्व में निर्विकारी वीतरागदेव की मूर्तियों का प्रभाव सबसे न्यारा, अनेरा और अनूठा है । उनके दर्शन-वन्दन-अर्चन तथा उपासनादिक से आत्मा का उद्धार हो जाता

है। इतना ही नहीं किन्तु आत्मा सकल कर्मों का क्षय करके परमात्मा बनकर मोक्ष के शाश्वत सुख को प्राप्त करता है।

अरे ! आज तो किसी महापुरुष या देशनेता की समाधि के रूप में पाषाण-पत्थर या ईंट इत्यादिक का सामान्य से बनाया हुआ चौतरा भी देश-विदेश के यात्रिक वर्ग के लिये श्रद्धा-भक्ति का विषय बनता है। किसी भी देश की संस्कृति या सभ्यता का पता मूर्तियों से लग जाता है। प्राचीन या अर्वाचीन शिल्पकला का अनुपम दृश्य मूर्तियों-मन्दिरों एवं ग्रन्थों आदि के माध्यम से दिखाई देता है।

यदि मूर्तियों आदि में शिल्पकला की कुछ भी विशिष्टता तथाप्रकार की न होती, तो औरंगजेब और महमूद गजनवी आदि द्वेष भाव से उनका विनाश क्यों करते। हिन्दुओं के शास्त्र-ग्रन्थों को भी अग्नि में नहीं जलाते। कोई व्यक्ति मूर्ति-मन्दिर आदि का अपमान-तिरस्कार एवं विनाशादि तभी करता है जब उसमें उसे किसी प्रकार के ऐसे व्यक्ति के दर्शन हों, जिसके प्रति उसके हृदय में अंश मात्र भी श्रद्धा, आदर एवं बहुमानादि न हों।

आज भी मूर्ति-मन्दिर को नहीं मानने वाले ऐसे

इस्लाम धर्म वाले मुसलमान समाज अपने इष्ट हजरत मुहम्मद की मूर्ति का अपमान-तिरस्कारादि नहीं देख सकते हैं। इसी तरह ईसाई धर्म वाले ईसाई समाज भी सूली पर लटकती ईसामसीह की मूर्ति और क्रॉस का अपमान-तिरस्कारादि नहीं देख सकते हैं तथा आर्यसमाजी भी दयानन्द की मूर्ति का अपमान-तिरस्कारादि नहीं देख सकते हैं।

अपने-अपने देश में अलग-अलग रंगों से बने राष्ट्रध्वज का भी अपमान-तिरस्कारादि कोई भी देशभक्त या देशप्रेमी सहन नहीं करता है।

इसी प्रकार कोई भी व्यक्ति अपने गुरुजनों, माता-पिता इत्यादि के चित्रों तथा अपने मित्र-स्नेहीजनों के फोटो या चित्रों को फाड़कर पाँवों तले कुचलेगा नहीं। किन्तु उनके सम्मुख हाथ जोड़कर नमन-प्रणाम करेगा।

धार्मिक महोत्सवों के प्रसङ्ग पर, विवाह-शादी के प्रसङ्ग पर तथा अन्य राजकीय या सामाजिक कार्यों के प्रसङ्ग पर फोटो-चित्र खींचे जाते हैं, बाद में उन चित्रों को देखकर आनन्द-हर्ष या विषाद एवं रुदन इत्यादि भाव उत्पन्न होते हैं। तत्कालीन घटनायें वर्तमान के समान सामने आ जाती हैं। सिनेमा के पर्दों पर उन्हें

चित्र न समझ कर आप जीवित व्यक्ति की दृष्टि से ही तो देखते हैं। वे चित्र जड़ होते हुए भी आपके हृदय पर जीवित तुल्य प्रभाव डालते हैं।

संसार की बहुत सी बातें चलचित्रों से सीखी जाती हैं। कुव्यसनों की ट्रेनिंग आधुनिक चलचित्रों से भी ली जा रही है, आज के छोटे-छोटे बच्चों में भी वह वृद्धि पा रही है। हिंसा, स्वैराचार, कामुकता आदि की भावनाएँ टी.वी., टेलीविजन और सिनेमा आदि की ही तो देन हैं। इस बात से आप इन्कार नहीं कर सकते।

रात्रि में आते हुए स्वप्नों में भी चित्रों तथा दृश्यों को देखकर सुख और दुःख का अनुभव होता है। इसलिये यह सत्य कहना पड़ता है कि हमारा सम्पूर्ण जीवन चित्रों के प्रभाव से निर्मित है।

यदि हम सिनेमादि चलचित्रों से सब कुछ सीख सकते हैं तो क्या हम देवाधिदेव श्री वीतराग विभु की मूर्ति के दर्शनादिक से और उनकी विधिपूर्वक की गई पूजा-भक्ति एवं उपासनादिक से पवित्र नहीं बन सकते? क्या कर्मों का क्षय नहीं कर सकते? क्या परमात्म-तत्त्व प्राप्त नहीं कर सकते? अवश्यमेव हम कर सकते हैं। इसमें अंश

मात्र भी सन्देह नहीं । किन्तु जब हम उसमें सही रूप में परमात्म-तत्त्व को निहारेंगे तब कार्य की सिद्धि और आत्मा की मुक्ति होगी, अन्यथा नहीं ।

सुप्रसिद्ध 'रामायण' में आता है कि श्री रामचन्द्रजी अपनी पत्नी सीता और लघु बन्धु लक्ष्मण समेत अयोध्या नगरी छोड़कर जब वनवास गये थे, तब श्री रामचन्द्रजी के लघु बन्धु भरत ने बड़े भाई श्री रामचन्द्रजी की चरणपादुका को राजसिंहासन पर स्थापित करके शासन किया था ।

अन्य लोगों की दृष्टि में तो वे श्री रामचन्द्रजी की चरणपादुका लगती थीं, किन्तु खुद भरत की दृष्टि में वे साक्षात् रामचन्द्रजी थे ।

ऐसा ही एक दूसरा उदाहरण 'महाभारत' में एकलव्य नामक भील का आता है ।

'एकलव्य' अनपढ़ भील था । जब श्री द्रोणाचार्य की धनुर्विद्या की प्रशंसा दूर देशों पर्यन्त फैल गई, तब एक दिन निषादराज हिरण्य धनुष्य का लड़का यह एकलव्य धनुर्विद्या सीखने के लिये श्री द्रोणाचार्य के पास आया । लेकिन कौरवों और पाण्डवों आदि राजकुमारों को पढ़ाने

वाले गुरु द्रोणाचार्य ने उसे शूद्र भील जानकर इन्कार किया। अर्थात् उसको धनुर्वेद की शिक्षा नहीं दी। एकलव्य भील ने श्रद्धा और जिज्ञासा की दृढ़ता से श्री द्रोणाचार्य को ही गुरु माना था। अतः अपने स्थान पर आकर उसने अपने गुरु श्री द्रोणाचार्य की मूर्ति बनाकर अपनी छोटी सी कुटिया में स्थापित कर ली। प्रतिदिन उसके सम्मुख बैठकर वह धनुर्विद्या का अभ्यास करता रहा। कभी बाण निशाने से चूक जाता तो मूर्ति के पास आकर क्षमा माँगता और सफल हो जाता तो मूर्ति के चरणों में नत हो जाता, विनयपूर्वक दण्डवत् प्रणाम करता।

इस तरह कुछ वर्षों तक अभ्यास करते हुए वह धनुर्विद्या में बहुत प्रवीण हो गया।

एक दिन श्री द्रोणाचार्य गुरु के साथ कौरव और पांडव मृगया (शिकार) खेलने के लिये वन में गये, साथ में पांडवों का एक प्यारा कुत्ता भी था। यह कुत्ता इधर-उधर घूमते हुए वहाँ जा निकला जहाँ एकलव्य भील धनुर्विद्या का अभ्यास कर रहा था, कुत्ता एकलव्य भील को देखकर भूंकने लगा। उसी समय एकलव्य ने सात बाण ऐसे चलाये कि जिनसे उस कुत्ते का मुख बन्द हो गया। दुःखित होता हुआ वह कुत्ता शीघ्र ही पाण्डवों के

पास चला आया । शीघ्र ही पाण्डवों ने इस प्रकार विचित्र रीति से कुत्ते को मारने वाले को ढूँढा । कुछ आगे दूर जाने पर देखा कि—एकलव्य अपने सामने मिट्टी की एक मूर्ति को रखकर धनुर्विद्या सीख रहा है । तब अर्जुन ने उस एकलव्य भील से पूछा कि तुमने यह अद्भुत और असाधारण शब्दभेदी बाणविद्या किसके पास सीखी है ? भील ने उत्तर दिया कि—गुरु द्रोणाचार्य से यह विद्या मैंने सीखी है ।

यह बात सुनकर तत्काल राजकुमार अर्जुन ईर्ष्या से जलता हुआ गुरु द्रोणाचार्यजी के पास पहुँचा और बोला कि—‘गुरुदेव ! आपने यह क्या किया ? मुझे श्रेष्ठ धनुर्धारी बनाने का वचन देकर भी आपने उस वचन का भंग किया है । इतना ही नहीं, किन्तु एक अनपढ़ भील को असाधारण धनुर्विद्या सिखाकर आपने मेरे साथ अन्याय किया है ।’

यह सुनकर खुद गुरु द्रोणाचार्य भी एकदम आश्चर्य पूर्वक विचार में पड़ गये । ‘अरे ! मैंने तो पूर्व में भी इस भील को विद्या सिखाने से इन्कार कर दिया था । लेकिन फिर भी विद्या सिखाने की बात क्यों सामने आई ?’

इस बात की जानकारी के लिये गुरु और शिष्य दोनों

एकलव्य की कुटिया में पहुँचे । उस समय गुरु द्रोणाचार्य को साक्षात् अपनी कुटिया में देखकर एकलव्य भील उनके चरणों में गिर पड़ा और बोला—

“पूज्य गुरुदेव ! आज आप मेरी छोटी सी कुटिया में पधारे, इसलिये आज मैं कृतकृत्य हुआ हूँ ।”

गुरुश्री द्रोणाचार्य ने पूछा, “हे वत्स ! यह धनुर्विद्या तुमने किसके पास सीखी है ?” हाथ जोड़कर विनयपूर्वक एकलव्य भील ने कहा, “पूज्य गुरुदेव ! आपसे ही मैंने धनुर्विद्या सीखी है ?” ऐसा बोलकर वह उन्हें उस अनगढ़ मूर्ति के पास ले गया । वहाँ पर अपनी मूर्ति को देखकर गुरु द्रोणाचार्य क्षण मात्र में समस्त रहस्य समझ गये और बोले “वत्स ! तूने कमाल कर दिया । अब लाओ गुरु-दक्षिणा ।”

एकलव्य भील बोला—“पूज्य गुरुदेव ! आपके चरणों में सर्वस्व समर्पित है, जो भी अभिलाषा-इच्छा हो, आप आदेश दीजिये ।”

गुरु द्रोणाचार्यजी ने दक्षिणा में उसके दाहिने-दायें हाथ का अँगूठा मांगा । उसी समय शिष्य एकलव्य भील ने तत्काल अपने दायें हाथ का अँगूठा काटकर उन्हें दे दिया ।

केवल गुरु की मूर्ति से ही धनुर्विद्या सीखने की कला जिसने प्राप्त की, उस एकलव्य भील का यह ज्वलन्त उदाहरण इतिहास के पन्नों पर आज भी विद्यमान है ।

एक प्रभु-भक्त ने कहा है कि

“पत्थर भी सुन लेता है,
इसलिये हम पत्थर को पूजते हैं ।
जिसके दिल में है पत्थर,
उसे पत्थर ही सुझते हैं ॥”

मूर्ति को केवल पत्थर मानने वाले बोलते हैं कि
“यह पत्थर की मूर्ति हमें क्या देगी ?”

ऐसा बोलने वाले भूल जाते हैं ‘जीवन के प्रतिदिन के व्यवहार को ।’ जैसे-आपके माता-पिता की छवि-फोटो देखते ही आपको माता-पिता की याद आ जाती है तथा उनके गुण भी तत्काल याद आ जाते हैं । उसी तरह भगवान की मूर्ति को देखकर भगवान की याद आ जाती है तथा उनके गुण भी अवश्य ही याद आ जाते हैं ।

वीतराग परमात्मा की उपासना वीतराग प्रभु को प्रसन्न करने के लिए नहीं, किन्तु अपनी आत्मा को निर्मल बनाने के लिए ही की जाती है । अनादिकाल से अपनी आत्मा के साथ लगे हुए राग-द्वेषादि कर्मों को

दूर करने के लिये वीतराग परमात्मा की मूर्ति-प्रतिमा का अवश्य अवलम्बन लेना परम आवश्यक है ।

जड़ वस्तु के आलम्बन से साक्षात् चेतन वस्तु का आलम्बन मिल जाता है । उससे अपने कार्य की सिद्धि हो जाती है ।

जिस तरह साक्षात् आराध्य की उपासना से उपासक कार्यसिद्धि प्राप्त कर सकता है, उसी तरह स्थाप्य की मूर्ति-प्रतिमा की उपासना से भी उसकी कार्यसिद्धि हो सकती है ।

पत्थर की गाय वगैरह उन वस्तु-पदार्थों को पहचानने के लिए उपयोगी भले ही हों, परन्तु दूध देने के लिये तो वह निरर्थक ही रहती है । पत्थर की गाय दूध भले ही न दे लेकिन उससे साक्षात् गाय की पहचान अवश्य होती है । मूर्ति एवं उसके पूजन से प्रभु के गुणों को तो प्रकट किया ही जा सकता है ।

जिस तरह उपास्य का मूल पिंड तथा उसका आकार निमित्त रूप बनता है, उसी तरह उपास्य की स्थापना भी निमित्त रूप हो सकती है । उपास्य की अनुपस्थिति में उपास्य की स्थापना की उपासना यानी सेवा-भक्ति

द्वारा भी उपासक व्यक्ति उन सम्यग्दर्शनादि गुणों को ढकने वाले ज्ञानावरणीयादि आवरणों को हटाकर आत्मा के गुणों को अवश्यमेव प्रकट कर सकता है ।

मानव का पूर्ण जीवन अपने भावों पर आधारित रहता है तथा भावों में अधिकता और हीनता एवं मध्यस्थता आलम्बन के आधार पर ही आती है । जैसा दृश्य देखने में आयेगा वैसा ही भाव बनेगा । अपने निर्मल भावों की श्रेष्ठता से इन्सान भी अवश्य भगवान बन सकता है । कारण यही है कि वीतराग देव की अनुपम भक्ति में महान् शक्ति पड़ी है । इसलिये महापुरुषों ने कहा है कि 'भक्ति मुक्ति की दूती है ।'

विश्व में मूर्तियाँ तो अनेक हैं, किन्तु वीतराग विभु देवाधिदेव श्रीजिनेश्वर भगवन्तों की मूर्तियों की विशिष्टता सब से न्यारी और अनूठी है । जिनकी अंजनशलाका यानी प्राणप्रतिष्ठा जैनमंत्रों तथा विधिविधानपूर्वक हुई हो, ऐसी जिनमूर्ति देखते ही अपने अन्तःकरण में वीतराग भाव की उत्पत्ति होती है । इसके आलम्बन द्वारा आत्मा परमात्मा बनता है और मोक्ष के शाश्वत सुख को प्राप्त करता है ।

(१७) मूर्ति के दर्शन-पूजन से लाभ

लोक में परिभ्रमण करते हुए मानव को जिनेश्वर भगवान की मूर्ति महान् आलम्बन रूप है। उनके दर्शन एवं पूजन से अनेक लाभ होते हैं।

(१) प्रभु की मूर्ति के दर्शन और पूजन से संसारी आत्माओं की पाप-वासना मन्द पड़ती है और विषय तथा कषाय का वेग घटता है।

(२) प्रभु की मूर्ति के दर्शन एवं पूजन से सुदेव सुगुरु और सुधर्म की श्रद्धा स्थिर रहती है तथा चित्त को शान्ति मिलती है।

(३) प्रभु की मूर्ति के दर्शन व पूजन से भवो-भव की लगी हुई थकावट दूर हो जाती है और परमपद की प्राप्ति भी होती है।

(४) प्रभु की मूर्ति के दर्शन और पूजन से शुभ भावों की जागृति हो जाती है। इससे 'भाव विशुद्धि' का लाभ होता है।

(५) प्रभु की मूर्ति के दर्शन और पूजन से आरम्भ-परिग्रहादिके त्याग की भावना का उत्थान-जन्म होता है।

(६) प्रभु की मूर्ति के दर्शन और पूजन से सन्मार्ग की ओर मुख्यता स्थायी बनती है तथा सर्वदा सद्गुणों का आदर्श मिलता है ।

(७) साधु-साध्वियों का विहार आदि न होने पर भी प्रभु की मूर्ति के दर्शन एवं पूजन करने के कारण धर्मी जीवों को जैनधर्म में दृढ़ता रहती है, इतना ही नहीं किन्तु गौरव होता है कि पूर्व परम्परा से हमारे पूर्वज भी इस कार्य को करते आये हैं इसी से हम जैन हैं और हमारे देव जिनेश्वर हैं, इस प्रकार जानते हैं, जिससे उनका सुधार होता है और उद्धार भी होता है । इसलिये वे धर्म से च्युत नहीं होते ।

(८) प्रतिदिन प्रभु की मूर्ति के दर्शन एवं पूजन करने वाला व्यक्ति पाप से डरता है, तथा अधर्म-अनीतिपूर्ण ऐसे परस्त्रीगमनादि अपकृत्य करने के संस्कार उसकी आत्मा से विनष्ट हो जाते हैं ।

(९) प्रभु की मूर्ति के अर्हनिश दर्शन एवं पूजन करने वाले व्यक्ति को अपना अल्प या अधिक द्रव्य शुभ क्षेत्र में खर्च होने से पुण्य का बन्ध होता है ।

(१०) अनीति, अन्याय आदि कार्य से उपार्जित द्रव्य

को भी यदि अनीतित्याग की भावना से और पश्चाताप पूर्वक जिनचैत्य-मन्दिरादि निर्माण के कार्य में लगाया जाय तो इससे अपनी दुर्गति रुक जाती है। अर्थात् अपने को दुर्गति में जाने का बंध नहीं होता है। कारण कि जिन-चैत्य-मन्दिरादि का निर्माण-कार्य करने से लाखों लोग इसका अच्छा लाभ लेते हैं। निर्माण कर्मबंध का कारण होते हुए भी इसका उपयोग मन्दिरादि शुभ में होने से वह कर्म-निर्जरा का कारण बन जाता है।

(११) जिनमूर्ति के दर्शन-पूजन नित्य करने से अपने अन्तःकरण में तीर्थयात्रा करने की भी शुभ भावना रहती है।

चित्त की निर्मलता और शरीर की नीरोगता तथा दान, शील एवं तप की वृद्धि इत्यादि महान् लाभ तीर्थयात्रा करने से प्राप्त होते हैं।

(१२) शारीरिक रोगादि कारणों से प्रभु की पूजा न हो सके तो भी भावना प्रभुपूजा की रहती है। ऐसी परिस्थिति में कभी मृत्यु भी हो जाय तो भी आत्मा की शुभ गति होती है।

(१३) मूर्ति और मन्दिरों के शिलालेखों द्वारा जो लाभ हुआ है वह विश्व के इतिहास में आज भी प्रत्यक्ष है।

(१४) मूर्ति और मन्दिर के निर्माण में भारतीय शिल्प कला को अत्यन्त-बहुत ही पोषण मिला है और आज भी मिल रहा है ।

(१५) अपने द्रव्य को मूर्ति-मन्दिरादि शुभ कार्य में सद्व्यय करने का यह मार्ग प्रशस्त है । मूर्तियों और मन्दिरों के निर्माण से सर्वदा लाभ ही होता है ।

धर्मदृष्टि से यह धन-व्यय अपनी आत्मा को परमात्मा-परायण बनाता है, तथा व्यवहारदृष्टि से मूर्ति और मन्दिर के रूप में विश्व में स्थायी-कायम रहता है । इतना ही नहीं किन्तु दीर्घकाल पर्यन्त अनेक जीवों का अनुपम उपकार करता हुआ बना रहता है ।

(१८) प्रभु की पूजा में दानादि चार धर्मों की आराधना

वीतराग विभु श्री जिनेश्वर देव की पूजा से पुण्य का बन्ध होता है, कर्म के क्षय रूप निर्जरा भी होती है । दान-शील-तप-भाव इन चार धर्मों की आराधना के सम्बन्ध में कहा है कि—

(१) वीतराग विभु श्री जिनेश्वर देव की भव्य-मूर्ति

के दर्शन-पूजन के समय जो अक्षतादि चढ़ाए जाते हैं, यह एक प्रकार का 'दानधर्म' है ।

(२) वीतराग विभु श्री जिनेश्वरदेव की भव्य-मूर्ति के दर्शन-पूजन के समय विषय-विकारादिक को त्यागना अर्थात् ब्रह्मचर्य का पालन करना, यह भी एक प्रकार का 'शील धर्म' है ।

(३) वीतराग विभु श्री जिनेश्वरदेव की भव्य-मूर्ति के दर्शन-पूजन के समय अशन-पाण-खादिम-स्वादिम इन चारों प्रकार के आहार-का त्याग करना, यह भी एक प्रकार का 'तप धर्म' है ।

(४) वीतराग विभु श्री जिनेश्वर देव की भव्य मूर्ति के दर्शन-पूजन के समय देवाधिदेव श्रीवीतराग प्रभु का स्तुति-स्तवनादि द्वारा गुणगान आदि करना, यह भी एक प्रकार का 'भाव-धर्म' है ।

इस तरह जिनपूजा में दानादि चारों धर्मों की आराधना हो जाती है ।

(१६) प्रभु के दर्शन-पूजन से अष्टकर्म का क्षय

वीतराग विभु श्रीजिनेश्वरदेव के दर्शन-पूजन से ज्ञानावरणीयादि अष्ट कर्मों का क्षय होता है । जैसे—

(१) वीतराग विभु श्री जिनेश्वर देव के दर्शन-पूजन के समय आराधक महानुभाव प्रभु की मूर्ति के सम्मुख चैत्यवन्दनादि द्वारा गुणस्तुति इत्यादि करता है जिससे उसके ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय होता है ।

(२) जिनमूर्ति-प्रतिमा के भावपूर्वक दर्शनादि करने से दर्शनावरणीय कर्म का क्षय होता है ।

(३) जिनमूर्ति-प्रतिमा के दर्शन-पूजन करते समय सभी जीवों के प्रति समभाव रहने से तथा जयणा-यतनापूर्वक वर्तन करने से अर्थात् जीवदया की शुभ भावना से असातादि वेदनीय कर्म का क्षय होता है ।

(४) जिनदर्शन एवं जिनपूजन के समय वीतराग श्री अरिहन्त परमात्मा तथा श्री सिद्ध भगवन्त के गुणों का स्मरण करने से क्रमशः दर्शनमोहनीय एवं चारित्र मोहनीय कर्म का क्षय होता है ।

(५) जिनदर्शन एवं जिनपूजन करते समय शुभ अध्यवसाय यानी शुभ भाव की तीव्रता से तद्फलस्वरूप आयुष्य कर्म का क्षय होता है ।

(६) जिनदर्शन एवं जिनपूजन करते समय श्री जिनेश्वर देव का नाम लेने से नाम कर्म का क्षय होता है ।

(७) वीतराग प्रभु ऐसे श्री जिनेश्वरदेव के दर्शन, वंदन एवं पूजन करने से नीच गोत्र कर्म का क्षय होता है ।

(८) वीतराग विभु ऐसे श्री जिनेश्वर देव के दर्शन एवं पूजन में तन-मन-धन की शक्ति, समय और अन्य द्रव्य का सदुपयोग करने से वीर्यन्तराय आदि अन्तराय कर्म का क्षय होता है ।

इस प्रकार जिनदर्शन एवं जिनपूजन आठों कर्मों के क्षय करने का एक श्रेष्ठतम और सरलतम अनुपम साधन है । इसको अपनाने से पुण्य का बंध, देश से या सर्व से कर्म की निर्जरा तथा अन्त में आत्मा को शाश्वत सुख रूप मोक्ष की प्राप्ति पर्यन्त के समस्त कार्य एक साथ सिद्ध होते हैं ।

प्रतिदिन जिनदर्शन एवं जिनपूजन करने वाला आराधक महानुभाव भवोभव में जिनशासन को पाता है और उत्तरोत्तर कर्मों के क्षय द्वारा कालान्तर में वह मोक्षगामी अवश्य बनता ही है, तथा मोक्ष में शाश्वत सुख को सादि अनन्त स्थिति में पाकर सदा सद्चिदानंद स्वरूप में रहता है ।

जिनदर्शन-वंदन एवं जिनपूजनादि जैसा अति आसान एवं सर्वसुलभ साधन अन्य नहीं है । इसलिये इस आत्मो-

न्नतिकारक साधन को छोटे बच्चे से लगाकर के यावत् वृद्ध तक सभी स्त्री-पुरुष सानंद अपना सकते हैं ।

इसलिये महाज्ञानी महापुरुषों ने कहा है कि 'इस लोक में आत्मकल्याण का श्रेष्ठतम अनुपम साधन वीतराग विभु श्री जिनेश्वर देव का दर्शन एवं पूजन ही है ।'

पारमार्थिक कल्याण-साधना रूप सच्ची आत्मोन्नति का सर्वोत्तम मार्ग जिनदर्शन-वंदन एवं पूजन ही है ।

(२०) मूर्ति को नहीं मानने से नुकसान

मुमुक्षु जीवों का अन्तिम ध्येय अहिंसा-संयम-तप रूप सद्धर्म की सुन्दर आराधना द्वारा जन्म और मरण के महान् दुःखों का सर्वथा क्षय कर मोक्ष प्राप्त करने का ही होता है । इस प्रकार के पवित्र उद्देश्य की पूर्ति के लिये अन्यान्य साधनों में वीतराग विभु श्री जिनेश्वरदेव की निर्विकारी प्रशान्त मुद्रा, ध्यानावस्थित मूर्ति एक मुख्य साधन है । इसी के निमित्त द्वारा साधारण व्यक्तियों से लेकर उच्च अध्यात्मकोटि में, आत्म-रमणता में रमने वाले ऐसे भव्य जीवों ने अपनी आत्मा का कल्याण किया है ।

इस बात का समर्थन हमारे आगमशास्त्र करते हैं और करेंगे ।

मूर्त्ति को नहीं मानने से आत्मा आत्मिक-विकास आदि से अटक जाता है और अति नुकसान होता है ।

(१) मूर्त्ति को नहीं मानने वाले मूर्त्ति के दर्शन, वंदन एवं पूजन के लाभ से वंचित रहते हैं ।

(२) मूर्त्ति को नहीं मानने वाले को महा-आगम-शास्त्रों से तथा उनके सद्बोधों से वंचित ही रहना पड़ता है ।

(३) मूर्त्ति को नहीं मानने वाले पवित्र आगमसूत्रों को तथा उनकी निर्युक्ति, भाष्य एवं चूर्ण आदि को तथा ग्रन्थसर्जक ऐसे महापुरुषों को अप्रामाणिक कहते हैं और उनकी आशातना करके अपनी आत्मा को पापकर्म से अति भारी बनाते हैं, जो अत्यन्त ही नुकसानकारक है । इससे आत्मा का अधःपतन ही होता है ।

(४) मूर्त्ति को नहीं मानने वाले का यात्रा हेतु तीर्थ स्थानों में जाना और वहाँ पर प्रभु के दर्शन-वंदन एवं पूजन का लाभ लेना, इत्यादि सभी कार्य स्वतः ही बन्द हो जाते हैं ।

(५) मूर्त्ति को नहीं मानने से वीतराग विभु श्रीजिने-

श्वर देव की द्रव्यपूजा छूट जाती है तथा तन्निमित्तक शुभ द्रव्य का व्यय भी नहीं होता है ।

(६) मूर्त्ति को नहीं मानने से उसके सम्मुख जो चैत्यवन्दन, देववन्दन, स्तुति, स्तवन, गीत-गान, नृत्य तथा ध्यान इत्यादि होते हैं, वे सभी रुक जाते हैं ।

(७) मूर्त्ति और मन्दिर की तथा उनके दर्शन-वन्दन और पूजन की एवं मूर्त्ति-मन्दिर मानने वाले महानुभावों की टीका-टिप्पणी और निन्दा आदि करने से क्लिष्ट कर्म का बन्ध होता है तथा बोधिदुर्लभतादि महान् दोषों की प्राप्ति होती है ।

(८) मूर्त्ति और मन्दिर नहीं मानने से और उनके दर्शनादि नहीं करने से आत्मा का अधःपतन ही होता है । चौरासी लाख जीवायोनियों में परिभ्रमण ही रहता है और चारों गतियों में भटकना ही पड़ता है ।

(९) जिनमूर्त्ति-जिनबिम्ब-जिनप्रतिमा और जिनागम, जैनसिद्धान्त और जैनशास्त्र इनके प्रशस्त आलम्बन एवं इनकी विधिपूर्वक सेवा-भक्ति बिना मुक्ति पाने की चाहे कितनी भी अभिलाषा-इच्छा क्यों न हो, मुक्ति नहीं मिल सकती है ।

(२१) जिनमन्दिरों की उपयोगिता

वीतराग विभु श्री जिनेश्वर देव की अनुपम सेवा-भक्ति तथा उपासनादि के लिये जिनचैत्य-जिनमन्दिर-जिनालय आदि की आवश्यकता के साथ-साथ महती उपयोगिता भी है ।

जैसे जगत् में विद्याध्ययन के लिये विद्यालय, चिकित्सा के लिये चिकित्सालय तथा ज्ञानार्जन के लिये पुस्तकालय इत्यादि की आवश्यकता का अनुभव करते हैं वैसे ही जिनेश्वर देव के दर्शन-वन्दन एवं पूजन के लिये जिनचैत्य-जिनमन्दिर-जिनालय की भी अत्यन्त आवश्यकता है ।

सांसारिक कामों की अपेक्षा आत्मकल्याण का काम प्रथमतः आवश्यक है ।

कारण कि श्रीजिनेश्वर देव के भव्य मन्दिर, जिन-मूर्तियाँ तथा उनकी सेवा-पूजा के उत्तम उत्सव-महोत्सव आत्मोन्नति एवं आत्मविकास के लिये अनन्य साधन हैं; इतना ही नहीं किन्तु धार्मिक जीवन के केन्द्रित लक्ष्य-बिन्दु हैं ।

अर्थात् आत्मा को आत्मकल्याण के कार्य में जिनमन्दिर,

जैनउपाश्रय एवं जैनधर्मस्थान, देवालय इत्यादि श्रेष्ठ साधन रूप में हैं ।

वहाँ से ही सभी धार्मिक प्रवृत्तियाँ प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में उत्पन्न होती हैं ।

जिनके हृदय में वीतराग विभु श्रीजिनेश्वर देव के दर्शन-वन्दन एवं पूजन इत्यादि करने का भाव होता है वे लोग जिनमन्दिरों की आवश्यकता निःसन्देह अवश्य स्वीकार करते हैं ।

जैसे अपनी धर्म-भावना को सही रूप में बनाये रखने के लिये मन्दिरों की अति आवश्यकता है, वैसे ही परिग्रह की ममता को कम करने के लिये भी मन्दिरों की उपयोगिता है ।

मन्दिरों के नव-निर्माण तथा जीर्णोद्धार इत्यादि कार्यों में धन का सद्व्यय करना शुभ कर्मबन्धन का निमित्त-कारण बनता है ।

इसलिये मन्दिर ही वे सुन्दर स्थान हैं कि जहाँ पर भावुक व्यक्ति अपने धन का सदुपयोग अच्छी तरह से कर सकता है और साथ में अति पुण्य भी उपार्जन करता है ।

सारे जगत् में सुप्रसिद्ध ऐसे श्री जिनमन्दिरों की महिमा अनेरी और अनूठी है। इसके सम्बन्ध में एक विद्वान् पण्डित ने जिनमन्दिरों की महिमा का वर्णन करते हुए कहा है कि—

१. 'श्रीजिनमन्दिर' विकासमार्ग से विमुख प्राणियों को इस मार्ग पर आगे बढ़ने के लिए अग्रम्य उपदेश देने वाले 'मूल्यवान् ग्रन्थ' हैं।

२. भवाटवी के पथभ्रष्ट पथिकों को राह बताने के लिये 'प्रकाश-स्तम्भ' हैं।

३. आधि, व्याधि और उपाधि के त्रिविध ताप से जली हुई आत्माओं को विश्राम के लिये 'आश्रय स्थान' हैं।

४. कर्म तथा मोह के आक्रमण से व्यथित हृदयों को आराम देने के लिये 'संरोहिणी औषधि' हैं।

५. आपत्तिरूपी पहाड़ी पर 'घटादार छायादार वृक्ष' हैं।

६. दुःखरूपी जलते दावानल में 'शीतल हिमकूट' हैं।

७. संसाररूपी खारे सागर में 'मीठे भरने' हैं।

८. सन्तों के 'जीवन प्राण' हैं।

९. दुर्जनों के लिये 'अमोघ शासन' हैं ।
१०. अतीत की 'पवित्र स्मृति' हैं ।
११. वर्तमान के आत्मिक 'विलास भवन' हैं ।
१२. 'भविष्य का भोजन' हैं ।
१३. 'स्वर्ग की सीढ़ी' हैं ।
१४. 'मोक्ष के स्तम्भ' हैं ।
१५. नरक मार्ग में 'दुर्गम पहाड़' हैं ।
१६. तिर्यच गति के द्वारों के विरुद्ध 'मजबूत-शक्तिशाली अर्गला' हैं ।

जैनधर्म-जैनशासन का ध्वज जैनमन्दिरों के शिखरों पर लहराता हुआ भी जैनमन्दिर की ओर सबको आकर्षित करता है ।

जिनमन्दिर का शिल्प-स्थापत्य भी अनुपम होता है ।

जिनमन्दिर में रही हुई श्री जिनेश्वर देव की भव्य मूर्ति आत्म-स्वरूप का भान कराती है और जब हमें आत्मस्वरूप का भान हो जाता है तब हम उसे प्राप्त करने का सुप्रयत्न करते हैं ।

जिस गाँव या नगर में जिनमन्दिर होते हैं, वहाँ पर जंगम-तीर्थरूप साधु-साध्वियों का भी आवागमन प्रायः विशेषरूप में रहता ही है। अर्थात् जहाँ जिनमन्दिर रूप स्थावर तीर्थ विद्यमान होते हैं, वहाँ पर जंगम तीर्थरूप साधु-साध्वियों के आगमन से श्रावक-श्राविका वर्ग को तो स्थावर और जंगम दोनों तीर्थों के दर्शन-वन्दन और सेवा-भक्ति आदि का सुन्दर लाभ मिलता है। तदुपरान्त जिन-वाणी श्रवण का भी अपूर्व लाभ मिल जाता है।

इसलिये जिनमन्दिरों की अति आवश्यकता के साथ-साथ उनकी उपयोगिता भी अर्हानिश्च रहती है।

(२२) 'चैत्य' शब्द का वास्तविक अर्थ

इस अवसर्पिणी काल के चौबीसवें तीर्थंकर श्रमण भगवान महावीर परमात्मा के पंचम गणधर श्रीसुधर्मा स्वामीजी के परम्परागत आचार्यों ने 'चैत्य' शब्द का जो अर्थ लिखा है वह सर्वज्ञदेव श्री महावीर विभु द्वारा कथित होने से वास्तविक-यथार्थ है। कलिकालसर्वज्ञ श्रीमद् हेमचन्द्र सूरेश्वरजी महाराज ने अपने 'अनेकार्थसंग्रह' नामक कोश में चैत्य शब्द का अर्थ करते हुए कहा है कि—

“चैत्यं जिनौकस्तद्बिम्बं, चैत्यो जिनसभा-तरु।”

अर्थ—चैत्य कहने से (१) जिनचैत्य, जिनमन्दिर (२) जिनमूर्ति, जिनप्रतिमा और (३) जिनराज की सभा का चौतराबन्ध तरु-वृक्ष ।

‘श्रीग्रन्थान् चिन्तामणि’ कोश ग्रन्थ में भी उन आचार्य महाराजश्री ने इसी बात की पुष्टि करते हुए कहा है कि “चैत्यविहारौ जिनसद्मनि ।” चैत्य यानी विहार शब्द जिनगृह के अर्थ में है ।

१४४४ ग्रन्थों के प्रणेता आचार्य भगवन्त श्रीमद् हरिभद्रसूरीश्वरजी महाराज ने भी कहा है कि—

“चैत्यवन्दनतः सम्यक् शुभो भावः प्रजायते ।
तस्मात् कर्मक्षयः सर्वस्तत् कल्याणमश्नुते ॥”

अर्थ—चैत्य यानी जिनमन्दिर एवं जिनमूर्ति को सम्यक् प्रकार वन्दन करने से प्रकृष्ट शुभ भाव पैदा होते हैं । शुभ भाव से समस्त कर्मों का क्षय होता है और कर्मों का क्षय होने के पश्चात् पूर्ण कल्याण की प्राप्ति होती है ।

“चैत्यवन्दन’ अर्थात् अरिहन्त भगवन्तों की मूर्ति-प्रतिमाओं की पूजा कैसे होती है, इस सम्बन्ध में कहते हैं कि “चित्तम्-अन्तःकरणं तस्य भावः कर्म वा, प्रतिमा लक्षणम् अर्हच्चैत्यम् ।”

“अर्हतां प्रतिमाः प्रशस्तसमाधि - चित्तोत्पादकत्वात् चैत्यानि भण्यन्ते ।” अर्थ—चित्त यानी अन्तःकरण का भाव या अन्तःकरण की क्रिया, उसका नाम चैत्य है । श्री अरिहन्तों की मूर्ति-प्रतिमाएँ अन्तःकरण की प्रशस्त समाधि को उत्पन्न करने वाली होने से ‘चैत्य’ कहलाती हैं ।

श्रीनन्दीसूत्रादि आगमशास्त्रों में भी जहाँ पर मतिज्ञानादि पाँच ज्ञानों का विषय आया है वहाँ पर लिखा हुआ है कि “नाणं पंचविहं पन्नत्तं” अर्थात् ज्ञान के पाँच प्रकार हैं । वहाँ पर ऐसा पाठ नहीं है कि “चेइयं पंचविहं पन्नत्तं” अर्थात् चैत्य पाँच प्रकार के हैं ।

नवाङ्गी टीकाकार आचार्य भगवन्त श्रीमद् अभयदेव सूरीश्वरजी महाराज ने ‘चैत्य’ शब्द का अर्थ “इष्टदेव की प्रतिमा” ऐसा किया है । यथा—“चैत्यम् इष्टदेवप्रतिमा” ।

(भगवती सूत्र, शतक २, उद्देश-१)

तदुपरान्त—‘प्रवचनसारोद्धार’ नामक ग्रन्थ की वृत्ति में तथा ‘सूर्यप्रज्ञप्ति’ नामक ग्रन्थ में भी ‘चैत्य’ शब्द का अर्थ जिनप्रतिमा तथा उपचार से जिनमन्दिर ऐसा किया है ।

उक्त शास्त्रोक्त कथनों से यह सिद्ध होता है कि चैत्य शब्द का सही अर्थ जिनचैत्य-जिनमन्दिर ही हो सकता है। अन्य ज्ञान या साधु अर्थ नहीं। इसके समर्थन में अन्य भी आगमशास्त्रों के पाठ मिलते हैं। देखिये—

(१) श्रीज्ञातासूत्र, श्रीउपासकदशांगसूत्र तथा श्री विपाक सूत्र में— “पूर्णभद्रचेइए” पाठ आता है। वहाँ पर पूर्णभद्रयक्ष की मूर्ति व मन्दिर का अर्थ कहा है।

(२) श्री उववाई सूत्र में “बहवे अरिहंतचेइयाइ” पाठ आता है। वहाँ पर भी मूर्ति और मन्दिर अर्थ कहा गया है।

(३) श्रीअंतगडदशांग सूत्र में जहाँ यक्ष का चैत्य कहा गया है, वहाँ पर भी उसका भावार्थ मूर्ति व मन्दिर बताया है।

(४) श्रीव्यवहारसूत्र की चूलिका में श्रीभद्रबाहु स्वामीजी ने ‘द्रव्यलिंगी “चैत्य स्थापना” करने लग जायेंगे’, वहाँ पर “मूर्ति की स्थापना” ऐसा अर्थ किया है।

(५) श्रीप्रश्नव्याकरण ग्रन्थ के आस्रव द्वार में चैत्य शब्द का अर्थ ‘मूर्ति’ किया है।

(६) श्री आवश्यक सूत्र के पाँचवें कायोत्सर्ग नामक अध्ययन में “अरिहंतचेइयाणं” शब्द का अर्थ ‘जिनप्रतिमा’ किया है। यथा—“अर्हन्तः तीर्थकराः, तेषां चैत्यानि प्रतिमालक्षणानि।

(७) श्री भगवती सूत्र में असुरकुमारदेव सौधर्मदेव-लोक में जाते हैं, तब तक तीन का शरण करते हैं। एक अरिहंत भगवन्त का, दूसरा चैत्य यानी जिनप्रतिमा का और तीसरा साधु का। यथा—

“नन्नत्थ अरिहंते वा अरिहंतं चेइयाणि वा भावी
अप्पणो अणगारस्स वाणिस्साव उड्ढं उप्पयंति जाव
सोहम्मो कप्पो।”

इत्यादि अनेक पाठ अपने आगमशास्त्रों में चैत्य शब्द के अर्थ के बारे में मिलते हैं। इधर तो मात्र दिग्दर्शन ही कराया है।

**(२३) जिनमूर्ति-जिनप्रतिमा कैसी है और
क्या करती-कराती है ?**

देवाधिदेव श्रीजिनेश्वर भगवान की विधि-विधानपूर्वक अंजनशलाका-प्राणप्रतिष्ठा की हुई भव्य मूर्ति-प्रतिमा के दर्शन-पूजनादि करते समय भव्य जीवों-भव्यात्माओं को

अपार आनन्द होता है, साढ़े तीन करोड़ रोमराजि विकसित हो जाती है, मनमयूर नाच उठता है, काया काम करने लगती है, दोनों हाथ वन्दना की मुद्रा में जुड़ जाते हैं, दोनों नेत्र देख रहे हैं, सिर-मस्तक झुक जाता है और वदन-मुख में से अनन्तज्ञानादि गुणों के खजाने-भण्डार ऐसे वीतराग भगवान के गीत-गान एवं स्तुति-स्तवनादि भक्ति-भाव पूर्वक स्वतः निकलते हैं ।

‘समस्त दोष-रहित सर्वज्ञ विभु हे जिनेश्वर देव ! आपकी मूर्ति, आपकी प्रतिमा कैसी है ?’

(१) हे प्रभो ! तेरी मूर्ति, तेरी प्रतिमा दिव्यस्वरूपी ‘अतीव सुन्दर’ है ।

(२) हे प्रभो ! तेरी मूर्ति, तेरी प्रतिमा ‘अनुपम अलौकिक’ है ।

(३) हे प्रभो ! तेरी मूर्ति, तेरी प्रतिमा ‘अद्वितीय अजोड़’ है ।

(४) हे प्रभो ! तेरी मूर्ति, तेरी प्रतिमा ‘सर्वदा निर्विकारी’ है ।

(५) हे प्रभो ! तेरी मूर्ति, तेरी प्रतिमा ‘नित्य मनोहारिणी’ है ।

(६) हे प्रभो ! तेरी मूर्त्ति, तेरी प्रतिमा प्रताप का 'पवित्र भवन' है ।

(७) हे प्रभो ! तेरी मूर्त्ति, तेरी प्रतिमा भव्यजीवों के नेत्रों के लिये 'दिव्यसुधा-अमृत तुल्य' है ।

(८) हे प्रभो ! तेरी मूर्त्ति, तेरी प्रतिमा अशोक वृक्षादि अष्ट प्रातिहार्य की अनुपम शोभा से 'सुन्दर सुशो-भित' है ।

(९) हे प्रभो ! तेरी मूर्त्ति, तेरी प्रतिमा प्रतिक्षण बढ़ती हुई कान्ति से 'अत्युत्तम-अद्भुत' है ।

(१०) हे प्रभो ! तेरो मूर्त्ति, तेरी प्रतिमा विश्व में सर्वदा सर्वोत्कृष्टपने प्रवर्त्तती है । इसलिए यह सर्वोत्कृष्ट है ।

(११) हे प्रभो ! तेरी मूर्त्ति, तेरी प्रतिमा की प्रामाणिकता को तो आगम-सिद्धान्त मर्मज्ञ महापुरुषों ने आदर-बहुमान पूर्वक प्रेम से स्वीकारा है । इसलिए वह मूर्त्ति-प्रतिमा 'शास्त्रोक्त प्रामाणिक' है ।

(१२) हे प्रभो ! तेरी मूर्त्ति, तेरी प्रतिमा सद् विचारवान समस्त शिष्ट पुरुषों को तथा धर्मीजीव-धर्मात्माओं को 'अर्हनिश आदरणीय' है ।

(१३) हे प्रभो ! तेरी मूर्ति, तेरी प्रतिमा नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव इन चारों निक्षेपों से 'नित्य वन्दनीय' एवं 'सर्वदा पूजनीय' है ।

(१४) हे प्रभो ! तेरी मूर्ति, तेरी प्रतिमा मोहरूपी दावानल-अग्नि को शान्त करने के लिये 'मेघवृष्टि' के समान है ।

(१५) हे प्रभो ! तेरी मूर्ति, तेरी प्रतिमा समतारूपी प्रवाह को देने के लिये पवित्र 'नदी-सरिता' के सदृश है ।

(१६) हे प्रभो ! तेरी मूर्ति, तेरी प्रतिमा सत्पुरुषों को वाञ्छित देने के लिये उत्तम 'कल्पलता' के तुल्य है ।

(१७) हे प्रभो ! तेरी मूर्ति, तेरी प्रतिमा संसाररूपी उग्र तिमिर-अन्धकार का नाश करने के लिये 'सूर्य की तीव्र प्रभा के स्वरूप' है ।

(१८) हे प्रभो ! तेरी मूर्ति, तेरी प्रतिमा भव्यजीवों-भव्यात्माओं को संयम द्वारा संसार-सागर से पार करने के लिये 'अत्युत्तम स्टीमर-जहाज' के सदृश है ।

(१९) हे प्रभो ! तेरी मूर्ति, तेरी प्रतिमा भव्यजीवों भव्यात्माओं को संयम द्वारा मोक्षनगर में ले जाने वाली 'दिव्य एरोप्लेन-विमान' के सदृश है ।

(२०) हे प्रभो ! तेरी मूर्ति, तेरी प्रतिमा के नेत्र-युग्म 'प्रशमरसनिमग्न' हैं ।

(२१) हे प्रभो ! तेरी मूर्ति, तेरी प्रतिमा का मुख 'शरदूर्णमा के चन्द्रमा' के समान है ।

(२२) हे प्रभो ! तेरी मूर्ति, तेरी प्रतिमा के दोनों हाथ शस्त्रों-हथियारों से सर्वदा शून्य हैं ।

(२३) हे प्रभो ! तेरी मूर्ति का उत्संग (खोला) स्त्री के संग से सर्वदा रहित है ।

(२४) हे प्रभो ! तेरी मूर्ति, तेरी प्रतिमा समचतुरस्र संस्थान से समलङ्कृत है ।

(२५) हे प्रभो ! तेरी मूर्ति, तेरी प्रतिमा निराकार ऐसे सिद्धभगवन्तों का 'साकार रूप' है, अरिहन्त परमात्माओं का प्रत्यक्ष स्वरूप है ।

(२६) हे प्रभो ! तेरी मूर्ति, तेरी प्रतिमा 'प्रशान्त मुद्रा' युक्त है ।

(२७) हे प्रभो ! तेरी मूर्त्ति, तेरो प्रतिमा 'ध्यानस्थ दशा' मय है ।

(२८) हे प्रभो ! तेरो मूर्त्ति, तेरी प्रतिमा विश्व के सब देवों की मूर्त्तियों से 'न्यारी, अनेरी और अनूठी' है ।

(२९) हे प्रभो ! तेरी मूर्त्ति, तेरी प्रतिमा अति आकर्षक एवं प्रशस्ततम है ।

(३०) हे प्रभो ! तेरी मूर्त्ति, तेरी प्रतिमा 'ध्यानस्थ' एवं 'आह्लादजनक' है ।

(३१) हे प्रभो ! तेरी मूर्त्ति, तेरी प्रतिमा साक्षात् तेरे स्वरूप का दर्शन कराने वाली 'निर्मल दर्पण' के समान है ।

(३२) हे प्रभो ! तेरी मूर्त्ति, तेरी प्रतिमा पिण्डस्थ पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत इन चारों अवस्थाओं का साक्षात्कार कराती 'महान् आकृति' है ।

(३३) हे प्रभो ! तेरी मूर्त्ति, तेरी प्रतिमा तेरे दर्शन-वन्दन एवं पूजन इत्यादिक का सुन्दर लाभ लेने वाली आराधक आत्मा को पवित्र करती है ।

(३४) हे प्रभो ! तेरी मूर्त्ति, तेरी प्रतिमा आराधक आत्माओं को मनोवांछित वस्तुएँ और उनकी इष्ट फल-सिद्धि को प्राप्त कराती है ।

(३५) हे प्रभो ! तेरी मूर्त्ति, तेरी प्रतिमा आराधक आत्मा को कर्म की निर्जरां कराती है ।

(३६) हे प्रभो ! तेरी मूर्त्ति, तेरी प्रतिमा तेरे दर्शन-पूजन के समय अक्षत आदि चढ़ाने का कार्य करने वाली आराधक आत्माओं को दान-धर्म का का लाभ दिलाती है ।

(३७) हे प्रभो ! तेरी मूर्त्ति, तेरी प्रतिमा तेरे दर्शन-पूजन के समय आराधक का मन विषय-विकारों से रहित होने से उसे शीलधर्म का लाभ दिलाती है ।

(३८) हे प्रभो ! तेरी मूर्त्ति, तेरी प्रतिमा तेरे दर्शन-पूजन के समय आहारादि का त्याग करने वाली आराधक आत्माओं को तपधर्म का लाभ दिलाती है ।

(३९) हे प्रभो ! तेरी मूर्त्ति, तेरी प्रतिमा तेरे दर्शन-पूजन के समय चैत्यवन्दन करनेवाले तथा स्तुति-स्तवनादि रूप में गुणगान करने वाली आराधक आत्माओं को भावधर्म का पालन कराती है ।

(४०) हे प्रभो ! तेरी मूर्ति, तेरी प्रतिमा तेरे दर्शन-पूजन के समय चैत्यवन्दन एवं स्तुति-स्तवनादि करने वालो ऐसी आराधक आत्माओं के ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय कराती है ।

(४१) हे प्रभो ! तेरी मूर्ति, तेरी प्रतिमा तेरे भाव-मय दर्शन-पूजन के समय आराधक आत्माओं के दर्शनावरणीय कर्म का क्षय कराती है ।

(४२) हे प्रभो ! तेरी मूर्ति, तेरी प्रतिमा तेरे दर्शन-पूजन के समय सभी जीवों के प्रति समभाव रखने वाली तथा यातनापूर्वक वर्त्तन करने वाली ऐसी आराधक आत्माओं के असाता वेदनीय कर्म का क्षय कराती है ।

(४३) हे प्रभो ! तेरी मूर्ति, तेरी प्रतिमा तेरे दर्शन-पूजन के समय श्री अरिहन्त परमात्मा और श्रीसिद्ध भगवन्त के गुणों का स्मरण करने मात्र से आराधक आत्माओं के क्रमशः दर्शनमोहनीय कर्म का क्षय और चारित्रमोहनीय कर्म का क्षय कराती है ।

(४४) हे प्रभो ! तेरी मूर्ति, तेरी प्रतिमा तेरे दर्शन-पूजन के समय आराधक आत्माओं के विशुद्ध अध्यवसाय की तीव्रता के फलस्वरूप अशुभ आयुष्य कम का क्षय कराती है ।

(४५) हे प्रभो ! तेरी मूर्ति, तेरी प्रतिमा तेरे दर्शन-पूजन के समय तेरा नाम लेने से आराधक आत्माओं के नाम कर्म का क्षय कराती है ।

(४६) हे प्रभो ! तेरी मूर्ति, तेरी प्रतिमा दर्शन-पूजन-वन्दन करने से आराधक आत्माओं के नीच गोत्र कर्म का क्षय कराती है ।

(४७) हे प्रभो ! तेरी मूर्ति, तेरी प्रतिमा दर्शन-पूजन में तन-मन-धन की शक्ति का सदुपयोग करने से आराधक आत्माओं को वीर्यान्तराय इत्यादि पाँच अन्तराय कर्म का क्षय कराती है ।

(४८) हे प्रभो ! तेरी मूर्ति, तेरी प्रतिमा भव्य-जीवों-भव्यात्माओं को प्रत्येक धर्मक्रिया में, धर्मानुष्ठान में और आत्मा को परमात्मा बनाने में तथा मुक्तिपुरी में ले जाने के लिये परम आलम्बनभूत बनती है ।

(४९) हे प्रभो ! तेरी मूर्ति, तेरी प्रतिमा प्रतिदिन तीन काल दर्शनीय, नमस्करणीय, वन्दनीय, पूजनीय, उपासनीय, अनुमोदनीय एवं प्रशंसनीय है ।

(५०) हे प्रभो ! तेरी मूर्ति, तेरी प्रतिमा अर्हनिश

देव-देवियों से, इन्द्र-इन्द्राणियों से, नर-नारियों से, मनुष्य-तिर्यच इत्यादि प्राणियों से भक्ति-भाव-बहुमानपूर्वक दृश्य-अदृश्य, प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से पूजित है ।

(५१) हे प्रभो ! तेरी मूर्ति, तेरी प्रतिमा धर्मरूप महा नरेन्द्र की नगरी के सदृश है ।

(५२) हे प्रभो ! तेरी मूर्ति, तेरी प्रतिमा अनेक प्रकार की आपत्ति-विपत्ति रूपी वेलड़ी-लता का विनाश करने के लिये धूमस के समान है ।

(५३) हे प्रभो ! तेरी मूर्ति, तेरी प्रतिमा आनन्द उत्कर्ष के उत्तम प्रभाव का विस्तार करने में लहरों का काम करने वाली है ।

(५४) हे प्रभो ! तेरी मूर्ति, तेरी प्रतिमा कल्याण रूपी वृक्ष की मंजरी के तुल्य है ।

(५५) हे प्रभो ! तेरी मूर्ति, तेरी प्रतिमा राग-द्वेष रूपी रिपुओं पर विजय प्राप्त कराने वाली है ।

(५६) हे प्रभो ! तेरी मूर्ति, तेरी प्रतिमा अभयदान-युक्त और उपाधि रहित वृद्धिगत गुणस्थानक के योग्य अहिंसा-दया का पोषण करती है ।

(५७) हे प्रभो ! तेरी मूर्ति, तेरी प्रतिमा श्रेष्ठ ध्यान के प्रसाद से ज्ञानरूपी देदीप्यमान प्रभा-तेज को बताती है ।

(५८) हे प्रभो ! तेरी मूर्ति, तेरी प्रतिमा भावपूर्वक दर्शन-पूजन करने वाली भव्यात्माओं की दुर्गति का विनाश करती है ।

(५९) हे प्रभो ! तेरी मूर्ति, तेरी प्रतिमा भावपूर्वक दर्शन-पूजन करने वाली भव्यात्माओं को पुण्य का संचय-संग्रह कराती है ।

(६०) हे प्रभो ! तेरी मूर्ति, तेरी प्रतिमा भावपूर्वक दर्शन-पूजन करने वाले भव्यजीवों की लक्ष्मी को बढ़ाती है ।

(६१) हे प्रभो ! तेरी मूर्ति, तेरी प्रतिमा भावयुक्त दर्शन-पूजन करने वाले भव्यप्राणियों की नीरोगता को पुष्ट करती है ।

(६२) हे प्रभो ! तेरी मूर्ति, तेरी प्रतिमा भावसहित दर्शन-पूजन करनेवाले भव्यजीवों के सौभाग्य को जन्म देती है ।

(६३) हे प्रभो ! तेरी मूर्ति, तेरी प्रतिमा भाव-युक्त दर्शन-पूजन करने वाली भव्यात्माओं को स्वर्ग प्रदान करती है ।

(६४) हे प्रभो ! तेरी मूर्ति, तेरी प्रतिमा भाव-समेत दर्शन-पूजन करने वाले भव्य जीवों को मोक्ष देती है ।

इससे यह सिद्ध होता है कि देवाधिदेव वीतराग श्री जिनेश्वर भगवन्त की मूर्ति-प्रतिमा की एवं मूर्तिपूजा की प्राचीनता की परम सर्वोत्कृष्ट सिद्धि सुप्रसिद्ध है ।

(२४) अशुभालम्बन से आत्मभाव में अशुद्धता और शुभालम्बन से शुद्धता

आत्मा के भावों में अशुभ आलम्बन से अशुद्धता आती है और शुभ आलम्बन से शुद्धता आती है ।

श्रमण-साधु को संयम की शुद्धता और ब्रह्मचर्य का संरक्षण करने के लिये 'श्रीदशवैकालिक सूत्र' में वसति के स्थान में जहाँ साधु महाराज ठहरते हैं, वहाँ पर यदि काम-विषयवासना उत्तेजक कोई चित्र या फोटू भी हो तो ठहरने में बड़ा दूषण बताया है । देखिये—

“चित्तभित्तिं न गिज्जाए नारिं वा सुअलंकिअं ।
भक्खरमिव दठ्ठूणं दिट्ठिं पडिसमाहरे ॥”

जिस वसति स्थान में दीवार पर नारी-स्त्री का चित्र हो, वहाँ पर साधु ठहरे नहीं । कारण कि, उस निमित्त से भी साधु के मन में ‘अशुभ भाव-अशुद्ध भाव’ उत्पन्न हो जाते हैं । इसलिये ऐसे स्थान में साधु रात्रिनिवास न करे ।

पूज्य आर्य श्रीशय्यंभवसूरीश्वरजी महाराज विरचित श्रीदशवैकालिक सूत्र की इसी गाथा का लोकभाषा में अनुवाद करने वाले महोपाध्याय श्रीयशोविजयजी महाराज ने साढ़े तीन सौ गाथाओं के स्तवन में कहा है कि—

“दशवैकालिक दूषण दाख्यु, नारी चित्र ने ठामे ।
तो किम जिन प्रतिमा देखीने, गुण नवी होय परिणामे ॥”

अर्थात्—दीवार-भीत पर चित्रित अलंकार आदि से सुशोभित नारी-स्त्री को साधु पुरुष अपनी दृष्टि से देखे नहीं, भले स्त्री का चित्र हो या साक्षात् नारी का स्वरूप हो, वहाँ पर साधु पुरुष अपनी दृष्टि को स्थिर न करे । कदाचित् प्रमादवश दृष्टि पड़ भी जाय तो भी तत्काल दृष्टि को अपनी ओर खींच लेनी चाहिये और अन्तर्मुख

कर लेनी चाहिए । जैसे मध्याह्न के समय सूर्य मण्डल पर दृष्टि पड़ते ही तुरन्त पुनः खींचली जाती है, वैसे इधर भी समझना ।

इधर यही सोचने का है कि अश्लील-खराब चित्र-फोटू आदि से मन के परिणाम अशुभ हो सकते हैं तो फिर क्या वीतराग परमात्मा की मूर्ति-प्रतिमा के दर्शन-वंदन एवं पूजन से शुभ भाव नहीं उत्पन्न हो सकते हैं ? अवश्य कहना ही पड़ेगा कि शुभ आलम्बन-निमित्त से शुभ भाव प्रगट हो सकते हैं । इस बात में अंश मात्र भी संशय रखने की गुंजाइश नहीं है । मूर्ति-प्रतिमा भले पत्थर की या अन्य भी क्यों न हो, किन्तु अपने अन्तःकरण का उच्च भाव पत्थर इत्यादि की मूर्ति-प्रतिमा में भी परमात्मा का दर्शन करता है । इससे उसको अपूर्व लाभ होता है । आत्मिक विकास का सारा आधार अन्तःकरण-हृदय के शुभ भाव पर है लेकिन प्रशस्त आलम्बन बिना शुभ भाव प्रगट नहीं होते हैं । इसलिये शुभ भाव प्रगट करने के लिये जिनमूर्ति-जिनप्रतिमा का श्रेष्ठ आलम्बन कभी भी छोड़ना नहीं । पाँचवें आरे में जिनबिम्ब और जिनागम ये ही दोनों आलम्बन सर्वश्रेष्ठ हैं ।

(२५) सगुण से निर्गुण और साकार से निराकार

विश्व में अनेक आलम्बन हैं । उनमें प्रशस्ततम

आलम्बन रूप जिनबिम्ब और जिनागम अद्वितीय हैं, सर्वश्रेष्ठ हैं। देवाधिदेव श्री जिनेश्वर भगवान की मूर्ति-प्रतिमा के अनुपम दर्शन-अर्चनादिक से दर्शनविशुद्धि अवश्य होती है। इतना ही नहीं किन्तु साथ-साथ उनके गुणों का भी चिन्तन-मनन आसानी से होता है। आत्मा साकार उपासना द्वारा ही निराकार उपासना की अधिकारिणी हो सकती है। जैसे स्टीमर-जहाज चलाने वाले का लक्ष्य ध्रुव कांटे पर लगा रहता है तो वह स्टीमर-जहाज जल्दी किनारे पहुँच जाता है, वैसे इधर भी जिन-मूर्ति जिनप्रतिमा के आलम्बन से उपासक मानव का लक्ष्य अपनी आत्मा के वीतरागी ऐसे जिनेश्वरदेव के स्वरूप पर लगा रहता है तो वह आत्मा अवश्य वीतरागी बनती है। अर्थात् आत्मा सगुण उपासना के आलम्बन से ही निर्गुण उपासना की उत्तम भूमिका तक पहुँचती है।

अपने इष्ट देवाधिदेव जिनेश्वर परमात्मा की मूर्ति-प्रतिमा का दर्शन, वन्दन और पूजन करना यही सगुण उपासना है। यों करते-करते ही अन्त में अपनी आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप में एकलीन-एकतान बन जाती है।

जिस समय ध्याता, ध्येय और ध्यान ये तीनों एकरूप हो जाते हैं; ध्याता अपनी आत्मा है, ध्यान परमात्मा का

स्वरूप है और ध्येय परमात्मपद मोक्षपद प्राप्त करने का है अर्थात् ध्याता, ध्येय और ध्यान इन तीनों का एकाकारपना ही मोक्षपद की प्राप्ति है । साध्य की सिद्धि के लिये साधन अत्यन्त आवश्यक हैं । साध्य का लक्ष्य सामने रखकर साधन अवश्य अपनाने हैं । आत्मविकास में जिनबिम्ब और जिनागम दोनों ही साधन हैं; इन दोनों को अपनाने से आत्मा की मुक्ति अवश्य ही होगी, इसमें कोई फेरफार नहीं; न तर्क, न दलील, न शंका और न सन्देह-संशय ।

(२६) जिनमूर्त्ति की पूजादिक से रोगादिक का दूरीकरण और अनुपम लाभ

श्री जिनेश्वरदेव की मूर्त्ति-प्रतिमा की पूजा करने से पूजक को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों ही तरह से अनुपम लाभ मिलता है । भूतकाल में प्रभु की पूजा-पूजनादिक से अनेक लोगों को अनेकानेक लाभ मिले हुए हैं । जैसे—

(१) आचार्य श्रीमद् रत्नशेखर सूरीश्वरजी महाराज विरचित 'सिरि सिरिवाल कहा' (श्री श्रीपाल कथा) में कहा है कि—'उज्जैन नगरी में श्री केसरियानाथ (श्रीऋषभ-देव)' की मूर्त्ति के सम्मुख, श्री सिद्धचक्रयन्त्र के स्नान

(पक्षाल) जल से श्री श्रीपाल राजा का तथा सातसौ कोढ़ियों का अठारह प्रकार का कोढ़ रोग सर्वथा दूर हो गया था और इन सभी की काया कंचन के समान हो गई थी ।

यही श्री केसरियानाथ की प्राचीन भव्य मूर्ति आज भी सुप्रसिद्ध भारत देश के राजस्थान प्रान्त के मेवाड़प्रदेश में श्री उदयपुरनगर के निकटवर्ती श्री केसरियाजीतीर्थ में विद्यमान है और 'श्री केसरियानाथ' नाम से सुविख्यात है ।

(२) कलिकालसर्वज्ञ श्रीमद् हेमचन्द्र सूरीश्वरजी महाराज विरचित 'श्री त्रिषष्टिशलाका चरित्र' के अन्तर्गत 'जैन रामायण' में कहा है कि लंकाधिपति राजा रावण ने श्री अष्टापदतीर्थ पर जिनेश्वर-तीर्थकर भगवन्त श्री ऋषभदेवादि की मूर्तियों के सम्मुख रानी मन्दोदरी सहित संगीतमय सुन्दर भक्ति करते हुए तीर्थकर नामगोत्र बांधा था ।

(३) आज से ८५००० वर्ष पूर्व की यह बात है कि— श्रीकृष्ण महाराजा और श्री जरासंध राजा का परस्पर महान् युद्ध हुआ । उसमें जरासंध राजा ने कृष्ण महाराजा की सेना पर 'जरा' यानी वृद्धावस्था विद्या का

प्रयोग किया । इससे कृष्ण महाराजा की सारी सेना जरावस्था को पा गई । उसी समय वहाँ पर रहे हुए श्री नेमिकुमार की प्रेरणा से श्रीकृष्ण महाराजा ने अट्टम (तेला) का तप किया । तप के प्रभाव से श्री धरणेन्द्र ने आकर श्री पार्श्वनाथ भगवान की मूर्ति-प्रतिमा दी, जो पूर्व चौबीसी के नवमे श्री दामोदर तीर्थकर के समय अषाढी श्रावक ने बनाई थी । इस मूर्ति-प्रतिमा के स्नान-पक्षाल के जल से जरासंध की जराविद्या दूर हो गई थी । पुनः सैन्य सज्ज हो गया । संग्राम में श्रीकृष्ण महाराजा की जीत हुई । अति हर्ष में आकर खुद वासुदेव ने अपने मुख से अपना शंख बजाया और यही जिन-मूर्ति 'श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ' नाम से प्रसिद्ध हुई । आज भी शंखेश्वरतीर्थ में यही मूर्ति श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ विश्वभर में सुविख्यात है और अतिप्राचीन, महा-प्रभावक और महाचमत्कारिक है ।

(४) 'आवश्यक निर्युक्ति' नामक ग्रन्थ में जिनमूर्ति के भावपूर्वक दर्शन करने के सम्बन्ध में कहा है कि श्रमण भगवान महावीर परमात्मा ने श्री गौतम स्वामी महाराज की शंका का निवारण करने के लिये कहा कि 'जो भव्यात्मा अपनी आत्मलब्धि से श्री अष्टापद तीर्थ

पर चढ़कर श्री भरत चक्रवर्ती महाराजा द्वारा बनवाई हुई और वहाँ स्थापित की हुई जिनमूर्तियों का भावोत्लास-पूर्वक दर्शन करेगा, तो वह इसी भव में अवश्य मोक्ष में जायेगा । सुनकर, इस बात का निश्चित निर्णय करने के लिये स्वयं श्री गौतम स्वामी गणधर महाराजा श्री अष्टा-पद तीर्थ पर स्वात्मलब्धि द्वारा चढ़े, उन्होंने 'जगचिन्ता-मणि' नूतन रचना द्वारा जिनेश्वरदेवों की स्तुति की और यात्रा करके उसी भव में सकल कर्मों का क्षय कर के मोक्ष में गये ।

(५) 'श्री कल्पसूत्र' की स्थविरावली की वृत्ति में कहा है कि श्री दशवैकालिक सूत्र के कर्ता श्री शय्यंभव सूरेश्वरजी महाराजश्री को संसारी अवस्था में यज्ञ की क्रिया कराते समय प्राप्त हुई श्री शान्तिनाथ भगवान की मूर्ति-प्रतिमा के दर्शन से ही प्रतिबोध प्राप्त हुआ था ।

(६) 'श्री सुयगडांगसूत्र' के दूसरे श्रुतस्कंध के छठे अध्यायन की वृत्ति-टीका में कहा है कि मगधदेश के सम्राट् श्री श्रेणिकमहाराजा के सुपुत्र श्री अभयकुमार मन्त्रीश्वर द्वारा भेजी हुई श्री ऋषभदेव भगवान की मूर्ति-प्रतिमा के दर्शन से ही, अनार्यदेश में उत्पन्न हुए श्रीआर्द्रकुमार

ने जाति-स्मरण ज्ञान प्राप्त किया और आर्यदेश में आकर वैराग्य दशा में मग्न-लीन हुआ ।

(७) कलिकालसर्वज्ञ श्रोमद् हेमचन्द्रसूरीश्वरजी म. श्री ने 'योगशास्त्र' में कहा है कि श्री श्रेणिक महाराजा ने श्री जिनेश्वरदेव की मूर्ति-प्रतिमा की सम्यक् आराधना से 'तीर्थकर गोत्र' बाँधा था ।

(८) समुद्र में जिनमूर्ति-प्रतिमा की आकृति-आकार वाली मछलियों को देखकर समुद्र में रही हुई अनेक भव्य मछलियों को जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त होता है तथा वे बारह व्रत धारण कर सम्यक्त्वयुक्त आठवें सहस्रार देवलोक में जाती हैं ।

ऐसा वर्णन 'श्री द्वीपसागरपन्नति' में और 'श्री आवश्यक सूत्र' की वृत्ति में भी आता है ।

(९) जिनमन्दिर - जिनचैत्य - जिनप्रासाद - जिनालय अर्थात् जैनदेरासर बनाने वाला भव्यात्मा-भव्यजीव मृत्यु पाकर बारहवें अच्युत देवलोक में जाता है । ऐसा वर्णन 'श्री महानिशीथ' सूत्र में आता है ।

(१०) श्री जिनेश्वर भगवान की पूजा पुण्य का अनुबन्ध कराने वाली होती है तथा निर्जरा रूप फल भी

देने वाली होती है। ऐसा वर्णन श्री आवश्यक-वृत्ति में आता है।

(११) पुरुषादानीय श्री स्थंभनपार्श्वनाथ भगवान की भव्य मूर्ति के स्नात्र (पक्षाल) जल से नवाङ्गी टीकाकार श्री अभयदेव सूरीश्वरजी महाराज का गलन-कोढ़ का रोग चला गया था।

(१२) राजा भोज की सभा में जैनाचार्य श्री मानतुङ्ग सूरीश्वरजी महाराज के शरीर पर लगी हुई लोहे की ४४ या ४८ बेड़ियाँ, प्रभु की स्तुति रूप नूतन रचित श्री भक्तामर स्तोत्र [श्री आदिनाथ स्तोत्र] की रचना और उद्घोषणा द्वारा टूट गई थीं और जैनशासन की अनुपम प्रभावना में अभिवृद्धि हुई थी।

(१३) अपनी पत्नी सीताजी को लेने के लिये लंका जाते समय श्री रामचन्द्रजी ने समुद्र पार उतरने के लिये वीतराग श्री जिनेश्वर भगवान की मूर्ति के सामने तीन उपवास किये। श्री धरणेन्द्रदेव ने आकर श्री स्थंभन-पार्श्वनाथ भगवान की मूर्ति दी, जिसके परम प्रभाव से श्री रामचन्द्रजी आदि समस्त सैन्य ने आसानी से समुद्र पार कर लिया। ऐसा वर्णन 'श्री पद्मचरित्र' नामक ग्रन्थ में आता है।

(१४) सुप्रसिद्ध नागार्जुन जोगी को कहीं भी स्वर्ग-सिद्धि प्राप्त नहीं हुई। अन्त में आचार्य श्री पादलिप्त सूरेश्वरजी महाराज के वचन से श्री पार्श्वनाथ भगवान की मूर्ति के सामने श्रद्धापूर्वक एकाग्रता करने से वह स्वर्गसिद्धि प्राप्त हुई। इस कारण से वह योगी सम्यक्त्ववन्त श्रावक बना और गुरु श्री पादलिप्ताचार्य महाराज की कीर्ति के लिये श्री शत्रुंजय महातीर्थ की तलहटी में पादलिप्तपुर (अभी का पालीताणा नगर) बसाया। ऐसा वर्णन श्री पादलिप्त चरित्र ग्रन्थ में आता है।

(१५) वीतराग विभु की द्रव्यपूजा और भावपूजा करने से भव का भ्रमण सर्वथा दूर होता है और मोक्ष के शाश्वत सुख की प्राप्ति होती है।

इसके समर्थन में चौदह पूर्वधर श्री भद्रबाहुस्वामीजी महाराज ने 'श्री आवश्यकनिर्युक्ति' में कहा है कि—

अकसिणपवत्तमाणं ,

विरयाविरयाण एस खलु जुत्तो ।

संसारपयणु - करणे ,

दव्वत्थए

कूवदिट्ठंतो ॥ १ ॥

मूर्ति की सिद्धि एवं मूर्तिपूजा की प्राचीनता-६६

अर्थ—जैसे कुआँ खोदते समय कैसा श्रम होता है और कैसी तृषा-प्यास बढ़ती है, किन्तु कुएँ में पानी निकलने पर हमेशा के लिये तृषा-प्यास का दुःख मिट जाता है; वैसे ही (भगवान की) द्रव्यपूजा से भव का भ्रमण खत्म हो जाता है और मोक्षसुख की प्यास भी शान्त हो जाती है। इसलिये श्रमण और श्रमणियों को भावपूजा तथा श्रावक-श्राविकाओं को द्रव्यपूजा एवं भावपूजा दोनों ही अवश्य अर्हनिश करनी चाहिये।

जिनचैत्यों, जिनमन्दिरों और उनमें अंजनशलाका-प्राणप्रतिष्ठा की हुई बिराजमान जिनमूर्ति-प्रतिमाओं के विधिपूर्वक दर्शन-वंदन एवं पूजनादिक से आत्मा को अनुपम अपार लाभ मिलता है।

वीतराग श्री जिनेश्वरदेव के दर्शनादि करके भव्य जीव सम्यग्दर्शनादि आत्मगुणों को प्राप्त करते हैं। प्रान्ते सर्वविरति द्वारा अपने सर्वकर्म का क्षय करके मोक्ष के शाश्वत, अव्याबाध सुख को प्राप्त करते हैं।

[२७] जिनमूर्तिपूजा में हिंसा सम्बन्धी शंका और समाधान

जिनमूर्तिपूजा यानी जिनप्रतिमापूजन सहान् फल-

दायक शुभ करणी है। सुपात्रदान, स्वामीवात्सल्य और धर्मस्थान के निर्माण, जिनमूर्तिपूजा-जिनप्रतिमापूजन इत्यादि शुभ प्रवृत्तियों में आरम्भ-समारम्भ का सामान्य दोष होने पर भी आत्मा के अध्यवसाय शुभ रहते हैं। इसलिये वहाँ पुण्यानुबन्धी पुण्य का बन्ध पड़ता है, इतना ही नहीं किन्तु कर्मनिर्जरा का भी जीव को अपूर्व लाभ मिलता है।

श्री जिनेश्वर भगवान की यथाशक्ति सेवा-भक्ति करना, यह मेरा परम कर्तव्य ही है। प्रभु की प्रशान्त मुद्रा को देखकर ऐसी शुभ भावना अन्तःकरण में उत्पन्न होती है कि जैसे मेरुपर्वत पर प्रभु को ले जाकर इन्द्रों आदि ने अभिषेक किया, वैसे मैं भी उत्तम अभिषेक इत्यादि का अनुपम लाभ लूँ, अष्टप्रकारी पूजा करूँ।

धर्मी जीव-धर्मात्मा परमात्मा की जल, चन्दन, पुष्प, धूप, दीप, अक्षत, फल एवं नैवेद्य आदि से पूजा करते हैं, बहुमूल्य आभूषण चढ़ाते हैं। इतना ही नहीं किन्तु इनकी अनुपम भक्ति में यथाशक्ति अपने धन का भी सद्व्यय करते हैं और अपने अन्तःकरण में सोचते हैं कि ऐसे वीतराग भगवान की सेवा-भक्ति करूँगा तो मैं

स्वयं भवसिन्धु तैरने के साथ अन्य को भी भवसिन्धु तिराने में निमित्त बनूंगा, इत्यादि ।

हिंसा के नाम पर प्रभु की पूजा-पूजन का निषेध करने वाले शंका करते हैं कि—

(१) शंका—जल, चंदन, पुष्प, धूप, दीप, फल इत्यादि सचित्त द्रव्यों से प्रभु की पूजा वा पूजन करने में हिंसा है । इसलिये हिंसा में धर्म नहीं होने से जिनमूर्ति को मानना और उसकी पूजा-अर्चनादि भी करना उचित नहीं है ।

समाधान—संसारवर्ती जीवों-आत्माओं को इस प्रकार की हिंसा तो प्रायः कदम-कदम पर लगती ही है । इसलिये ज्ञानी महापुरुषों ने कहा है कि 'विषय और कषायादिक की प्रवृत्ति करते हुए अन्य जीवों को दुःख-हानि होवे उसी का नाम हिंसा है ।'

हिंसा के दो प्रकार हैं— द्रव्यहिंसा और भावहिंसा । द्रव्यहिंसा में होने वाली स्थावर जीवों की हिंसा को भावहिंसा नहीं कह सकते हैं । कारण कि वह आत्म-गुणों की वृद्धि रूप भावदया का कारण है और भावदया तो मोक्ष का ही कारण है ।

जिनागमशास्त्रों में भावहिंसा का कारण द्रव्यहिंसा को माना है। विषय और कषाय के निमित्त से होने वाली वह हिंसा है।

प्रभु की पूजा-पूजन में जल, चन्दन और पुष्पादि के समय होने वाली हिंसा भावहिंसा का कारण नहीं हो सकती। इसलिये अनुबन्ध हिंसा नहीं होती है।

अतः धर्मीजीवों-धर्मात्माओं को प्रभु की पूजा भावोल्लासपूर्वक अवश्य करनी चाहिये।

देवलोकवासी इन्द्र तथा देवी-देवता भी प्रभु की तथा उनकी मूर्ति-प्रतिमा की अनुपम भक्ति करते ही हैं।

(१) श्री तीर्थंकर परमात्मा के च्यवनादि पाँचों कल्याणकों में सम्यग्दृष्टिवन्त देव-देवियाँ श्री तीर्थंकर प्रभु की अनुपम भक्ति निमित्त सचित्त पुष्प-फूलों की वृष्टि करते हैं, प्रभु के पारणे आदि प्रसंग पर भी पुष्पवृष्टि करते हैं।

(२) प्रभु के दिव्य समवसरण में भी देव जल में या स्थल में उत्पन्न होने वाले सचित्त पुष्प-फूलों की प्रभु के घुटनों तक वृष्टि करते हैं। प्रभु के अतिशय के कारण उन पुष्प-फूलों की किलामना नहीं होती है।

मूर्ति की सिद्धि एवं मूर्तिपूजा की प्राचीनता-१००

श्री अरिहंत-तीर्थंकर भगवन्तों के मुख्य बारह गुणों में भी 'सुरपुष्पवृष्टिः' ऐसा पाठ आता है ।

(३) प्रभु की विद्यमान-जीवित अवस्था में इन्द्रादि देव पुष्प-फूलों से प्रभु की पूजा-भक्ति आदि तो करते ही हैं । इतना ही नहीं किन्तु वीतराग विभु की मूर्त्ति-प्रतिमा के प्रति तथा प्रभु की मृतदेह की दाढ़ाओं के भी प्रति वैसी ही श्रद्धा रखते हैं और अनुपम भक्ति भी करते हैं ।

(४) जिस तरह श्री जिनेश्वर-तीर्थंकर परमात्मा के जन्म तथा दीक्षा के समय उनको सचित्त जल से स्नान कराया जाता है, उसी तरह निर्वाण के बाद भी उनके मृतदेह को सचित्त जल से ही स्नान कराने के पश्चात् दाह-संस्कार किया जाता है । जिनमूर्त्ति-जिनप्रतिमा का भी प्रक्षाल इन्हीं जन्म-दीक्षा-निर्वाण कल्याणकों का निमित्त पाकर ही कराया जाता है । कारण कि श्री जिनेश्वर तीर्थंकर परमात्मा को सचित्त जल से ही स्नान कराने का आचार है । आगमशास्त्रों में भी इस बात का स्पष्ट उल्लेख है ।

इसी माफिक दीक्षार्थी जब दीक्षा लेता है तब उसको सचित्त जल से ही स्नान कराया जाता है और जब वह

कालधर्म पा जाता है तब भी उसके मृत देह को भी सचित्त जल से ही स्नान कराया जाता है । इसमें कोई दोष नहीं माना जाता है । कारण कि इसमें श्री जिनेश्वर-तीर्थंकर भगवान की आज्ञा का पालन होने से धर्म ही है ।

इस प्रकार के नियमानुसार जल को छानकर, उस परिमित जल में दूध इत्यादि द्रव्यों को मिलाकर पंचामृत बना लेने से वह अचित्त हो जाता है । उस पंचामृत जल से जिनमूर्ति-प्रतिमाजी को स्नान कराने के बाद अल्प सादा जल से न्हवन करा कर स्वच्छ अंग लूसणां रूप वस्त्रों से पोंछकर एकदम निर्मल किया जाता है ।

इस तरह प्रभु की आज्ञा के पालन के साथ प्रमाद का भी अभाव होने से हिंसा का अभाव है ।

(५) प्रभु के दर्शन, वन्दन और पूजन के प्रसंग पर विविध प्रकार के फल लाकर प्रभु के सम्मुख एक पट्टे पर रखकर पूजा की जाती है । इन फलों को भी काटना, छीलना और विदारना इत्यादिक से पीड़ा नहीं पहुँचाई जाती है । इसलिये प्रभु की पूजा में हिंसा को अवकाश नहीं है ।

(६) प्रभु के सामने धूप को छेदों वाले ढकने वाले धूपदानी में रखकर पूजा में काम में लिया जाता है। सचित्त होने पर भी पूजा में प्रमाद न होने से इसमें हिंसा की सम्भावना नहीं है।

(७) प्रभु के सामने दीपक को लालटेन में ढककर काम में लिया जाता है। यह भी सचित्त होने पर भी पूजा में प्रमाद न होने से हिंसा सम्भव नहीं है।

(८) प्रभु के सम्मुख अक्षत (चावल) तथा नैवेद्य-मिठाई पकवान भी अचित्त होने से चढ़ाने में हिंसा नहीं है।

जिनमूर्ति-प्रतिमापूजन के विधि-विधानों में उपयोग हेतु लाये जाने वाले द्रव्यों को चढ़ाने से हिंसा कदापि नहीं होती है। जिनराज की भक्ति से निरवद्य अहिंसा का पालन होता है। जिनमूर्ति-प्रतिमा सम्मुख चढ़ाये जाने वाले द्रव्यों को अभयदान मिलता है तथा निःस्वार्थ सेवा-भक्ति करने वाला धर्मीजीव-धर्मात्मा प्रान्त में संयम-साधना द्वारा मोक्ष प्राप्त करता है।

[२८] मूर्ति की वन्दनीयता एवं पूजनीयता के शास्त्रीय प्रमाण

जगत् प्रसिद्ध जैनदर्शन का सारा आधार जैन

आगम-सिद्धान्तशास्त्र पर है। वर्तमान काल में विद्यमान ४५ आगम हैं। इनमें ग्यारह अंग हैं, बारह उपांग हैं, दस पयन्ना हैं, छह छेदसूत्र हैं, दो सूत्र हैं और चार मूल सूत्र हैं।

ग्यारह अंगों के नाम—

(१) आचाराङ्ग, (२) सूत्रकृताङ्ग, (३) ठाणाङ्ग, (४) समवायाङ्ग, (५) व्याख्याप्रज्ञप्ति यानी भगवती जी, (६) ज्ञाताधर्मकथाङ्ग, (७) उपासक दशाङ्ग, (८) अन्तकृद् दशाङ्ग, (९) अनुत्तरौपपादिक दशाङ्ग, (१०) प्रश्नव्याकरणाङ्ग, (११) विपाकश्रुत और (१२) दृष्टिवाद। इनमें बारहवें अंग दृष्टिवाद के विच्छेद होने से ग्यारह ही अङ्गों की विद्यमानता है।

बारह उपांगों के नाम—

(१) औपपातिक उपांग, (२) राजप्रश्नीय उपांग, (३) जीवाजीवाभिगम उपांग, (४) प्रज्ञापना उपांग, (५) जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति उपांग, (६) चन्द्रप्रज्ञप्ति उपांग, (७) सूर्यप्रज्ञप्ति उपांग, (८) निरयावलिका उपांग, (९) कल्पावतंसिका उपांग, (१०) पुष्पिका उपांग, (११) पुष्पचूलिका और (१२) वृष्णिदशा उपांग।

दस पयन्ना के नाम—

(१) चतुःशरण पयन्ना, (२) आतुर प्रत्याख्यान पयन्ना, (३) वीरस्तव पयन्ना, (४) भक्तपरिज्ञा पयन्ना, (५) तंडुल वेयालियं पयन्ना, (६) गरिणविज्भयं पयन्ना, (७) चन्दाविज्भयं पयन्ना, (८) देवेन्द्रस्तव पयन्ना, (९) मरण-समाधि पयन्ना और (१०) संधारग पयन्ना ।

छह छेदसूत्र के नाम—

(१) निशीथ छेदसूत्र, (२) महानिशीथ छेदसूत्र, (३) व्यवहार छेदसूत्र, (४) दशाश्रुतस्कन्ध छेदसूत्र, (५) बृहत्कल्प छेदसूत्र और (६) जीतकल्प छेदसूत्र ।

दो सूत्र—

(१) नन्दीसूत्र और (२) अनुयोगद्वार सूत्र ।

चार मूल सूत्र—

(१) आवश्यक-ओघनिर्युक्ति मूलसूत्र, (२) दशवैकालिक मूलसूत्र, (३) पिण्डनिर्युक्ति मूलसूत्र और (४) उत्तरा-ध्ययन मूलसूत्र ।

इस तरह सब मिलाकर ४५ आगम होते हैं ।

इन सभी ४५ आगमों को 'श्री जैन श्वेताम्बर मूर्ति-

पूजक संघ' श्रद्धा एवं बहुमानपूर्वक मानते हैं तथा उन्हीं की सूत्र, अर्थ, वृत्ति, भाष्य और चूर्ण रूप पंचाङ्गी को भी उसी तरह सहर्ष मानते हैं ।

श्री जैन श्वेताम्बर स्थानकवासी वर्ग एवं तेरापंथी समाज मूर्ति-प्रतिमा निषेधक हैं । उनके द्वारा माने हुए बत्तीस आगम सूत्रों के नाम निम्नानुसार हैं—

“ग्यारह अंग, बारह उपांग, नंदी, अनुयोग, आवश्यक, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, बृहत्कल्प, व्यवहार, निशीथ और दशाश्रुतस्कंध ।”

इन बत्तीस आगमसूत्रों में भी स्थान-स्थान पर स्थापना निक्षेपों की उचित सत्यता, माननीयता एवं वन्दनीयता-नमस्करणीयता सही रूप में बताई हुई है । मूर्ति की वन्दनीयता एवं पूजनीयता के विषय में जैन-आगम-सिद्धान्तशास्त्रों में अनेक प्रमाण हैं । उनके सैकड़ों उल्लेख आज भी आगम-सिद्धान्त द्वारा मिल रहे हैं । उनमें से कुछ उल्लेख निम्नलिखित हैं—

मूर्तिपूजा क्या है ? जब ऐसा प्रश्न हमारे सामने आता है, तब हमें दीर्घ दृष्टि से विचारना चाहिये कि **मूर्तिपूजा केवल मूर्तिपूजा नहीं है, किन्तु श्री**

जिनेश्वर भगवान की पूजा है। मूर्ति तो मात्र निमित्त है अर्थात् उनके सर्वोत्तम गुणों की पूजा श्री जिनेश्वरदेव की प्रथम रस भरती और प्रशान्त रस नितरती ऐसी निर्विकारी वीतरागमय मुद्रा के साक्षात्-प्रत्यक्ष दर्शन कराने वाली मूर्ति-प्रतिमा है। जिनकी विधिपूर्वक अञ्जनशलाका यानी प्राणप्रतिष्ठा सुन्दर रूप से हुई है, ऐसी श्री जिनेश्वरदेव की भव्य मूर्ति का दर्शन, वन्दन एवं पूजन करते समय कोई भी आराधक मूर्ति-पूजक अपने मुख से ऐसे शब्दों का उच्चारण नहीं करेगा कि अरे ! मूर्ति तू खूब अच्छी है, बहुत ही बढ़िया-सुन्दर है, महामूल्यवान है। तुझे बनाने में कुशल कारीगर ने कितना कौशल दिखाया है, इत्यादि। वहाँ पर तो भक्त भाव-भक्ति से दर्शन-वन्दन एवं पूजन करते हुए वीतराग प्रभु की वीतरागमयता की भूरि-भूरि प्रशंसा ही करता है। इतना ही नहीं, किन्तु प्रभु के पवित्र स्वरूप को देखता हुआ निजात्म स्वरूप में ध्यानमग्न होता है। अनन्त गुणों के खजाने ऐसे प्रभु के गुणों को सतत स्मरण करता है तथा अपनी आत्मा को प्रभुमय बनाने की उत्तम भावना भाता है। कर्म की निर्जरा करता है। श्री जिनेश्वरदेव-अरिहन्त भगवन्तों की मूर्ति-प्रतिमाओं के दर्शन, वन्दन एवं पूजन इत्यादि

करने से सम्यग्दर्शनादिक आत्मगुणों की प्राप्ति होती है और कर्मक्षय की सिद्धि होती है। ऐसा वर्णन करते हुए समर्थ ऐसे १४४४ ग्रन्थों के प्रणेता आचार्य भगवान् श्रीमद् हरिभद्रसूरीश्वरजी महाराज आदि सूरिपुङ्गव तथा उनसे भी पूर्व के महान् पूर्वाचार्य महर्षि भी कहते हैं कि—

चैत्यवन्दनतः सम्यक् , शुभो भावः प्रजायते ।

तस्मात् कर्मक्षयः सर्वे, ततः कल्याणमश्नुते ॥

अर्थ—चैत्य अर्थात् जिनमन्दिर या जिनमूर्ति-जिन-बिम्ब-जिनप्रतिमा को सम्यक् रीति से वन्दन करने से प्रकृष्ट शुभ भाव उत्पन्न होता है। शुभ भाव पैदा होने से कर्म का क्षय होता है और कर्म का क्षय होने से कल्याण की प्राप्ति होती है।

पूर्व के पूर्वधर महर्षि श्री जिनभद्रगणि क्षमाश्रमणजी म., दश पूर्वधर श्री उमास्वातिजी म. तथा चौदह पूर्वधर श्री भद्रबाहु स्वामीजी म. आदि अनेक सूरिभगवन्तों ने भी महाभाष्य, पूजा-प्रकरण, आवश्यकनिर्युक्ति आदि महाशास्त्रों में ऐसा ही फरमाया है। इतना ही नहीं किन्तु मूल आवश्यक सूत्रकार गणधर भगवन्त श्रुतकेवली श्री सुधर्मास्वामोजी म. ने कायोत्सर्ग, आवश्यक तथा उसके आलावों में भी उपर्युक्त स्पष्ट शब्दों में कहा है।

जैन आगम-सिद्धान्तशास्त्रों में जिनमूर्ति-जिनप्रतिमा की यात्रा, दर्शन-वन्दन एवं पूजन करने का अधिकार कहीं-कहीं पर है, उसका निर्देश यानी उल्लेख निम्न-लिखित है-

(१) पंचमाङ्ग पूज्य श्री भगवतीजी सूत्र के बीसवें शतक के नवमे उद्देश में 'जंघाचारण एवं विद्याचारण' मुनियों द्वारा नन्दीश्वर द्वीप और रुचक द्वीप में विद्या के बल से जाकर वहाँ रही हुई शाश्वत जिनमूर्ति-प्रतिमाओं को वन्दन करने का स्पष्ट अधिकार है, ऐसा कहा है ।

लब्धिवन्त विद्याचारण मुनि विद्या के बल से यहाँ से एक ही कदम उठकर जहाँ मानुषोत्तर पर्वत है, वहाँ पर पहुँच जाते हैं और वहाँ से दूसरा कदम उठाकर सीधे श्री नन्दीश्वर द्वीप में पहुँच जाते हैं । विद्या के बल से आये हुए विद्याचारण मुनि और जंघा के बल से आये हुए जंघाचारण मुनि वहाँ के जिनचैत्यों को एवं शाश्वत जिनमूर्ति-प्रतिमाओं को वन्दन करते हैं ।

इस विषय में सर्वज्ञ विभु श्री महावीर परमात्मा को अपने प्रथम गणधर श्री गौतमस्वामी महाराज ने प्रश्न किया ? अर्थात् पूछा कि--

“विज्जाचारणस्सणं भंते ! तिरियं केवइए गइ-
विसए पण्णत्ते ?

“प्रत्युत्तर-गोयमा ! से णं इओ एगेणं उप्पाएणं
माणुमुत्तरे पव्वए समोसरणं करेइ, करेइत्ता तर्हि चेइआइं
वंदइ वंदिताविति एणं उप्पाएणं नन्दीसरवरे दीवे समोसरणं
करेइ करेइत्ता तर्हि चेइआइं वंदेइ । वंदित्ता तओ
पडिनियत्तइ, पडिनियत्तइत्ता इहमागच्छइ आगच्छइत्ता
इहं चेइयाइं वंदइ ।”

अर्थ-“भगवन् ! विद्याचारण मुनि की तिरछी गति
का विषय कितना कहा है ?”

“हे गौतम ! विद्याचारण मुनि यहाँ से एक डगल
से मानुषोत्तर पर्वत पर उतरते हैं । वहाँ पर रहे हुए
जिनमन्दिरों को वन्दन करते हैं । बाद में वहाँ से
दूसरे उत्पाद-डगल से नन्दीश्वर द्वीप में उतरते हैं ।
वहाँ पर भी रहे हुए जिनमन्दिरों को वन्दन करते हैं ।
वन्दन के बाद वहाँ से एक उत्पाद उत्पाद-डगल से
वापस यहाँ आते हैं तथा यहाँ के जिनचैत्यों को यानी
जिनमन्दिरों को वन्दन करते हैं ।”

प्रश्न—“विज्ञाचारणस्सणं भंते ! उड्ढं केवइए गइविसए पणत्ते ?

प्रत्युत्तर—“गोयमा ! सेणं इओएगेणं उप्पाएणं नंदणवने समोसरणं करेइ । करेइत्ता तहिं चेइयाइं वंदइ, वंदिता-विति एणं उप्पाएण पंडगवणे समोसरणं करेइ, करेइत्ता तहिं चेइयाइं वंदइ । वंदित्ता तओ पडिनियत्तइ, पडिन-यत्तइत्ता इहमागच्छइ, आगच्छइत्ता इहं चेइयाइं वंदइ” ।

अर्थ—‘भगवन् ! विद्याचारण मुनि की ऊर्ध्वगति का विषय कितना कहा है ?

“गौतम ! विद्याचारण मुनि यहाँ से एक डगल से नन्दनवन में उतरते हैं, उतर कर वहाँ के जिनचैत्यों को वन्दन करते हैं । बाद में दूसरे डगल से पण्डकवन में जाते हैं और वहाँ पर रहे हुए जिनमन्दिरों को वन्दन करते हैं । फिर वहाँ से लौट कर एक डगल से यहाँ आते हैं तथा यहाँ के जिनमन्दिरों को वन्दन करते हैं ।

(२) “जङ्घाचारणस्सणं भंते ! तिरियं केवइए गइविसए पणत्ते ?”

“गोयमा ! से णं इओ एगेणं उप्पाएणं रुयगवरे दीवे समोसरणं करेइ । करेइत्ता तहिं चेइयाइं वंदइ,

वंदित्ता तत्रो पडिनियत्तमाणे वित्तिएणं उप्पाएणं नंदी-
सरवरे दीवे समोसरणं करेइ, करित्ता तर्हि चेइयाइं
वंदन । वंदित्ता इहमागच्छइ, आगच्छइत्ता इहं चेइआइं
वंदइ ।”

अर्थ—भगवन् ! जंघाचारण मुनि की तिरछी गति का विषय कितना कहा है ? गौतम ! जंघाचारण मुनि यहाँ से एक डगल से रुचकवर द्वीप में उतरते हैं । उतरकर वहाँ के जिनमन्दिरों को वन्दन करते हैं, बाद में वहाँ से निकल कर दूसरे डगल से नन्दीश्वर द्वीप में जाते हैं, वहाँ रहे हुए जिनमन्दिरों को वन्दन करते हैं । वहाँ से एक डगल से यहाँ आते हैं और यहाँ के जिन-चैत्यों को वन्दन करते हैं ।

“जङ्घाचारणस्सरां भंते ! उड्ढंकेवइए गइविसए
पण्णत्ते । गोयमा ! से णं इओ एणेणं उप्पाएणं पंडगवणे
समोसरणं करेइ, करित्ता तर्हि चेइआइं वंदइ । वंद-
इत्ता, इहमागच्छइं, आगच्छइत्ता इहं चेइआइं वंदइ ।”

अर्थ—भगवन् ! जंघाचारण मुनि की ऊर्ध्वगति का विषय कितना कहा है ?

गौतम ! जंघाचारण मुनि यहाँ से एक डगल से

पांडुकवन में जाते हैं और वहाँ के जिनमन्दिरों की वन्दना करते हैं। वहाँ से निकल कर दूसरे डगल से नन्दनवन में जाते हैं और वहाँ के भी जिनचैत्यों को वन्दन करते हैं। वहाँ से लौटकर एक डगल से यहाँ आते हैं और यहाँ के जिनमन्दिरों की वन्दना करते हैं।

[पृ. श्री भगवती सूत्र मूल पाठ २० वाँ शतक, ६ वां उद्देश]

(३) “रणणत्थ अरिहंते वा अरिहंतचेईयाणि वा अणगारे वा भावियप्पणो निस्साए उड्ढं वा उप्पयंति जाव सोहम्मो कप्पो।”

(चमरेंद्राधिकार)

अर्थ—अरिहन्त, अरिहन्त चैत्य और तप संयम में भावित आत्मा वाले अणगार (मुनि-साधु) इन तीनों का शरण लिए बिना असुरकुमारेन्द्र यावत् सौधर्म देवलोक तक ऊर्ध्वगमन नहीं कर सकता। अर्थात्-अरिहन्तदेव, अरिहन्तदेव की मूर्ति-प्रतिमा और अणगार-मुनिराज की निश्चा से वह ऊँचा जा सकता है।

[श्री भगवती सूत्र मूल पाठ ३ शतक, २ उद्देश]

(४) “दोवई रायवरकन्ना जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छई उवागच्छत्ता ण्हायाकय बलिकम्मा कयकोउय मंगलपायच्छत्ता सुद्धप्पा वेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवराइं

पवराइं परिहिया । मज्जणघराओ पडिनिक्खमई पडि-
 निक्खमइत्ता जेणेव जिणघरे तेणेव उवागच्छई । उवाग-
 च्छित्ता जिणघरं अणुपविसइ । अणुपविसित्ता जिणपडिमाणं
 आलोए पणामं करेइ, करेइत्ता लोमहत्तयं परामुसइ । एवं
 जहा सूरियाभो जिणपडिमाओ अंच्चेई तहेव भाणियव्वं ।
 जाव धूवं डहई धूवं डहित्ता वामं जाणुं अंच्चेई, दाहिराणं
 जाणुं धरणि तलंसिणिवेसेई । णिवेसित्ता तिखुत्तो मुद्धाणं
 धरणितलंसि नमेई । नमेईत्ता ईसि पच्चुण्णमई,
 पच्चुण्णमित्ता करयल जाव कट्टु एवं वयासी-नमुत्थुणं
 अरिहंताणं भगवंताणं जाव संपत्ताणं वंदई नमंसई, नमंसित्ता
 जिणघराओ, पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमइत्ता जेणेव
 अंतेउरे तेणेव उवागच्छइ ।”

अर्थ—द्रौपदी राजवर-कन्या जहाँ स्नानघर था वहाँ
 आई, आकर स्नान किया, बलिकर्म किया और कौतुक
 मङ्गल रूप प्रायश्चित्त किया । पश्चाद् जिनघर में
 प्रवेश करने योग्य उत्सव-मङ्गलादि सूचक शुद्ध वस्त्र
 पहन कर मज्जनघर से बाहर निकलकर जहाँ पर जिन-
 मन्दिर था, वहाँ पर आई । जिनघर में प्रवेश करके
 जिनमूर्ति-प्रतिमा को प्रणाम किया और मोरपिच्छ से
 जिनमूर्ति-प्रतिमा का प्रमार्जन किया । जैसे सूर्याभिदेव

ने जिनमूर्ति-प्रतिमा की पूजा की थी वैसे द्रौपदी ने भी धूपोत्क्षेपण पर्यन्त पूजा की। बाद में बायाँ गोड़ा ऊंचा और दायाँ गोड़ा जमीन पर स्थापन करके तीन बार अपना सिर-मस्तक नमाकर 'नमुत्थुणं अरिहंताणं भगवन्ताणं०' के पाठ से स्तवन, वन्दन (नमस्कार) किया। पश्चाद् द्रौपदी राजकन्या जिनघर यानी जिनचैत्य-मन्दिर से बाहर निकल करके वापस निज अंतेउर यानी अपने घर में आई।

[श्री ज्ञातासूत्र मूल पाठ १६ वां अध्यायन]

(५) "एगो खलु मे भंते ! कप्पई अज्जप्पभिइं अन्नउत्थिए वा, अन्नउत्थियदेवयाणि वा, अन्नउत्थियपरिग्गहियाणि अरिहंतचेइयाणि वा वंदित्तए वा णमंसित्तए वा पुंवि अणालवित्तेणं आलवित्तए वा संलवित्तए वा ।"

अर्थ—हे भगवन् ! आज से मुझे नहीं कल्पे अन्य तीर्थियों के देव तथा अन्य तीर्थियों की ग्रहण की हुई मूर्ति-प्रतिमा व अन्यतीर्थिक श्रमणों को वन्दन-नमस्कार करना। इस प्रकार अन्य तीर्थियों के बिना बुलाए उनके साथ एक या अनेक बार बोलना भी नहीं कल्पे। अन्यमति के देव और अन्यमति द्वारा ग्रहण की हुई मूर्ति-प्रतिमा के बिना अरिहन्तदेव उनकी मूर्ति-

प्रतिमा और उनके श्रमणों को वन्दन-नमन करना कल्पता है ।”

[श्री उपासकदशाङ्गसूत्र मूलपाठ—आनन्दश्रावक अध्यायन]

(६) “अंबडस्सरां राणे कप्पई अन्नउत्थिया वा, अण्णउत्थियदेवयाणि वा, अण्णउत्थियपरिग्गहियाणि वा, चेइयाइं वंदित्तए वा, रांसित्तए वा, जाव पज्जुवासित्तए णण्णत्थ अरिहंतं अरिहंतचेइयाणि वा ।”

अर्थ—अंबड नामक परिव्राजक को नहीं कल्पे अरिहन्त और अरिहन्त मूर्ति-प्रतिमा बिना अन्य मत वालों के देव, अन्य मती गृहीत मूर्ति-प्रतिमाएँ और अन्य मत के श्रमणों का वन्दन करना, नमस्कार करना यावत् पूजा-सेवा करना । अर्थात् अन्य मत को छोड़ अरिहन्त और अरिहन्त की मूर्ति-प्रतिमा स्तवना, पूजा तथा वन्दन करना कल्पे ।”

[श्री उववाइसूत्र मूल पाठ अम्बडाधिकार]

(७) “नो चेव रां समणोवासरां पच्छाकडं बहुस्सुयं वज्जागरां पासेज्जा; जत्थेव सम्मं भावियाईं चेइयाईं पासेज्जा; कप्पईं से तस्संतिए आलोईए वा जाव पडि-वज्जित्तए वा ।”

अर्थ—जो श्रमण-साधु अयोग्य स्थान का आचरण

करके उसकी शुद्धि के लिए आलोचना लेना चाहे तो उसको संयम-पतित बहुत आगम का ज्ञाता श्रावक नहीं मिले तो सुहिताचार्य प्रतिष्ठित चैत्य (जिनमूर्ति-प्रतिमा) के पास आलोचना यावत् प्रायश्चित्त लेना कल्पे ।

[श्री व्यवहारसूत्र मूल पाठ १ उद्देश]

(८) “तत्थरां बहवे भवणवइ-वाणमंतरजोइसिय-वेमाणिया देवा चाउम्मासिय पडिवएसु संवच्छरिएसु वा अन्नेसु य बहुसु जिणजम्मरा-निक्खमरा-नाणुपत्ति-परिनिव्वाणमाइसु देवकज्जेसु य देवसमुदएसु य देवसमितिसु य देवसमवाएसु य देवपओयणेसु य एगतओ सहिता समुवगता अट्टाहियारूवाओ महामहिमाओ करेमाणा पालेमाणा सुहं सुहेण विहरंति ।”

अर्थ—नंदीश्वर द्वीप में रहे हुए जिनचैत्य-मन्दिरों में भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक एवं चार निकाय के देव कार्तिकी आदि अट्ठाइयों में, पर्युषण महापर्व के दिवसों में, अन्य श्री जिनेश्वरों के जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान और मोक्षकल्याणक दिवसों में देवकार्य के लिये इकट्ठे होते हैं और अतिशय आनन्दित तथा क्रीड़ापरायण होकर के अष्टाह्निका महोत्सव करते हुए सुखपूर्वक विचरण करते हैं ।

[श्री जीवाभिगमसूत्र मूल पाठ ३ प्रतिपत्ति २ उद्देश]

(६) “से भयवं ! तहा रूवं समणं वा महारां वा चेइय घरे गच्छेज्जा ?

“हंता गोयमा ! दिणे दिणे गच्छेज्जा । से भयवं जत्थ दिणे ण गच्छेज्जा तओ किं पायच्छित्तं हवेज्जा ?

“गोयमा ! पमाय पडुच्च तहारूवं समणं वा महारां वा जो जिणघरं न गच्छेज्जा तओ छट्टं अहवा दुवालसमं पायच्छित्तं हवेज्जा ।”

अर्थ—“हे भगवन् ! क्या श्रमण या श्रावक को (प्रतिदिन) जिनमन्दिर जाना जरूरी है ? हाँ, गौतम ! श्रमण या श्रावक को प्रतिदिन जिनमन्दिर जाना चाहिए ।

“भगवन् ! जिस दिन न जाय उस दिन उनको क्या प्रायश्चित्त करना होगा ?

“गौतम ! प्रमाद के वश जिस दिन श्रमण या श्रावक जिनमन्दिर नहीं जायेंगे उस दिन उनको छठ (बेले) का अथवा पाँच उपवास का भी प्रायश्चित्त हो सकता है ।”

[श्री महाकल्पसूत्रे प्रोक्तमिति]

(१०) ‘श्री आचाराङ्गसूत्र’ के दूसरे श्रुतस्कन्ध में तीर्थवन्दना के सम्बन्ध में कहा है कि—

जम्माभिसेय-निक्खमण चरणुप्पायनिव्वारणे ।
दियलोअभवणमंदर - नंदीसरभोमनयरेसु ॥ १ ॥
अट्टावयमुज्जिते गयगपयए व धम्मचक्के य ।
पासरहावत्तनगं चमरुपायं च वंदामि ॥ २ ॥

अर्थ—“श्री जिनेश्वर-तीर्थंकर परमात्मा के जन्माभि-
षेक की भूमि, दीक्षा-संयम लेने की भूमि, केवलज्ञान
उत्पत्ति की भूमि, निर्वाण-मोक्ष पाने की भूमि, देवलोक
के सिद्धायतन, भुवनपतियों के सिद्धायतन, नंदीश्वर द्वीप
के सिद्धायतन, ज्योतिषी देवविमानों के सिद्धायतन,
अष्टापद, गिरनार, गजपद तीर्थ, धर्मचक्र तीर्थ, श्री
पार्श्वनाथ भगवान के सभी तीर्थ और जहाँ पर श्री
महावीर स्वामी भगवान काऊस्सग्ग-कायोत्सर्ग में रहे
हैं वह तीर्थ, इन सबको मैं वन्दन करता हूँ ।”

(११) श्री ज्ञातासूत्र में और श्री ठाणांगसूत्र में भी
कहा है कि—

मल्लिकुमारी ने अपनी प्रतिकृति-प्रतिमा बनवाकर
शरीर की अशुचिता उस प्रतिमा-मूर्ति द्वारा दिखाकर
उन छहों राजकुमारों को प्रतिबोधित किया था ।

(१२) श्री भगवतीसूत्र के प्रारम्भिक मंगलाचरण

में ज्ञान की स्थापना के रूप में “नमो बंभीलिवीए” तथा “नमो सुयस्स” लिखकर श्रुतकेवली श्री सुधर्मास्वामी गणधर भगवन्त ने ब्राह्मीलिपि को और श्रुतज्ञान को नमस्कार किया है ।

(१३) श्री ठाणांगसूत्र में चार और दस सत्यों का कथन किया है तथा इसमें स्थापना को भी सत्य रूप में माना गया है ।

(१४) श्री अनुयोगद्वारसूत्र में विश्व के प्रत्येक पदार्थ के कम से कम नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव ये चार निक्षेप करने की अनुमति-आज्ञा दी गई है । जैसे—

“नाम जिणा जिणनामा,
ठवणजिणा पुण जिणिद-पडिमाओ ।
दव्वजिणा जिणजीवा,
भावजिणा समवसरणत्था ॥”

अर्थात्—जिनेश्वर भगवान का नाम—‘प्रभु महावीर’ यह नामजिन है । ‘प्रभु महावीर की मूर्ति-प्रतिमा रूप में स्थापना’ यह स्थापना जिन है । प्रभु महावीर का जीव यह द्रव्यजिन है तथा समवसरण में स्थित यह भावजिन है । श्री आवश्यकसूत्र में

भी चारों निक्षेपों से श्री अरिहंत परमात्मा का ध्यान करने की आज्ञा फरमाई है। जिनमें 'चतुर्विंशतिस्तव' से नाम और द्रव्यनिक्षेप से तथा चैत्यस्तव द्वारा स्थापना-निक्षेप से श्री जिनेन्द्रदेव की आराधना दिखाई है।

(१५) श्री भगवतीसूत्र के बीसवें शतक के नवमे उद्देश में लब्धिधर, जंघाचारण एवं विद्याचारण मुनियों द्वारा शाश्वत और अशाश्वत जिनमूर्तियों की वन्दना करने का स्पष्ट उल्लेख है।

(१६) श्री समवायांगसूत्र में जब लब्धिधर चारण-मुनि श्री नंदीश्वर द्वीप में जिनचैत्यवन्दना के लिये जाते हैं तब सत्रह हजार योजन ऊर्ध्वगति करते हैं।

(१७) श्री रायपसेणीसूत्र में श्री सूर्याभदेव द्वारा की हुई जिनपूजा का स्पष्ट वर्णन है। जो देव परम सम्यग्दृष्टिवन्त है, परित्तसंसारी है, सुलभबोधि है और परम आराधक आदि है; ऐसा श्रमण भगवान महावीर परमात्मा ने अपने मुख से फरमाया है।

(१८) श्री ठाणांगसूत्र के चतुर्थ ठाणे में श्री नंदीश्वर द्वीप पर कितने ही देव-देवियों की प्रभुपूजा-भक्ति करने का स्पष्ट वर्णन है।

(१६) श्री भगवतीसूत्र के दसवें शतक के छोटे उद्देश में शक्रेन्द्र द्वारा अपनी सुधर्म नाम की सभा में जिनेश्वर भगवन्त के दाढ़ों की आशातना के वर्जन का स्पष्ट वर्णन है ।

(२०) श्री जीवाभिगमसूत्र में विजयदेव द्वारा किये गये दिव्य नाटक का वर्णन है ।

(२१) श्री भगवतीसूत्र में प्रभु के सम्मुख इन्द्रादि द्वारा किये हुए दिव्य नाटक की प्रशंसा का वर्णन है ।

(२२) श्री ज्ञातासूत्र में भवनपति निकाय के देवियों द्वारा की हुई प्रभुभक्ति की प्रशंसा का वर्णन है ।

(२३) श्री जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में वर्णन है कि श्री जिनेन्द्रदेव की दाढ़ों और अस्थि-दंत आदि अवयव, देव अपने स्थान में ले जाकर उनको पूजते हैं, इतना ही नहीं किन्तु अग्नि-दाह के स्थान पर प्रमुख स्तूप की सुन्दर रचना करते हैं ।

(२४) श्री उपासकदशांगसूत्र में कहा है कि श्री आनन्द श्रावक ने अन्य तीर्थियों को, अन्य देवी-देवताओं को तथा उनकी मूर्ति-प्रतिमाओं को वन्दन-नमस्कार इत्यादि नहीं करने की प्रतिज्ञा की थी ।

(२५) श्री समवायांगसूत्र में प्रभु के परम भक्त श्री आनन्दादि दस श्रावकों के चैत्य आदि का वर्णन किया हुआ है ।

(२६) श्री उववाईसूत्र में कहा है कि श्री अंबड परिव्राजक ने तथा उसके ७०० शिष्यों ने श्री वीतरागदेव को नमन-वन्दन करने की और उनकी मूर्ति-प्रतिमा को छोड़कर अन्य किसी को भी नमन-वन्दन नहीं करने की प्रतिज्ञा की थी ।

(२७) 'प्रश्नव्याकरण' नामक आगम ग्रन्थ में कहा है कि चैत्य यानी जिनमन्दिर की सेवा-भक्ति-वैयावच्च कर्म-निर्जरा का कारण है । यथा—

अत्यन्त बाल दुब्बल, गिलाण वुड्ढ सर्वक ।

कुल गण संघ चेइयट्टे च गिणज्जरट्टी ॥

भावार्थ—अति बाल, दुर्बल, ग्लान, वृद्ध, तपस्वी, कुल, गण, चतुर्विध संघ और चैत्य यानी जिनमन्दिर-जिनमूर्ति की वैयावच्च (सेवा-भक्ति) कर्म-निर्जरा में कारण होती है ।

(२८) श्री तत्त्वार्थसूत्र के कर्त्ता पूर्वधर महर्षि श्री

उमास्वाति महाराज 'तत्त्वार्थसूत्र' के स्वोपज्ञभाष्य गत 'सबन्धकारिका' में कहते हैं कि—

अभ्यर्चनादहंतां मनःप्रसादस्ततः समाधिश्च ।
तस्मादपि निःश्रेयसमतो हि तत् पूजनं न्याय्यम् ॥

भावार्थ—श्री अरिहन्त भगवन्त की अभ्यर्चना यानी उपासना करने से मन की प्रसन्नता रहती है, मन के प्रसाद से समाधि रहती है और समाधि से मोक्ष प्राप्त होता है ।

(२६) 'व्यवहारसूत्र' नामक ग्रंथ में जिनमूर्ति-जिनप्रतिमा के समक्ष भी पाप की आलोचना करने के लिये कहा है कि—

जत्येव सम्मचियाइ चेइयाई पाणिज्जा ।
कप्पसेसस्स संतिए आलोइत्तए वा ॥

भावार्थ—जहाँ तक आचार्यादि बहुश्रुत गीतार्थ पुरुषों का संयोग न मिले तो यावत् 'चेइया' यानी जिनमूर्ति-जिनप्रतिमा के सम्मुख जाकर आलोचना यानी किये हुए पाप को प्रगट करना चाहिये ।

(३०) श्रमण भगवान महावीरस्वामी के हस्त-

मूर्ति की सिद्धि एवं मूर्तिपूजा की प्राचीनता—१२४

दीक्षित शिष्यरत्न और अविधिज्ञान को धारण करने वाले श्री धर्मदासगणीकृत 'श्री उपदेशमाला' नामक ग्रन्थ में कहा है कि—

निकृत्वमण नाण निव्वाराण ,
जम्म भूमिउ वंदई जिणाराणं ।

भावार्थ—जिस भूमि से तीर्थकर भगवान ने जन्म लिया हो, दीक्षा ली हो, केवलज्ञान पाया हो एवं निर्वाण (मोक्ष) प्राप्त किया हो, ऐसे उस पवित्र कल्याणक भूमि की वन्दना-स्पर्शना करनी चाहिये ।

[श्री उपदेशमाला-श्लोक-२३६]

(३१) १४४४ ग्रन्थों के प्रणेता श्रीमद् हरिभद्र सूरीश्वरजी महाराज ने 'श्री पंचाशक' नामक ग्रन्थ में कहा है कि—

जिणभवन-बिंबठावण-जत्ता-पूजाइ सुत्त ओ विहिणा ।
दव्वत्थओ त्ति नेयं, भावत्थय - कारणत्तेण ॥

[श्री पंचाशक शास्त्र ६-३]

भावार्थ—शास्त्रोक्त विधि युक्त किये हुए जिनमन्दिर-निर्माण, जिनबिम्ब निर्माण, जिनमूर्ति-जिनप्रतिमा की जिनमन्दिर में प्रतिष्ठा, अष्टाह्निक महोत्सव रूप यात्रा,

मूर्ति की सिद्धि एवं मूर्तिपूजा की प्राचीनता-१२५

पुष्प-फूल आदि से पूजा तथा स्तुति-स्तवनादि गुणगान स्वरूप अनुष्ठान सर्व विरति रूप भावस्तव के कारण होने से द्रव्यस्तव अर्थात् द्रव्यपूजा है, जो भगवान को भी अभिप्रेत-अनुमत इष्ट है ।

(३२) चौदह पूर्वधर श्रुतकेवली, श्री भद्रबाहु स्वामी महाराज ने 'श्री आवश्यकसूत्र' में कहा है कि—

अन्तेउर चेइयघरं कारियं पभावईए ण्हातानि ।
संभं अच्चेइ, अन्नया देवी णच्चइ रायवीणा वायेई ॥

भावार्थ—प्रभावती रानी ने अपने अन्तःपुर में जिनगृह यानी जिनमन्दिर बनवाया । वह स्नान करके प्रभात, मध्याह्न और सायंकाल तीन बार अपने गृहस्थित जिन-मन्दिर में अर्चा-पूजा करती थी । एक दिन रानी भगवान के सामने नृत्य करती है, इतना ही नहीं किन्तु साथ में खुद उदयन राजा भी वीणा बजाता है ।

(३३) उपदेशमाला ग्रन्थ में श्री धर्मदासगणि महाराज ने तो यहाँ तक कहा है कि—

वंदइ उभओ कालंपि, चेइयाइं थइथुई परमो ।
जिणवर-पडिमा-घर, धूप-पुप्फ-गंधच्चणु ज्जुत्तो ॥

[उपदेशमाला श्लोक-२३०]

भावार्थ—स्तवन, स्तोत्र और स्तुति इत्यादि से युक्त होकर श्रावक तीन काल जिनेश्वर भगवान को प्रतिमामूर्ति की पुष्प, धूप, गन्ध अर्चनादि से पूजन करे ।

(३४) श्री आवश्यकसूत्र में कहा है कि—

तत्तीय पुरिमेताल, वग्गुर-इसाण अच्चए पडिमं ।

मल्लिजिणाययण पडिमा, अन्नाए वंसि बहुगोटी ॥

भावार्थ—वग्गुर नामक श्रावक ने पुरिमताल नगर में श्री मल्लिनाथ भगवान का जिनमन्दिर बनवाकर, पूर्ण परिवार समेत जिनपूजा की ।

(३५) श्री ठाणांगसूत्र के चतुर्थ स्थान में श्री नन्दीश्वर द्वीप में ५२ जिनमन्दिरों का अधिकार सूचित है ।

(३६) श्री भगवतीसूत्र के दसवें शतक के पाँचवें उद्देश में श्रमण भगवान महावीर परमात्मा श्री गौतम स्वामी गणधर को कहते हैं कि असुरेन्द्र की चमरचंचा नामक राजधानी में, सुधर्मा सभा में चौत्यस्तम्भ में गोलाकार डिब्बों में जिनेश्वर भगवन्तों की बहुत सी दाढ़ाएँ रही हुई हैं, जो असुरेन्द्र, चमरेन्द्र तथा अन्य देव-देवियों को चन्दनादिक से अर्चन-पूजन करने योग्य हैं, वन्दन-तमस्कार करने लायक हैं, वस्त्र वगैरह से सत्कार करने

योग्य है तथा कल्याण और मंगलकारी ऐसी जिनप्रतिमा के तुल्य उपासना करने लायक हैं ।

इन महामाननीय दाढ़ाओं की अस्तित्ता के कारण ही चमरेन्द्र वहाँ पर देव सम्बन्धी विषयभोग भोगने में समर्थ नहीं होता है ।

(३७) श्री ज्ञातासूत्र के १६ वें अध्याय में वर्णन है कि—महासती द्रौपदी ने १७ भेद से प्रभु की पूजा की है ।

(३८) श्री विपाकसूत्र में सुबाहु आदि ने जिन-प्रतिमा पूजी है, ऐसा वर्णन है ।

(३९) श्री रायपसेणीसूत्र में सूर्याभदेव ने १७ प्रकार से प्रभु की पूजा की है ।

(४०) श्री प्रश्नव्याकरण सूत्र के तीसरे संवर नामक द्वार में जिन-प्रतिमा की वैयावच्च (रक्षा) करना कर्मनिर्जरा का हेतु कहा है ।

(४१) श्री प्रज्ञापनासूत्र में 'ठवणासच्च' यानी 'स्थापना सत्य' कहा है ।

(४२) श्री चन्द्रप्रज्ञप्तिसूत्र में चन्द्र के विमान में

शाश्वत जिनप्रतिमाओं की विद्यमानता का वर्णन किया है ।

(४३) श्री निरयावलिका सूत्र में नगरप्रमुख अधिकार में जिनप्रतिमा का वर्णन किया है ।

(४४) श्री सूर्यप्रज्ञप्ति में सूर्य के विमान में जिनप्रतिमाओं का वर्णन किया है ।

(४५) श्री बृहत्कल्प सूत्र में नगरियों के अधिकार में जिनचैत्य का भी वर्णन किया है ।

(४६) श्री व्यवहार सूत्र के पहले उद्देश की आलोचना के अधिकार में जिनप्रतिमा का वर्णन है ।

(४७) श्री दशाश्रुतस्कन्ध सूत्र में राजगृह नगर के अधिकार में जिनमूर्ति का वर्णन है ।

(४८) श्री दशवैकालिक सूत्र में 'जिनप्रतिमा के दर्शन से श्री शय्यंभव नाम के भट्ट ने प्रतिबोध पाया', ऐसा वर्णन है ।

(४९) श्री नंदी सूत्र में विशाला नाम की नगरी में जिनचैत्य को महाप्रभाविक कहा है ।

(५०) श्री अनुयोगद्वार सूत्र में नामादि चार निक्षेपों के अधिकार में स्थापना निक्षेप में श्री अरिहंत भगवन्तों की मूर्ति-प्रतिमा की स्थापना की है ।

(५१) श्री ठाणाङ्ग सूत्र में नन्दीश्वर द्वीप का वर्णन किया है । उसमें चार अंजनगिरि, सोलह दधिमुख एवं बत्तीस रतिकर पर्वतों का उल्लेख है । उन सभी पर्वतों के मध्य भाग में सिद्धायतन होते हैं । कुल बावन जिनचैत्य जिनमन्दिर माने गये हैं और उन जिनचैत्यों में शाश्वती जिनमूर्तियाँ हैं । इस ठाणाङ्ग सूत्र में स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि—

“चत्तारी जिणपडिमाओ सव्वरयणामइत्तो संपलियं कणि सन्नाओ थूभाभि मुहाओ चिठ्ठंति । तं जहा रिसभा वद्धमाणा चंदाणणा वारिषेण ।”

अर्थात्—शाश्वत सिद्धायतनों में शाश्वती प्रतिमाएँ जो बिराजेमान हैं, वे सभी रत्नमय पद्मासन बैठी हुई और स्तूपों के सम्मुख रही हुई हैं । इतने उल्लेख के बाद शाश्वती प्रतिमाओं के नाम लिखे हुए हैं—

‘ऋषभ, वद्धमान, चन्द्रानन और वारिषेण’ इन नामों वाली चार जिनमूर्तियाँ हैं ।

प्रत्येक चौबीसी में पन्द्रह क्षेत्रों में मिलाकर इन चार नामों वाली चार शाश्वती जिनप्रतिमाएँ हैं। इसी कारण उनको शाश्वत जिन कहते हैं।

मूर्तिपूजा के समर्थन में आगमग्रन्थों के अतिरिक्त भी अनेक ग्रन्थ हैं। जैसे—चौदहपूर्वी आचार्य श्री भद्र-बाहु स्वामी महाराज कृत 'श्री आवश्यक नियुक्ति' आदि, पूर्वधर वाचकप्रवर श्री उमास्वाति महाराज कृत 'पूजा-प्रकरण', १४४४ ग्रन्थों के प्रणेता आचार्य श्रीमद् विजय हरिभद्र सूरीश्वरजी महाराज विरचित 'पूजा पंचाशक प्रकरण', 'षोडशक प्रकरण', 'ललितविस्तरा' तथा 'श्रावकप्रज्ञप्ति वृत्ति', आचार्य श्रीमद् शान्ति सूरीश्वरजी महाराज रचित 'चैत्यवन्दन बृहद्भाष्य', अवधिज्ञान के धारक श्री धर्मदास गणि महाराज कृत 'उपदेशमाला', नवाङ्गी वृत्तिकारक आचार्य श्रीमद् अभयदेव सूरीश्वरजी महाराज विरचित 'पंचाशकवृत्ति' तथा कलिकालसर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य महाराज रचित 'श्री योगशास्त्र' इत्यादि।

ऐसे जैनशास्त्रों के अनेक ग्रन्थों में जिनचैत्य-जिन-मन्दिर, जिनमूर्ति-जिनप्रतिमा-जिनबिम्ब एवं उनकी पूजा का वर्णन स्पष्ट रूप में महापुरुषों ने प्रतिपादित किया है।

इससे यह सिद्ध होता है कि जिनचैत्य-जिनमन्दिर-जिनालय तथा जिनमूर्ति-जिनप्रतिमा-जिनबिम्ब इन सबकी वन्दनीयता एवं पूजनीयता आगमशास्त्रों के प्रमाणों से तथा अन्य भी ग्रन्थों के प्रमाणों से सिद्ध ही है ।

जैसे जैनधर्म में जिनेश्वरदेव के साकार और निराकार दोनों स्वरूप बताये हैं, वैसे जैनेतरों के वेद ग्रन्थों में भी निराकार ईश्वर के साकार रूप होने का वर्णन है । मैं यहाँ वेदों के प्रमाणों से निराकार ईश्वर के साकार स्वरूप के साथ-साथ 'मूर्तिपूजा' का भी दिग्दर्शन कराता हूँ—

(१) यजुर्वेद के प्रथम सूत्र का प्रथम मन्त्र है कि—

सहस्रशीर्षा पुरुषः, सहस्राक्षः सहस्रपाद ।

स भूमि सर्वतः स्पृत्वा-त्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥

[यजुर्वेदे प्रोक्तम्]

भावार्थ—इस प्रकार विराट् रूपधारी ईश्वर के अनेक मस्तक हैं, अनेक आँखें हैं और अनेक पैर हैं । ऐसा विराट् रूपधारी ईश्वर सभी ओर से पृथ्वी को स्पर्श करता हुआ विशेष स्वरूप से दश अंगुल के बीच में रहता है अर्थात् नाभि से अन्तःकरण-हृदय तक रहता है ।

(२) या ते रुद्र ! शिवा तनूरघोरापापकाशिनी ।
तया नस्तन्वासन्तमया गिरीशं चाभिचाकशीहि ।

[यजुर्वेद, अध्याय १६, मन्त्र ४६]

भावार्थ—हे रुद्र ! तुम्हारी मूर्ति कल्याण करने वाली सुन्दर और पवित्र है । उसके द्वारा हमारा कल्याण बढ़े ।

(यहाँ 'तनू' शब्द से ईश्वर की साकारता बताई है ।)

(३) त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्द्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान् मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥

[यजुर्वेद, अध्याय ३ मन्त्र ६]

भावार्थ—हम तीन नेत्र वाले शिवजी की पूजा करते हैं, सुगन्धित पुष्टिकारक पका हुआ खरबूजा जिस तरह अपनी लता से अलग हो जाता है, उसी तरह हमको मृत्यु-मरण से अलग करके मोक्षपद की प्राप्ति कराइये ।

इससे ईश्वर की साकारता सिद्ध होती है ।

(४) नमस्ते नीलग्रीवाय, सहस्राक्षाय मीढुषे ।

अथो ये अस्य सत्त्वानो, हन्तेभ्योऽकरन् नमः ॥

[यजुर्वेद अध्याय १६, मन्त्र ८]

भावार्थ—नीलकण्ठ, सहस्र नेत्र से सम्पूर्ण विश्व के

देखने वाले इन्द्र रूप या विराट् रूप सेवन में समर्थ पर्जन्य (मेघ) रूप या वरुण रूप रुद्र के लिये नमस्कार हो और इस रुद्रदेव के जो अनुचर देवता हैं उनको भी मैं नमस्कार करता हूँ ।

इससे भी ईश्वर की साकारता की ही सिद्धि होती है ।

(५) प्रमुञ्च धन्वनस्त्वमुभयोरात्न्योर्ज्याम ।

याश्च ते हस्त इषवः, पराता भगवो वपः ॥

[यजुर्वेद, अध्याय १६, मन्त्र ६]

भावार्थ—हे षडैश्वर्य सम्पन्न ! भगवन् ! आप अपने धनुष की दोनों कोटियों में स्थित ज्या (धनुष की डोरी) को दूर करो अर्थात् उतार लो और आपके हाथ में जो बाण हैं उनको भी दूर कर दो और हमारे लिये सौम्य स्वरूप हो जाओ ।

इससे भी ईश्वर की साकारता सिद्ध होती है ।

(६) “नमः कपर्दिने च ।”

[यजुर्वेद अध्याय १६, मन्त्र २६]

भावार्थ—कपर्दी अर्थात् जटाजूटधारी ईश्वर को नमस्कार हो ।

यहाँ पर भी ईश्वर की साकारता दर्शायी है, क्योंकि सिर-मस्तक के बिना जटायें नहीं हो सकतीं ।

(७) एषोह देवः प्रदिशोऽनुसर्वाः पूर्वोहजातः स उ
गर्भे अंतः ।

स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ्जनास्तिष्ठति
सर्वतो मुखः ।

[यजुर्वेद अध्याय० ३२]

भावार्थ—यह जो पूर्वोक्त ईश्वर सब ही दिशा-विदिशाओं में अनेक रूप धारण करके रहा हुआ है, वही विश्व के प्रारम्भ में हिरण्यगर्भ रूप से उत्पन्न हुआ और वही गर्भ के भीतर आया और वही पैदा हुआ एवं वही पुनः उत्पन्न हुआ; जो कि सबके अन्तःकरण में रहा हुआ है तथा जो नाना रूप धारण करके सभी ओर मुखों वाला हो रहा है ।

इस कथन से ईश्वर का देहधारी होना स्पष्ट हो जाता है ।

(८) आयो धर्माणि प्रथमः ससाद ततो वपूंषि कृणुसे
पुरुणि ।

[अथर्ववेद ५।१।१।२]

भावार्थ—हे ईश्वर ! आपने सृष्टि के प्रारम्भ में धर्मों की स्थापना की, उन्हीं आपने बहुत से शरीर अवतार रूप धारण किये हैं ।

इससे भी ईश्वर का साकार रूप शरीर होना सिद्ध होता है ।

(९) एह्यश्मानमातिष्ठाश्मा भवतु ते तनूः ।

[अथर्ववेद २।१२।४]

भावार्थ—हे ईश्वर ! तुम आओ और यह पत्थर की मूर्ति तुम्हारी तनू यानी शरीर बन जाय ।

इस प्रकार के वर्णन से ईश्वर की साकारता सिद्ध होती है ।

(१०) “आदित्यं गर्भं पयसा समद्धिः सहस्रस्य प्रतिमां विश्वरूपम् । परिवृद्धिः हरसामाभिमंस्थाः । शतायुषं कृणुहि चीयमानः ।”

भावार्थ—सहस्र नाम वाला जो ईश्वर है, उसकी स्वर्णादि धातुओं से बनाई हुई मूर्ति को अग्नि में डाल कर उसका मल-विकार दूर करना चाहिये । पश्चात् उस ईश्वर की मूर्ति को दूध से धोना और शुद्ध करना

चाहिये । कारण कि विशुद्ध स्थापना की हुई मूर्ति प्रतिष्ठातापूजक-पुरुष को दीर्घायु और बड़ा प्रतापी बनाती है ।

इस कथन से भी ईश्वर की साकारता और मूर्ति-पूजा सिद्ध होती है ।

(११) “यदा देवतायतनानि कम्पन्ते देवताः प्रतिमा हसन्ति रुदन्ति नृत्यन्ति स्फुटन्ति खिद्यन्ति उन्मीलन्ति निमीलन्ति ।”……

(अथर्ववेद)

भावार्थ—जिस राजा के राज्य में शयन अवस्था में या जागृत अवस्था में ऐसा प्रतीत हो कि देवमन्दिर काँपते हैं, तो देखने वालों को कोई दुःख अवश्य होगा और यह बात उस देश के राजा के लिये भी अच्छी नहीं, अर्थात् राजा को भी कष्ट होगा । इस तरह देवता की मूर्ति यदि हँसती, रोती-रुदन करती, नाचती-नृत्य करती, अङ्गहीन होती, नयन-नेत्र-आँखों को खोलती या बन्द करती हुई किसी को दृष्टिगोचर हो तो समझना चाहिये कि रिपु-शत्रु की ओर से कोई कष्ट-संकट अवश्य ही होगा । इस प्रकार के कथन से भी ईश्वर की साकारता और मूर्ति की प्राचीनता सिद्ध होती है ।

(१२) मैत्रं प्रसाधनं स्नानं, दन्तधावन-मज्जनम् ।
पूर्वाह्न एव कुर्वीत, देवताञ्च पूजनम् ॥

[मनुस्मृति, अध्याय ४ श्लोक १२५]

भावार्थ—शौचादि स्नान और दातुन इत्यादि करना तथा देवताओं का पूजन प्रातःकाल में ही करना चाहिये ।

इससे मूर्त्तिपूजा ही सिद्ध होती है ।

जैनग्रन्थों में और जैनेतर ग्रन्थों में मूर्त्तिपूजा के सम्बन्ध में ऐसे अनेक शास्त्रीय प्रमाण एवं सम्मतियाँ उपलब्ध हैं ।



जैनेतर जगत् में मूर्त्तिपूजा की प्राचीनता के प्रमाण

* शिव (शंकर) पार्वती संवाद *

जगत् में प्रवर्त्तमान जैनेतर शासन में तीन देवों की मुख्यता प्रतिपादित की गई है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश। विश्व को उत्पन्न करने वाले ब्रह्माजी माने गए हैं, विश्व का पालन करने वाले विष्णुजी माने गए हैं एवं विश्व का विनाश करने वाले महेशजी माने जाते हैं। महेशजी महादेव के नाम से, शिव के नाम से और शंकर के नाम से भी सुप्रसिद्ध हैं।

जैनेतर शासन में द्वापर युग के बाद कोई भी अवतार नहीं हुआ है। इसलिये इतना तो कहा जा सकता है कि द्वापर युग के पूर्व ही शिव यानी शंकर और पार्वती का अवतार हुआ है। द्वापर युग को आज ५००० वर्षों से भी अधिक वर्ष हो चुके हैं। इस कारण 'शिव-पार्वती' को कम-से-कम साधिक पाँच हजार वर्ष

पूर्व मानने में किसी प्रकार का भी मतभेद नहीं हो सकता है ।

पाँच हजार वर्ष पूर्व भी मूर्त्तिपूजा की प्राचीनता के प्रत्यक्ष प्रमाण रूप इतिहास 'शिव-पार्वती संवाद' से जिनेश्वरदेव के मन्दिर-मूर्त्ति का पता मिलता है । वह 'शिव-पार्वती संवाद' नीचे प्रमाण है—

विश्वकर्मा के मूल श्लोक अर्थ सहित

सुमेरुशिखरं दृष्ट्वा, गौरी पृच्छति शङ्करम् ।

कोऽयं पर्वत इत्येषः, कस्येदं मन्दिरं प्रभो ॥ १ ॥

अर्थ—एक समय पार्वती सुमेरुपर्वत के शिखर को देखकर शंकरजी से पूछने लगी कि—हे प्रभो ! यह सामने विद्यमान कौन सा पर्वत है ? और इसके शिखर पर यह किस देव का मन्दिर है ? ॥ १ ॥

कोऽयं मध्ये पुनर्देवः, पादान्ता का च नायिका ।

किमिदं चक्रमित्यत्र, तदन्ते को मृगो मृगी ॥ २ ॥

अर्थ—हे नाथ ! इस मन्दिर के मध्य में कौन से देव बिराजमान हैं ? और इनके पाँवों के समीप यह किस नाम की नायिका यानी मुख्य देवी है ? एवं यह

चक्र क्या है ? तथा समीप में ही खड़े ऐसे मृग (हिरण)
और मृगी (हिरणी) कौन हैं ? ॥ २ ॥

के वा सिंहगजाः के वा, के चाऽमी पुरुषा नव ।

यक्षो वा यक्षिणी केयं, के वा चामरधारकाः ॥ ३ ॥

अर्थ—हे स्वामिन् ! इन देव के समीप ये सिंह और
हाथी कौन हैं ? तथा ये नौ पुरुष कौन हैं ? ये यक्ष
और यक्षिणी क्या हैं ? तथा ये चामर डुलाने वाले
भी कौन हैं ? ॥ ३ ॥

के वा मालाधरा एते, गजारूढाश्च के नराः ।

एतावपि महादेव ! कौ वीणा-वंश-वादकौ ॥ ४ ॥

अर्थ—हे महादेव ! ये माला धारण किये हुए कौन
हैं ? ये हाथियों पर बैठे हुए पुरुष कौन हैं ? तथा वीणा
और बांसुरी बजाने वाले दो व्यक्ति कौन हैं ? ॥ ४ ॥

दुन्दुभेर्वादकाः के वा, को वाऽयं शङ्खवादकः ।

छत्रत्रयमिदं किं वा, किं वा भामण्डलं प्रभो ! ॥ ५ ॥

अर्थ—हे प्रभो ! इनके समीप में ये दुन्दुभि वाजिन्त्र
बजाने वाले कौन हैं ? तथा ये तीन छत्र क्यों हैं ?
और यह प्रकाशमान भामण्डल क्या है ? ॥ ५ ॥

आप कृपा करके मेरे इन सब प्रश्नों के उत्तर शीघ्र दीजिये । मुझे तो महान् ही आश्चर्य हो रहा है कि 'यह मन्दिर किस देव का है ?'

[इन प्रश्नों के उत्तर शंकरजी नीचे प्रमाणे दे रहे हैं—]

शृणु देवि ! महागौरि, यत् त्वया पृष्ठमुत्तमम् ।
कोऽयं पर्वतमित्येष, कस्येदं मन्दिरं प्रभो ! ॥ ६ ॥

अर्थ—पार्वती के इन प्रश्नों को सुनकर महादेवजी कहते हैं कि हे देवि ! तुमने मुझे जो ये उत्तम प्रश्न पूछे हैं उनका उत्तर मैं तुम्हें देता हूँ, तुम एकाग्रचित्त से सानन्द सुनो ॥ ६ ॥

पर्वतो मेरुरित्येषः, स्वर्ण-रत्नविभूषितः ।
सर्वज्ञमन्दिरं चैतद्, रत्नतोरणमण्डितम् ॥ ७ ॥

अर्थ—यह स्वर्ण और रत्नादिकों से विभूषित यानी समलंकृत 'मेरु' नाम का पर्वत है अर्थात् सुमेरु पर्वत है तथा इस पर्वत पर सर्वज्ञदेव (जिनेश्वरदेव) का रत्न-खचित तोरणमण्डित मन्दिर है अर्थात् यह विशाल एवं मनोहर जिनमन्दिर है ॥ ७ ॥

अग्रं मध्ये पुनस्साक्षात्, सर्वज्ञो जगदीश्वरः ।
त्रयस्त्रिंशत् कोटिसङ्ख्या, यं सेवन्ते सुरा अपि ॥ ८ ॥

मूर्ति की सिद्धि एवं मूर्तिपूजा की प्राचीनता—१४२

अर्थ—इस मन्दिर में तैंतीस करोड़ देवताओं से समाराधित, सर्व शक्तिमान् साक्षात् प्रत्यक्ष भगवान् जगदीश्वर ऐसे सर्वज्ञदेव (जिनेश्वरदेव) की मूर्ति प्रतिष्ठापित है, देवताओं के अधिपति ऐसे इन्द्र वगैरह भी इसकी सेवा करते हैं ॥ ८ ॥

इन्द्रियैर्न जितो नित्यं, केवलज्ञाननिर्मलः ।

पारङ्गतो भवाम्भोधेयो लोकान्ते वसत्यलम् ॥ ९ ॥

अर्थ—ये सर्वज्ञदेव सर्वदा इन्द्रियों को जीतने वाले तथा केवलज्ञान से नित्य निर्मल सम्पन्न हैं । ये अपने अलौकिक सामर्थ्य से भवसिन्धु-संसारसागर को पार करके लोकान्त में (मोक्षस्थान में) बसने वाले हैं । इतना होते हुए भी जन-कल्याणार्थ इस भूमण्डल के बीच में मूर्तिमान् सदैव बिराजमान रहते हैं ॥ ९ ॥

अनन्तरूपो यस्तत्र, कषायैः परिवर्जितः ।

यस्य चित्ते कृतस्थाना, दोषा अष्टादशाऽपि न ॥ १० ॥

अर्थ—हे देवि ! ये सर्वज्ञ भगवान् अनन्तरूपों वाले हैं तथा सर्व कषायों से रहित हैं । इनके अन्तःकरण में अठारह दोषों में से एक भी दोषस्थान किया हुआ नहीं है अर्थात् ये अष्टादश दोषों से रहित हैं ॥ १० ॥

लिङ्गरूपेण यस्तत्र, पुरुरूपेणाऽत्र वचन्ते ।

राग-द्वेषव्यतिक्रान्तः, स एषः परमेश्वरः ॥ ११ ॥

अर्थ—हे देवि ! जो सर्वज्ञ उस (पर) लोक में तो लिङ्ग (घनप्रदेश) और इस (मनुष्य) लोक में पुरुष रूप से बिराजते हैं । वे राग और द्वेष से रहित सर्वज्ञ साक्षात् परमेश्वर हैं ॥ ११ ॥

आदिशक्तिजिनेन्द्रस्य, आसने गर्भसंस्थिता ।

सहजा कुलजा ध्याने, पद्महस्ता वरप्रदा ॥ १२ ॥

अर्थ—हे देवि ! श्री सर्वज्ञदेव (जिनेन्द्रदेव) के गंभारा में बैठी हुई अधिष्ठायकदेव की आदिशक्ति है । यह ध्यान में स्वाभाविक बुद्धि वाली सुलक्षण समलंकृत हाथों में कमल धारण करने वाली और भक्तजनों को श्रेष्ठ वर देने वाली ऐसी शासन-अधिष्ठायिका देवी है ॥ १२ ॥

धर्मचक्रमिदं देवि !, धर्ममार्ग-प्रवर्तकम् ।

सत्त्वं नाम मृगस्सोऽयं, मृगी च करुणा मता ॥ १३ ॥

अर्थ—हे देवि ! उनके समीप यह जो चक्र है वह धर्ममार्ग में मनुष्यों की प्रवृत्ति कराने वाला 'धर्मचक्र' है तथा यह मृग स्वयं सत्त्व है और यह जो मृगी

है इसका नाम करुणा है । ये लोगों को सत्त्व एवं करुणा का मार्ग बतला रहे हैं ॥ १३ ॥

अष्टौ च दिग्गजा एते, गर्जसिंहस्वरूपतः ।

आदित्याद्याः ग्रहा एते, नवैव पुरुषाः स्मृताः ॥ १४ ॥

अर्थ—हे देवि ! हाथी और सिंह के स्वरूपों को धारण किये हुए ये आठों दिशाओं के दिग्गज (दिक्पाल) हैं तथा ये नौ पुरुष आदित्यादि नवग्रह हैं । [जो सर्वज्ञदेव के चरणों की सदैव सेवा कर अपने जीवन को पावन-पवित्र बना रहे हैं] ॥ १४ ॥

यक्षोऽयं गोमुखो नाम, आदिनाथस्य सेवकः ।

यक्षिणी रुचिराकारा, नाम्ना चक्रेश्वरी मता ॥ १५ ॥

अर्थ—हे देवि ! यह गोमुख नाम का यक्ष आदिनाथ (भगवान) का सेवक है तथा सुन्दर स्वरूप वाली चक्रेश्वरी देवी सेविका है ॥ १५ ॥

इन्द्रोपेन्द्रा स्वयंभर्तु-र्जाताश्चामरधारकाः ।

पारिजातो वसन्तश्च, मालाधरतया स्थितौ ॥ १६ ॥

अर्थ—हे देवि ! इन्द्र और उपेन्द्र ये स्वयं भगवान के सेवक बनकर चामर डुला रहे हैं तथा ये जो दो माला

धारण करने वाले हैं, इनमें एक तो साक्षात् कल्पवृक्ष है और दूसरा वसन्त ऋतुराज है । अर्थात् इन दोनों नाम के देवता सर्वज्ञदेव (जिनेश्वरदेव) को पुष्पमाला यानी फूलों की माला समर्पित कर रहे हैं ॥ १६ ॥

अन्येऽपि ऋतुराजा ये, तेऽपि मालाधराः प्रभोः ।

भ्रष्टेन्द्र गजमारूढाः, कराग्रे कुम्भधारिणः ॥ १७ ॥

स्नात्रं कर्तुं समायाताः, सर्वसंतापनाशनम् ।

कर्पूर-कुंकुमादीनां, धारयन्तो जलं बहु ॥ १८ ॥

अर्थ—रिक्त अन्यान्य ऋतुएँ भी प्रभु (सर्वज्ञ जिनेश्वर-देव) की सेवा में पुष्पमालाएँ लेकर खड़ी हैं तथा ये अन्य-अन्य देवता इन्द्र से त्यागे हुए ऐरावत हाथी पर चढ़कर अपने हाथों में जल से भरे कुंभ लेकर कर्पूर-केसर इत्यादि से सुवासित अपरिमित जल को धारण करके सर्वज्ञ (जिनेश्वर) देव के पास समस्त सन्तापों का विनाश करने वाले ऐसे स्नात्र समारम्भ को करने के लिए आये हैं । [वे सर्वज्ञविभु-जिनेन्द्रदेव का स्नात्र कर अपने कर्ममल को धो डालते हैं ।] ॥ १७-१८ ॥

यथा लक्ष्मीसमाक्रान्तं, याचमानौ निजं पदम् ।

तथा मुक्तिपदं कान्त-मनन्त-सुखकारणम् ॥ १९ ॥

हूह तुंबरु-नामानौ, तौ वीणावंशवादकौ ।

अनन्त-गुण-संघातं, गायतो जगतां प्रभोः ॥ २० ॥

अर्थ—हे देवि ! ये हूह और तुम्बरु नाम के दोनों गन्धर्व जाति के देवता लक्ष्मी-समधिष्ठित स्वस्थान की जिस तरह प्रभु से याचना करते हैं, उसी तरह अनन्त सुख के कारणभूत अक्षय मोक्षपद को चाहते हुए वीणा और बाँसुरी को बजाने वाले ये हूह और तुम्बरु विश्व के स्वामी ऐसे सर्वज्ञ (जिनेश्वर) देव के अनन्त गुणों के समूह को गाते हैं ॥ १९-२० ॥

वाद्यमेकोनपञ्चाशद्, भेदभिन्नमनेकधा ।

चतुर्विधा अमी देवाः, वादयन्ति स्वभक्तितः ॥ २१ ॥

अर्थ—हे देवि ! ये चार प्रकार (निकाय) के देव अपनी भक्ति से उनपचास (४९) तरह के वाजिन्त्रों को अनेक प्रकार से बजाते हैं ॥ २१ ॥

सोऽयं देवो महादेवि !, दैत्यारिः शङ्खवाटकः ।

नानारूपाणि विभ्राण, एकैकोऽपि सुरेश्वरः ॥ २२ ॥

अर्थ—हे महादेवि ! ये जो शंख बजाने वाले हैं वे दैत्यों को शिक्षा करने वाले देव हैं । ये एक होते

हुए भी अनेक रूपों को धारण करते हुए सुरेश्वर के समान हैं ॥ २२ ॥

जगत् त्रयाधिपत्यस्य, हेतुश्छत्रत्रयं प्रभोः ।

अमी च द्वादशाऽऽदित्याः, जाताः भामण्डलं प्रभोः ॥ २३ ॥

अर्थ—हे देवि ! प्रभु सर्वज्ञ-जिनेश्वर के ऊपर ये तीनों छत्र त्रिलोक (स्वर्ग-मृत्यु-पाताल) के प्रभुत्व-मुख्य-रूप चिह्न हैं तथा बारहों सूर्य स्वयं आकर भगवान के भामण्डल में प्रकाश कर रहे हैं ॥ २३ ॥

पृष्टलग्ना अमी देवाः, याचन्ते मोक्षमुत्तमम् ।

एवं सर्वगुणोपेतः, सर्वसिद्धिप्रदायकः ॥ २४ ॥

एष एव महादेवि ! सर्वदेवः नमस्कृतः ।

गोप्याद् गोप्यतरः श्रेष्ठो, व्यक्ता व्यक्ततया स्थितः ॥ २५ ॥

अर्थ—हे महादेवि ! प्रभु के पृष्ठ भाग में खड़े हुए ये देव प्रभु से श्रेष्ठ-उत्तम मोक्ष की याचना करते हैं तथा इस तरह सर्वगुणों से सहित और समस्त सिद्धियों को देने वाले एवं सर्वदेवों से नमस्कार किये हुए अति-गोपनीय सर्वश्रेष्ठ तथा व्यक्त यानी प्रगट और अव्यक्त यानी अप्रगट रूप से स्थित एक यही सर्वज्ञदेव [जिनेश्वर-देव] विश्व के आधार रूप हैं ॥ २४-२५ ॥

आदित्याद्याः भ्रमन्त्येते, यं नमस्कर्तुमुद्यताः ।

कालो दिवसरात्रिभ्यो, यस्य सेवाविधायकः ॥ २६ ॥

अर्थ—हे देवि ! ये सूर्य इत्यादि [सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु] नौ ग्रहदेवता प्रभु को नमस्कार करने को उद्यत हुए हैं तथा प्रभु के परितः अर्थात् चारों तरफ भ्रमण-प्रदक्षिणा करते हैं एवं स्वयं कालदेव भी दिन-रात अर्थात् दिवस और रात्रि के विभाग से इन सर्वज्ञ [जिनेश्वर] देव की सेवा करते हैं ॥ २६ ॥

वर्षाकालोष्णकालादि, शीतकालादि वेशभृत् ।

यत् पूजार्थं कृता धात्रा, आकाराः मलयादयः ॥ २७ ॥

अर्थ—तथा यही काल-वर्षा, गर्मी और शीत के रूप को धारण कर भगवान की सेवा करता है और कुदरत ने इन्हीं सर्वज्ञ [जिनेन्द्र] देव की अर्चना-पूजा के लिये मलयाचल इत्यादि पर्वत बनाए हैं। अर्थात् मलयाचलादि के सर्वोत्तम पदार्थों से अर्चना-पूजा करने लायक यही सर्वज्ञदेव हैं ॥ २७ ॥

काश्मीरे कुङ्कुमं देवि ! यत् पूजार्थं विनिर्मितम् ।

रोहणे सर्वरत्नानि, यद्भूषणकृते व्यधात् ॥ २८ ॥

अर्थ—हे देवि ! विधाता ने भगवान सर्वज्ञ [जिनेश्वर] की अर्चना-पूजा के लिये काश्मीर देश में केसर बनाई तथा आभूषण पूजा के लिये रोहणाचल आदि पर्वतों-पहाड़ों में रत्न उत्पन्न किये हैं । अर्थात् इससे यह सिद्ध होता है कि सर्वज्ञदेव केशर तथा रत्नों से अर्चना-पूजा करने योग्य है ॥ २८ ॥

रत्नाकरोऽपि रत्नानि, यत् पूजार्थञ्च धारयेत् ।

तारकाः कुसुमायन्ते, भ्रमन्तो यस्य सर्वतः ॥ २९ ॥

अर्थ—हे देवि ! सर्वज्ञ [जिनेन्द्र] भगवान की पूजा के लिये रत्नाकर यानी समुद्र भी रत्नों को धारण करता है तथा आकाश में चमकते हुए ये तारे भगवान के चारों तरफ भ्रमण करते हुए पुष्पों-फूलों के समान दिखते हैं ॥ २९ ॥

एवं सामर्थ्यमस्यैव, नाऽपरस्य प्रकीर्तितम् ।

अनेन सर्वकार्याणि, सिद्धयन्ती व्यवधारय ॥ ३० ॥

अर्थ—हे देवि ! इस प्रकार यह अलौकिक सामर्थ्य सिर्फ सर्वज्ञ [जिनेश्वर] देव का ही है अन्य किसी का नहीं । अतः इन्हीं सर्वज्ञ प्रभु के द्वारा समस्त कार्य सिद्ध होते हैं ॥ ३० ॥

मूर्ति की सिद्धि एवं मूर्तिपूजा की प्राचीनता—१५०

परात् परमिदं रूपं, ध्येयाद्धचेयमिदं परम् ।

अस्य प्रेरकता दृष्टा, चराऽचर-जगत्त्रये ॥ ३१ ॥

अर्थ—हे देवि ! विश्व के समस्त रूपों में केवल सर्वज्ञ [जिनेश्वर] देव का रूप ही सर्वोत्तम है तथा ध्यान करने योग्य पदार्थों में मात्र इन्हीं सर्वज्ञ प्रभु का ध्यान करने लायक है एवं तीनों लोकों में सिर्फ सर्वज्ञ [जिनेन्द्र] देव की ही प्रेरकता देखी गई है ॥ ३१ ॥

दिक्पालेष्वपि सर्वेषु, ग्रहेषु निखिलेष्वपि ।

ख्यातस्सर्वेषु देवेषु, इन्द्रोपेन्द्रेषु सर्वदा ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे देवि ! समस्त दिक्पालों में तथा निखिल ग्रहों में एवं सर्व देवता और इन्द्र-उपेन्द्रादिकों में सर्वदा यही सर्वज्ञदेव प्रसिद्ध हैं एवं सदा पूजनीय हैं । [अर्थात् इनसे तुलना करने वाला त्रिलोक में और कोई भी देव नहीं है ।] ॥ ३२ ॥

इति श्रुत्वा शिवाद् गौरी, पूजयामास सादरम् ।

स्मरन्ती लिङ्गरूपेण, लोकान्ते वासिनं जिनम् ॥ ३३ ॥

अर्थ—इस तरह शिव-शंकर से सर्वज्ञदेव का स्वरूप सुनकर शिवप्रिया पार्वती, संसार में रहे जीवों का कल्याण

करने वाले ऐसे भगवान जिन को स्मरण करती हुई आदर-पूर्वक उनकी पूजा करने लगी । ॥ ३३ ॥

ब्रह्माविष्णुस्तथा शक्रो, लोकपालादिदेवताः ।

जिनार्चनरता एते, मानुषेषु च का कथा ? ॥ ३४ ॥

अर्थ—ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र और लोकपालादि सर्व देवता जिन भगवान की अर्चना-पूजा में लगे हुए हैं, तो फिर मनुष्यों के लिये तो क्या कहना है ? [अर्थात् मनुष्यों को तो अर्हनिश अवश्य ही जिनपूजा करनी चाहिये] ॥ ३४ ॥

जानुद्वये शिरश्चैव, यस्य घृष्टं नमस्यतः ।

जिनस्य पुरतो देवि !, स याति परमं पदम् ॥ ३५ ॥

अर्थ—हे देवि ! जिस देव-देवेन्द्र और नर-नरेन्द्र का सिर-मस्तक और दोनों घुटने जिन-सर्वज्ञदेव को नमस्कार करने में घिस गये हैं, वह उस सेवा-भक्ति के कारण परम पद यानी मोक्ष को प्राप्त होता है । [अतएव सर्वज्ञ ऐसे श्री जिनेश्वर भगवान को नमस्कार करना परम पद प्राप्त करने का मुख्य कारण है] ॥ ३५ ॥

इति श्रीविश्वकर्माविरचिताऽपराजित-

वास्तुशास्त्रमध्ये 'शिव-पार्वती संवादः' ।

मूर्ति की सिद्धि एवं मूर्तिपूजा की प्राचीनता-१५२

सं. १९३१ कार्तिक कृष्णा १३ मन्दवासरे जीर्ण-
पत्रादुद्धृतः ॥

लि. भोजक गिरधरहेमचंद पटणी, हाल अहमदाबाद,
विद्याशाला ।

उपर्युक्त संस्कृत संवाद गुर्जरभाषाऽनुवाद के साथ
'जैनधर्म प्रसारक' नामक मासिक पत्र में मुद्रित हो चुका
है । फिर भी जैन मन्दिर-मूर्तियों की प्राचीनता की
सिद्धि के लिए उपयोगी होने के कारण स्वर्गीय आचार्य
श्री देवगुप्त सूरिजी [ज्ञानसुन्दरजी] महाराज ने इसका
हिन्दी अनुवाद कर छोटी पुस्तिका रूपे प्रकाशित करवाया
है । [वीर सं. २४६३]



जिनमूर्तियों तथा जिनमन्दिरों को बनवाने वाले भूतकाल के भाग्यशाली महापुरुष

जगत् में अनन्तानन्त जीव हैं। मनुष्य-भव पाये हुए प्राणियों का जब प्रबल पुण्योदय होता है तब उन्हें भवसिन्धुतारक ऐसी जिनमूर्तियाँ और मनोहर जिन-मन्दिर बनवाने का अनुपम लाभ मिलता है।

भूतकाल में ऐसा अनुपम लाभ लेने वाले धर्मी महापुरुष अनेक हो गये हैं। उनके शुभ नाम आज भी धर्मशास्त्रों में तथा इतिहास के पन्नों में सुवर्णाक्षरों में अंकित हैं। इनमें से कुछ सुप्रसिद्ध नामों का उल्लेख नीचे प्रमाणों है—

(१) इस अवसर्पिणी काल में प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव भगवान के प्रथम पुत्र श्री भरत चक्रवर्ती ने श्री शत्रुंजय महातीर्थ का उद्धार किया। स्वर्ण-सोने के जिनमन्दिर बनवाये और रत्नों की बनाई हुई जिन-मूर्तियों-जिनबिम्बों की भी सुन्दर स्थापना की। उन्होंने

श्री अष्टापद पर्वत पर चौबीस तीर्थंकर-भगवन्तों की प्रतिमाएँ, उनके वर्ण, लंछन और देह-शरीर के आकार के अनुसार स्थापित करवाई हैं ।

(२) गुजरात के श्री शंखेश्वर तीर्थ (गाँव) में विशालकाय श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ जिनमन्दिर में बिराजित अति प्राचीन श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथजी की मूर्ति गत चौबीसी के श्री दामोदर तीर्थंकर के समय आषाढी श्रावक द्वारा बनवाई हुई आज भी मौजूद है ।

(३) श्रमण भगवान महावीर परमात्मा के निर्वाण के २५० वर्ष बाद, आर्य श्री सुहस्ती सूरीश्वरजी महाराज के द्वारा प्रतिष्ठित श्री अवन्ती सुकुमाल की स्मृति में उनके पुत्ररत्न द्वारा बनवाई हुई श्री पार्श्वनाथ भगवान की मूर्ति श्री अवन्ती पार्श्वनाथ के नाम से आज भी उज्जैन नगर में क्षिप्रानदी के समीप में स्थित है, जो कालक्रम से भूगर्भ में चली गई थी; वह पुनः विक्रम संवत् प्रवर्त्तक श्री विक्रमादित्य महाराजा के समय महान् प्रभावक आचार्य श्री सिद्धसेन दिवाकरजी महाराज ने नूतन 'श्री कल्याणमन्दिर स्तोत्र' की रचना द्वारा प्रकट की है ।

(४) श्रमण भगवान महावीर परमात्मा के निर्वाण

के २६० वर्ष बाद सुप्रसिद्ध श्री सम्प्रति महाराजा ने सवा लाख जिनमन्दिरों और सवा करोड़ जिनमूर्तियों-जिनप्रतिमाओं का निर्माण करवाया था ।

(५) संवत् ६६३ वर्षे आबू (देलवाड़ा) में श्री विमल मंत्रीश्वर ने १८ करोड़ रुपयों की लागत से एक विशाल जिनमन्दिर बनवाया था और दो हजार जिनबिम्बों की स्थापना करवाई थी । इसे १०४६ वर्ष हुए हैं ।

(६) संवत् ११६६ वर्षे सुविख्यात श्री कुमारपाल महाराजा ने पाँच हजार जिनप्रासाद करवाये और सात हजार जिनमूर्तियों-जिनप्रतिमाओं की स्थापना की थी ।

(७) संवत् १२६५ वर्षे श्री वस्तुपाल और तेजपाल दोनों बन्धुओं ने पाँच हजार जिनप्रासाद करवाये और ग्यारह हजार जिनबिम्बों-जिनप्रतिमाओं की स्थापना की थी । बारह करोड़ तिरेपन लाख की लागत से श्री वस्तुपाल तेजपाल ने श्री अर्बुदाचल-आबूपर्वत पर श्री नेमिनाथ भगवान का जिनमन्दिर बनवाया था । इसे ८४४ वर्ष हुए हैं ।

(८) संवत् १२७२ वर्षे संघवी श्री धन्नाशाह पोर-

वाड़ ने प्रख्यात श्री राणकपुर तीर्थ में नवाणुं करोड़ की लागत से १४४४ स्तम्भ युक्त एक विशालकाय भव्य जिनमन्दिर बनवाया ।

(६) संवत् १३७१ वर्षे श्री समरोशा रंग सेठ ने श्री शत्रुंजय महातीर्थ का पन्द्रहवाँ उद्धार ग्यारह लाख की लागत से करवाया ।

(१०) संवत् १५८७ वर्षे चित्तौड़ (मेवाड़) निवासी श्री करमशाह ने श्री शत्रुंजय महातीर्थ का उद्धार करवाया ।

(११) लंका की राजकुमारी सुदर्शना ने भडौंच (भरुंच) में समली विहार नामक श्री मुनिसुव्रत स्वामी भगवान का भव्य जैनमन्दिर बनवाया, जिसे आज ग्यारह लाख वर्ष हुए हैं ।

(१२) 'महामेघवाह चक्रवर्ती राजा खारवेल ने अपने पूर्वजों के समय में राजा नन्द द्वारा ले जाई गई भगवान ऋषभदेव की मूर्ति वापिस लाकर आचार्य श्री सुस्थित सूरिजी महाराज से प्रतिष्ठा करवाई थी । यह मूर्ति श्री श्रेणिक महाराजा ने बनवाई थी ।'

[उड़ीसा की हस्तिगुफा से जो शिलालेख प्राप्त हुआ है, उस पर यह लेख अंकित है ।]

(१३) ओसवालों के उत्पत्ति-स्थान ओसियां और कोरुण्टा के जिनमन्दिर श्री वीर निर्वाण से ७० वर्ष के पश्चाद् के हैं । वे आज भी वहाँ पर विद्यमान हैं । श्री महावीर स्वामी की प्रतिमा आचार्यश्री रत्नप्रभ सूरिजी द्वारा प्रतिष्ठित की हुई है ।

(१४) सुप्रसिद्ध श्री अर्बुदाचल-आबू के समीप श्री मुण्डस्थल तीर्थ में श्रमण भगवान महावीर परमात्मा अपने छद्मस्थपने के ७ वें वर्ष पधारे थे, उसी समय वहाँ पर राजा श्री नन्दिवर्धन ने जिनमन्दिर बनवाया था । ऐसा शिलालेख वहाँ पर है ।

(१५) विख्यात श्री विशाला नगरी की खुदाई से जो मूर्तियों के खण्डहर निकले हैं उन्हें पुरातत्त्व-वेत्ताओं ने २२०० वर्ष पुराने बताया है ।

(१६) कच्छ भद्रेश्वर में श्री वीर निर्वाण से २३ वर्ष के पश्चाद् के जिनमन्दिर का जीर्णोद्धार दानवीर श्री जगडूशाह ने करवाया । इस प्रकार यह तीर्थ प्रायः कई हजार वर्ष पुराना है ।

(१७) आन्ध्रप्रदेश में हैदराबाद के निकटवर्ती श्री कुल्पाकजी तीर्थ (गाँव) में श्री भरत महाराजा के समय में बनवाई हुई श्री ऋषभदेव भगवान की मूर्ति— जो काल के प्रभाव से जिनमन्दिर युक्त, भूगर्भ में दब गई थी वह—कुछ समय पूर्व प्रकट हुई है। वह मूर्ति आज भी देवाधिष्ठित है और 'श्री माणिक्य स्वामी' के नाम से प्रसिद्ध है।

(१८) लंकाधिपति रावण के समय बनाई हुई मूर्ति श्री अंतरिक्ष पार्श्वनाथ के नाम से आज भी महाराष्ट्र के आकोला गाँव में स्थित है।

(१९) मरुधर-मारवाड़ के नांदिया गाँव में २५१५ वर्ष पूर्व श्रमण भगवान महावीर स्वामीजी की विद्यमानता में बनी हुई मूर्ति स्थापित की हुई है। इसे जीवन्त स्वामी की मूर्ति-प्रतिमा कहते हैं।

(२०) वर्तमान चौबीसी के बाईसवें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ भगवान के शासन के २२२२ वर्ष के बाद गौड़देशवासी श्री आषाढ़ नाम के श्रावक ने तीन मूर्तियाँ-प्रतिमाएँ बनवाई थीं। उनमें से एक मूर्ति स्थंभनपुर (खंभात) में श्री स्थंभन पार्श्वनाथ भगवान की विद्य-

मान है। दूसरी मूर्ति पाटण शहर में और तीसरी मूर्ति चारुप तीर्थ (गाँव) में आज भी विद्यमान है। इन जिनमूर्तियों की प्राचीनता ५,८६,७४४ वर्ष की है।

(२१) गुजरात के श्री तारंगाजी तीर्थ में श्री कुमार-पाल महाराजा द्वारा बनवाया हुआ गगनचुम्बी जिन-मन्दिर एवं श्री अजितनाथ स्वामी की भव्य विशाल मूर्ति विद्यमान है। इसे ८५० वर्ष हुए हैं।

(२२) श्री सम्मैतशिखरजी तीर्थ पर बीस तीर्थकर भगवन्तों की कल्याणक भूमियाँ हैं तथा वहाँ अनेक जिन-मन्दिर बने हैं।

(२३) श्री सिद्धाचलजी महान् तीर्थ पर अनेक जिनमन्दिर एवं हजारों जिनमूर्तियाँ हैं।

(२४) श्री जैसलमेर तीर्थ में अनेक जिनमन्दिर एवं छह हजार छह सौ जिनमूर्तियाँ हैं।

(२५) श्री गिरनारजी तीर्थ पर अनेक जिनमन्दिर तथा सैकड़ों जिनमूर्तियाँ हैं।

इसके अतिरिक्त भी सुप्रसिद्ध तीर्थस्थानों पर अनेक प्राचीन जिनमूर्तियाँ और जिनमन्दिर विद्यमान हैं।

भारत देश के कोने-कोने में और विशेषतः गुजरात, सौराष्ट्र (काठियावाड़) और कच्छ में, मेदपाट-मेवाड़, मरुधर-मारवाड़ और मालवा में, उत्तरप्रदेश, बिहार, आन्ध्र, कर्णाटक तथा तामिलप्रदेश में अनेक जिनमन्दिर एवं जिनमूर्तियाँ विद्यमान हैं ।

ये सब जिनमन्दिर और जिनमूर्तियाँ जिनपूजा की अति प्राचीनता के जीवित प्रमाण हैं, इतना ही नहीं किन्तु शास्त्रोक्तता के भी जीवित प्रमाण हैं ।



❦

* दर्शन-पाठ *

❦

दर्शनं देवदेवस्य, दर्शनं पापनाशनम् ।
दर्शनं स्वर्गसोपानं, दर्शनं मोक्षसाधनम् ॥

प्रभु-दर्शनं सुख-सम्पदा, प्रभुदर्शनं नवनीध ।
प्रभु-दर्शनं से पाइए, सकल पदारथ सिद्ध ॥ १ ॥

भावे जिनवर पूजिए, भावे दीजे दान ।
भावे भावना भाविए, भावे केवलज्ञान ॥ २ ॥

जिवड़ा ! जिनवर पूजिए, पूजा नां फल होय ।
राजा नमे प्रजा नमे, आण न लोपे कोय ॥ ३ ॥

फूलों केरा बाग में, बैठे श्री जिनराज ।
जिम तारा में चन्द्रमा, तिम शोभे महाराज ॥ ४ ॥

प्रभु नाम की औषधि, खरे भाव से खाय ।
रोग शोक आये नहीं, सभी संकट दूर थाय ॥ ५ ॥

वाडी चंपो मोरियो, सोवन पांखड़िये ।
 पास जिनेश्वर पूजिए, पाँचे अंगुलिये ॥ ६ ॥
 त्रिभुवन नायक तू धणी, महा मोटो महाराज ।
 महा पुण्ये पामिया, तुम-दर्शन में आज ॥ ७ ॥
 आज मनोरथ सवि फले, प्रगटे पुण्य कलोल ।
 पाप कर्म दूरे टले, नाठें दुःख डंडोल ॥ ८ ॥
 पंचम काले पामयो, दुर्लभ तुभ देदार ।
 तो पण तेरा नाम का, है महा आधार ॥ ९ ॥
 जो दृष्टि प्रभुदर्शन करे, उस दृष्टि को भी धन्य है ।
 जो जीभ जिनवर को स्तवे, वह जीभ भी नित धन्य है ॥
 पीए मुदा वाणी सुधा, उस कर्ण-युग को धन्य है ।
 तुम नाम मन्त्र पवित्र धारे, हृदय भी वे धन्य हैं ॥ १० ॥
 आया दादा के दरबार, कर भवोदधि पार ।
 मेरे तू ही आधार, मुझे तार ! तार ! तार ! ॥
 तेरी मूर्ति मनोहार, हरे मन का विकार ।
 तू है हैया का हार, वन्दूँ बार ! बार ! बार ! ॥ ११ ॥



❀ प्रार्थनामङ्गलम् ❀

पूरुगानन्दमयं महोदयमयं, कैवल्यचिद्दृग्मयं,
रूपातीतमयं स्वरूपरमणं, स्वाभाविकीश्रीमयम् ।
ज्ञानोद्योतमयं कृपारसमयं, स्याद्वादविद्यालयं,
श्रीसिद्धाचलतीर्थराजमनिशं, वन्देऽहमादीश्वरम् ॥ १ ॥

धन्या दृष्टिरियं यया विमलया, दृष्टो भवान् प्रत्यहं,
धन्यासौ रसना यया स्तुतिपथं, नीतो जगद्वत्सलः ।
धन्यं कर्णयुगं वचोऽमृतरसं, पीतं मुदा येन ते,
धन्यं हृत्सततं च येन विशदस्त्वन्नाममन्त्रो धृतः ॥ २ ॥

धन्यास्त एव भुवनाधिप ! ये त्रिसन्ध्य-
माराधयन्ति विधिवद् विधुतान्यकृत्याः ।
भक्त्योल्लसत्पुलकपक्ष्मलदेहदेशाः
पादद्वयं तव विभो ! भुवि जन्मभाजः ॥ ३ ॥

शस्य क्षणोऽयं दिवसः कृतार्थः ,

श्लाघ्यः स पक्षः सफलश्च मासः ।

स हायनः पुण्यपदं जिनेन्द्र !

यस्मिन् भवेद् वन्दनमङ्गलं ते ॥ ४ ॥

असितगिरिसमं स्यात्, कज्जलं सिन्धुपात्रे,
सुरतरुवरशाखा, लेखिनी पत्रमूर्वी ।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं,
तदपि तव गुणानां नाथ ! पारं न याति ॥ ५ ॥

पत्रं व्योम मषी महाम्बुधि-
सरित्कुल्यादिकानां जलम् ।
लेखिन्यः सुरभूसहाः सुरगणा-
स्ते लेखितारः समे ॥ ६ ॥

आयुः सागरकोटयो बहुतराः,
स्युश्चेत् तथाऽपि प्रभो !
नैकस्याऽपि गुणस्य ते जिन
भवेत्, सामस्त्यतो लेखनम् ॥ ७ ॥

प्रशमरसनिमग्नं, दृष्टियुग्मं प्रसन्नं,
वदनकमलमङ्गलः कामिनीसङ्गशून्यः ।
करयुगमपि यत्ते शस्त्रसम्बन्धवन्ध्यं,
तदसि जगति देवो वीतरागस्त्वमेव ॥ ८ ॥

विधीयमाना भगवन् ! गुणानां,
स्तुतिस्तवाल्पापि ददात्यभीष्टम् ।
सुधा यदल्पापि निपीयमाना,
नीरोगतां प्राणभृतां तनोति ॥ ९ ॥

प्रणौमि सम्मेतगिरीन्द्रतीर्था-
वतारचैत्येऽजितनाथमुख्यान् ।
जिनेश्वरान् विंशतिमक्षरश्री-
शृङ्गारहारान् सुरनायकाचार्यान् ॥ १० ॥

सरसशान्तिसुधारससागरं ,
शुचितरं गुणरत्नमहागरम् ।
भविकपङ्कजबोधदिवाकरं ,
प्रतिदिनं प्रणमामि जिनेश्वरम् ॥ ११ ॥

हृद्वर्तिनि त्वयि विभो ! शिथिलीभवन्ति ,
जन्तोः क्षणेन निबिडा अपि कर्मबन्धाः ।
सद्यो भुजङ्गममया इव मध्यभाग-
मभ्यागते वनशिखण्डनि चन्दनस्य ॥ १२ ॥

तुभ्यंनमस्त्रिभुवनातिहराय नाथ !
तुभ्यं नमः क्षितितलामलभूषणाय ।
तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय ,
तुभ्यं नमो जिन ! भवोदधिशोषणाय ॥ १३ ॥

त्वत् समोऽस्ति न परोऽत्र कृपालु-
र्मत्समश्च न कृपास्पदमन्यः ।
द्वाविमौ च मिलितौ मम पुण्यै-
रप्रतो यदुचितं तदवेहि ॥ १४ ॥

मया प्रपन्नोऽसि समग्रवाञ्छित-

प्रदस्त्वमेव प्रभुराप्तशेखरः ।

स्वसेवकं चेदुररीकरोषि मां ,
त्वमप्यवाप्नोमि तुलां तवैव तत् ॥ १५ ॥

ध्यायन्ति ये नाथ ! परद्वयं ते ,
पदद्वयं ते सुधियो लभन्ते ।

महोदयं वा सुमनोमनो वा ,
सदैव दाता हि पदं ददाति ॥ १६ ॥

भवन्तु नूनं सुकृतानि तानि मे ,
सदा मनो मे भुवनैकबान्धव !

इदं निलीनं तव पादपङ्कजे ,
दृढानुबन्धं चलतां जहाति यैः ॥ १७ ॥

ज्ञाने जिनेन्द्र ! तव केवलनाम्नि जाते ,
लोकेषु कोमलमनांसि भृशं जहर्षुः ।
प्रद्योतने समुदिते हि भवन्ति किं नो ,
पद्माकरेषु जलजानि विकासभाञ्जि ॥ १८ ॥

अनन्तविज्ञानमतीतदोष-

मबाध्यसिद्धान्तममर्त्यपूज्यम् ।

श्रीवर्द्धमानं जिनमाप्तमुख्यं ,
स्वयम्भुवं स्तोतुमहं यतिष्ये ॥ १९ ॥

यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो ,
 बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्त्तेति नैयायिकाः ।
 अर्हन्मित्यथ जैनशासनरताः कर्मेति मीमांसकाः ,
 सोऽयं नो विदधानु वाञ्छितफलं श्रीवीतरागो जिनः ॥२०॥

वन्दे चतुर्विंशतिमहंतोऽष्टा-
 पदावतारे ऋषभेश्वरादीन् ।
 जगत्त्रयाभीष्टसुखप्रदानैः
 सुरद्रुमा ये भरते बभूवुः ॥ २१ ॥

वयं त्वां स्मरामो वयं त्वां भजामो ,
 वयं त्वां जगत् साक्षिरूपं नमामः ।
 सदेकं निधानं निरालम्बमीशं ,
 भवाम्भोधिपोतं शरण्यं व्रजामः ॥ २२ ॥

यदि त्रिलोकी गणनापरा स्यात् ,
 तस्याः समाप्तिर्यदि नायुषः स्यात् ।
 पारे परार्द्धं गणितं यदि स्याद्-
 गणोयनिःशेषगुणो जिनः स्यात् ॥ २३ ॥

त्वमेव देवो मम वीतराग !
 धर्मो भवद् दर्शितधर्म एव ।
 इति स्वरूपं परिभाव्य तस्मा-
 न्नोपेक्षणीयो भवति स्वभृत्यः ॥ २४ ॥

मूर्ति की सिद्धि एवं मूर्तिपूजा की प्राचीनता-१६८

ॐकारं बिन्दुसंयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः ।
कामदं मोक्षदं चैव, ॐकाराय नमो नमः ॥ २५ ॥

देहबुद्ध्या तु दासोऽहं, जीवबुद्ध्या त्वदंशकः ।
आत्मबुद्ध्या त्वमेवाह-मिति मे निश्चला मतिः ॥ २६ ॥

अज्ञानतिमिरान्धानां, ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
नेत्रमुन्मीलितं येन, तस्मै सद्गुरवे नमः ॥ २७ ॥

आनन्दमानन्दकरं प्रसन्नं ,
ज्ञानस्वरूपं निजबोधरूपम् ।
योगीन्द्रमीड्यं भवरोगवैद्यं ,
श्रीमद्गुरुं नित्यमहं नमामि ॥ २८ ॥

क्षमामि सर्वाञ्जीवान्, सर्वे जीवाः क्षमन्तु मे ।
मैत्री मे सर्वभूतेषु, वैरं मम न केनचित् ॥ २९ ॥

न त्वहं कामये राज्यं, न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।
कामये दुःखतप्तानां, प्राणिनामार्त्तिनाशनम् ॥ ३० ॥

सुचिन्तितस्य सर्वस्या-खिलसद्भाषितस्य च ।
सुचेष्टितस्य सर्वस्य, सुकृतमनुमोदये ॥ ३१ ॥

दुश्चिन्तितस्य सर्वस्या-खिलदुर्भाषितस्य च ।
दुश्चेष्टितस्य सर्वस्य, मिथ्या दुष्कृतमस्तु मे ॥ ३२ ॥

मनो मे सर्वजन्तूनां, शुभं चिन्तयतु सदा ।
वचो ब्रूतां शुभं तद्-दिति भावोऽभिवर्द्धताम् ॥ ३३ ॥

शुभं मेऽखिलजन्तुभ्यो, गृहणात्वक्षणः सदा ।
अङ्गोपाङ्गानि मे तेषां, प्रति शुभ्रं चरन्तु वः ॥ ३४ ॥

सर्वे सुखिनः सन्तु, सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद्दुःखमाप्नुयात् ॥ ३५ ॥

शिवमस्तु सर्वजगतः, परहितनिरता भवन्तु भूतगणाः ।
दोषाः प्रयान्तु नाशं, सर्वत्र सुखी भवन्तु लोकाः ॥ ३६ ॥

□ आचार्य श्री ज्ञानविमलसूरि कृत 'चैत्री पूनम
देववन्दन' स्तुति में कहा है कि—

जेह अनंत थया जिन केवली,
जेह हशे विचरंता ते वली ।
जेह असासय सासय त्रिहुं जगे,
जिनपडिमा प्रणमुं नित जगमगे ॥

□ आचार्य श्री विजयलक्ष्मीसूरि कृत 'ज्ञानपंचमी
देववन्दन' में कहा है कि—

पूर्व दिशे उत्तर दिशे, पीठ रची त्रण सार ।
पंच वरण जिनबिम्बने, स्थापी जे सुखकार ॥ □

□ अनन्तलब्धिनिधान श्री गौतम स्वामी गणधर
महाराज रचित 'श्री जगचिन्तामणि चैत्यवन्दन' में कहा
है कि—

सत्तानवइसहस्सा, लक्खा छप्पन्न अट्टकोडिओ ।
बतिसय बासिआइं, तिअलोए चेइए वंदे ॥ ४ ॥

पनरस कोडिसयाइं, कोडिबायाल लक्ख अडवन्ना ।
छत्तीससहस असिइं, सासयबिंबाइं पणमामि ॥ ५ ॥

अर्थ—आठ करोड़ छप्पन लाख सत्तानवे हजार बत्तीस
सौ बयासी (८५६६७३२८२) इतने तीनों लोक में जो
चैत्य हैं मैं उनकी वन्दना करता हूँ । पन्द्रह सौ करोड़,
बयालीस करोड़ अठावन लाख छत्तीस हजार अस्सी
(१५४२५८३६०८०) इतनी शाश्वती प्रतिमायें हैं,
इनको मैं प्रणाम करता हूँ । □

□ 'जं किंचि सूत्र' में कहा है कि—
जं किंचि नाम तित्थं, सग्गे पायालि माणुसे लोए ।
जाइं जिणबिंबाइं, ताइं सव्वाइं वंदामि ॥ १ ॥

अर्थ—स्वर्ग में, पाताल में और मनुष्यलोक में जो

कुछ तीर्थ प्रसिद्ध हैं और जितने जिनबिम्ब [जिनमूर्ति-जिनप्रतिमा] हैं उन सबको मैं वन्दन-नमस्कार करता हूँ ।

□ 'जावन्ति चेइआइं सूत्र' में कहा है कि—
जावन्ति चेइआइं, उड्ढे अ अहे अ तिरिअ लोए अ ।
सव्वाइं ताइं वंदे, इह संतो तत्थ संताइं ॥ १ ॥

अर्थ—ऊर्ध्वलोक में, अधोलोक में और तिर्यक्लोक में जहाँ कहीं वर्तमान जितने जिनबिम्ब हों, उन सबको मैं इस जगह रहता हुआ वन्दन करता हूँ । □

□ 'अरिहंतचेइयाणं-चैत्यस्तव सूत्र' में कहा है कि—
अरिहंतचेइयाणं, करेमि काउस्सगं ॥ १ ॥

वंदणवत्तिआए पुअणवत्तिआए सक्कारवत्तिआए सम्मा-
णवत्तिआए बोहिलाभवत्तिआए निरुवसग्गवत्तिआए ॥ २ ॥

सद्धाए मेहाए धिईए धारणाए अणुप्पेहाए वड्ढमाणीए
ठामि काउस्सगं ॥ ३ ॥

अर्थ—श्री अरिहन्तों के चैत्यों के अर्थात् बिम्बों के वन्दन के निमित्त, पूजन के निमित्त, सत्कार के निमित्त, सम्मान के निमित्त, बोधिलाभ के निमित्त और मोक्ष के निमित्त काउस्सग अर्थात् कायोत्सर्ग करता हूँ तथा वह काउस्सग-कायोत्सर्ग बढ़ती हुई श्रद्धा से, धैर्य-स्थिरता से, धारणा से और विचारणा-तत्त्वचिन्तन से करता हूँ । □

卐 स्तुति-चौबीसी 卐

रचयिता—पू. मुनिराज श्री सुशील विजयजी महाराज
(वर्तमान—पू. आ. श्रीमद् विजय सुशील सूरीश्वरजी म. सा.)

卐 प्रभुनी सम्मुख बोलवानी स्तुतिश्चो 卐

(मन्दाक्रान्त-छन्दमां)

(बोधागाधं सुपदपदवी नीरपूराभिरामं—ए रागमां)

卐

* श्री ऋषभदेव भगवाननी स्तुति *

पृथ्वीमांहे प्रथम प्रभु जे आद्य भूपेन्द्र भारी ,
भिक्षाचारी प्रथम जगमां छे वली तीर्थकारी ।
माता हस्ते शिवपुरतणा द्वार खोलावनारा ,
वन्दो ते श्री ऋषभजिन ने सर्वदानन्दकारा ॥ १ ॥

मूर्ति की सिद्धि एवं मूर्तिपूजा की प्राचीनता—१७३

❀ श्री अजितनाथ भगवाननी स्तुति ❀

जे स्वामी ए भुवनभरना भाव सर्वे निहाल्या ,
वाणी द्वारा समवसरणे सर्व आगे प्रकाश्या ।
जेने गूथ्या गणधर गणे शुद्ध सिद्धान्तमाहे ,
एवा ते श्री अजितजिन ने वन्दु हुं तीर्थ माहे ॥ २ ॥

❀ श्री सम्भवनाथ भगवाननी स्तुति ❀

कापे-कापे सकल करमो सर्वदा दुःखकारी ,
आपे-आपे भविक जनने पंचमज्ञान भारी ।
स्थापे-स्थापे शिवभुवनमां नित्य आनन्दकारी ,
एवा श्री सम्भवजिन कने मांगुं हुं सिद्धि सारी ॥ ३ ॥

❀ श्री अभिनन्दन भगवाननी स्तुति ❀

चारे द्वारो चउ गति तणां सर्वदा बन्ध कीधा ,
ने कर्मो सौ हृदय तप धरी सर्वथा दूर कीधा ।
जाणी भावो निखिल जगना मोक्षधामे बिराज्या ,
एवा चौथा जिनपति तने दृष्टिथी में निहाल्या ॥ ४ ॥

❀ श्री सुमतिनाथ भगवाननी स्तुति ❀

मुद्रा मोहे सुमति जिननी विश्वमां श्रेयकारी ,
नावे तोले जगतभरनी कोइ मुद्रा विकारी ।
ध्यावे जेने सुरनरवरो प्रेमथी चित्त माहे ,
एवी मुद्रा सुमतिप्रभुनी ध्यावु हुं ध्यान माहे ॥ ५ ॥

❀ श्री पद्मप्रभ भगवाननी स्तुति ❀

जेना पादे सुरनरतणा यूथ आवी नमे छे ,
ने आज्ञाने सतत शिरसा-वंद्य तेओ करे छे ।
ने पोताना हृदयघटमां ध्यान जेनूं धरे छे ,
एवा पद्मप्रभ प्रभुतणा पादपद्मो गमे छे ॥ ६ ॥

❀ श्री सुपार्श्वनाथ भगवाननी स्तुति ❀

जीत्या जेणे हृदय वसता द्वेष-रागादि चारे ,
टाल्या जेणे जनम-मरणो दुःखथी मिश्र भारे ।
पाम्या ते तो परमपदमां शाश्वतानंद सारा ,
मोहे ते तो मुज हृदयमां श्री सुपार्श्वेश सारा ॥ ७ ॥

❀ श्री चन्द्रप्रभ भगवाननी स्तुति ❀

जे ज्योत्स्नाओ रविशशितणा तेजने भांख दे छे ,
ने भव्योना अघतिमिरने सर्वथा संहरे छे ।
जेमां छोलो सतत उछले श्रेष्ठ ज्ञानाब्धिनी ए ,
एवी चन्द्रप्रभ प्रभुतणी चांदनीमांज न्हाए ॥ ८ ॥

❀ श्री सुविधिनाथ भगवाननी स्तुति ❀

नेत्रो सारा कमल सरिखा निर्विकारी सदा ए ,
मुद्राधारी कर युगल आ शस्त्र शूना जणा ए ।
खोलो स्त्रीथी रहित चरणो पद्म जेवा मनाए ,
एवी सारी सुविधि विभुनी मूर्ति पूजुं सदा ए ॥ ९ ॥

❀ श्री शीतलनाथ भगवाननी स्तुति ❀

संसारेथी तपित सहुने शीत छाया ज आपे ,
 ने लागेला बहु समयना आत्मना कर्म कापे ।
 आपे नित्ये विमल खुशबो बावना चन्द जेवी ,
 आपो वाणी मुज हृदयमां शीतलस्वाम तेवी ॥ १० ॥

❀ श्री श्रेयांसनाथ भगवाननी स्तुति ❀

श्रेयस्कर्ता जनक-जननी भव्यना दुःख-हर्ता ,
 भ्राता त्राता जगत भरना छो वली विश्व भर्ता ।
 श्रेयांसो सौ मुरतरुससा पूरनारा सदा ए ,
 हे श्रेयांस ! स्वशिशुतणा श्रेय अंशो पुरो ए ॥ ११ ॥

❀ श्री वासुपूज्य भगवाननी स्तुति ❀

जे स्वामीने जगत जनता पूज्यना पूज्य भाने ,
 ते स्वामिने विबुध जनता विश्वना देव जाणे ।
 वन्दे जेने सकल जनता भावथी सर्वदा ए ,
 एवा ते श्री जगत भरमां वासुपूज्येश पाए ॥ १२ ॥

❀ श्री विमलनाथ भगवाननी स्तुति ❀

विश्वे जेनी शुभविमलता सर्वथी श्रेष्ठ भासे ,
 तेनी पासे स्फटिकमणिनी कान्तिभी न्यून भासे ।
 जेना संगे विमल हृदयो भव्यनां नित्य थाए ,
 वंदो ते श्री विमल विभु ने हाथ जोडी सदा ए ॥ १३ ॥

श्री अनन्तनाथ भगवाननी स्तुति

जेनां दीक्षा दरिसन गुणो ज्ञान ए छे अनंता ,
ने जेने सौ सुर नर तथा नित्य सेवे महंता ।
हम्मेशां जे शिववर सुखो भोगवे छे अनंता ,
ते आपोने शिव-सुख मने श्री अनंतेश संता ॥ १४ ॥

श्री धर्मनाथ भगवाननी स्तुति

शुद्धाचारो शुभतरगुणो सुव्रतो श्रेष्ठ जेमां ,
साचा देवो शुभगुरुवरो मार्ग साचोज तेमां ।
एवो विश्वे धरम जिननो धर्म मोटो गणाए ,
एवा धर्म-प्रभवतरणो धर्म चाहुं सदाए ॥ १५ ॥

श्री शान्तिनाथ भगवाननी स्तुति

पारेवाने पुरव भवमां बाजथी रक्ष्युं भारे ,
कीधी माता कुखमय रही देशनी शान्ति सारी ।
त्यागी दीधां नवनिधि अने चौद रत्नो छे खंडो ,
लीधा मेवा शिवपुरतणा सोलमा शान्ति वंदो ॥ १६ ॥

श्री कुन्थुनाथ भगवाननी स्तुति

छट्टा चक्री थइ जगतमां धर्मचक्री थया जे ,
भावी माटे निखिल जगने आगमो दे गया जे ।
ते द्वारा ए भविक बहुए मुक्ति मांहे बिराज्या ,
एवा स्वामी त्रण भुवनमां कुन्थुनाथ स्मराया ॥ १७ ॥

श्री अरनाथ भगवाननी स्तुति

षट्खंडोनुं अधिपतिपणुं भोगवी त्याग कीधो ,
ने दीक्षामां अति तप तपी मुक्तिनो मार्ग लीधो ।
आवीने जे शिवनगरमां लोक अग्रे बिराज्या ,
पूजो ते श्री अरजिन सदा विष्टपेथी विराम्या ॥ १८ ॥

श्री मल्लिनाथ भगवाननी स्तुति

षट्मित्रोने कनक पुतली अन्नथी नित्य पूरी ,
तार्या तें तो भवजलधिथी देइने बोध भूरी ।
कायाने शीलसलिलथकी स्नान तें तो कराव्युं ,
एवा मल्लि-प्रभु तुम तणुं ध्यान सारुं धरायुं ॥ १९ ॥

श्री मुनिसुव्रत भगवाननी स्तुति

जे स्वामीनां दरिसण थतां आत्म आनंद पावे ,
ते स्वामीनां पदकमल ने स्पर्शतां दुःख जावे ।
जेनी जोड़ी जगत भरमां कोइ ना ए दिखाये ,
तेवा साचा जिन-मुनि महा सुव्रतस्वाम गाए ॥ २० ॥

श्री नमिनाथ भगवाननी स्तुति

जे स्वामीना जनम समये देवदेवेन्द्र आई ,
मेरु शृङ्गे सुविधि सहित स्नात्र पूजादि पाई ।
धोवे त्यांही निज हृदयना कर्मना मेल सर्वे ,
ते स्वामी श्री नमिजिनतणी चाहु सेवा ज सर्वे ॥ २१ ॥

श्री नेमिनाथ भगवाननी स्तुति
तोड़ी स्नेहो नवभवतणा राजुला नार साथे ,
छोड़ावीने पशु गण तथा दान दीधुं स्व हाथे ।
दीक्षा लीधी सहस नृ सही रैवतोद्यान मांहे ,
एवा नेमीश्वरजिन नमुं मोक्ष-कैवल्य त्यांहे ॥ २२ ॥

श्री पार्श्वनाथ भगवाननी स्तुति
जेणे कुंडे अहि सलगता काष्ठमांथी कढाया ,
बीजा मुंहे अनशन-नमस्कार मन्त्रो सुणाया ।
तेना योगे अमुरधरणेन्द्र स्वरूपे थयो ए ,
पूजो एवा जिनपति कृपा सिन्धु पार्श्वेशने ए ॥ २३ ॥

श्री महावीर स्वामी भगवाननी स्तुति
विश्वे व्हाला जगगुरु महावीर देवाधिदेवा ,
आपे सारा भविक सहुने मुक्तिना मिष्ट मेवा ।
सेवे सारा त्रण भुवनना लोक सौ हर्षथी ए ,
आजे मारा हृदय घटमां आवता भावथी ए ॥ २४ ॥

कलश

(हरिगीत छंदमां)

गुरु नेमिसूरीश पट्टधर लावण्य सूरीश्वर तरणा ,
श्रीदक्ष शिष्य सुशील विजये चरण समरी पार्श्वना ।
रसनंदनिधिशिमान विक्रम साल १९६६ आश्विन मासमां,
‘स्तुति-चौबीसी’ रची उमंगे धर्मी अमदावाद मां ॥ १ ॥

॥ इति ‘स्तुति-चौबीसी’ समाप्ता ॥

श्री चतुर्विंशति जिनस्तुति

(रचयिता—श्री मेघमुनिजी महाराज)

सुखकरण स्वामी जगतनामी, आदि-करता दुःखहरं,
सुर इंद चंद फनिद वंदत, सकल अघहर जिनवरम् ।
प्रभु ज्ञानसागर गुनहि आगर, आदिनाथ जिनेश्वरं,
सब भविक जन मिल करो पूजा, जपो नित परमेश्वरम् ॥१॥

तप करत केवलज्ञान पायो, सर्व लोक-प्रकाशनं,
जिन आठ कर्म विदार दीनो, मोहतिमिरविनाशनम् ।
दुःख जनम-मरना दूर कीनो, अजितनाथ जिनेश्वरं,
सब भविक जन मिल करो पूजा, जपो नित परमेश्वरम् ॥२॥

अरि काम क्रोध तें लोभ मारचो, पञ्च इन्द्री-वशकरं,
दुर्विकार विषया सर्व जीते, योग-मारग पगधरम् ।
इह भव-समुद्रे पार पायो, सम्भवनाथ जिनेश्वरं,
सब भविक जन मिल करो पूजा, जपो नित परमेश्वरम् ॥३॥

उपदेश दे जग भव्य तारे, देव नर बहु पशु घने ,
मेटके मिथ्यात धर्म, जैन वानी धरम ने ।
दम दया दान दयाल भाख्यो, अभिनन्दन जिनेश्वरं ,
सब भविक जन मिल करो पूजा, जपो नित परमेश्वरम् ॥४॥

शुभ विमल वाणी जगत मानी, जीव सब संशयहरं ,
पशु देव असुर पुरुष नारी, वन्दना चरनन-करम् ।
अमल परम सरूप सुन्दर, सुमतिनाथ जिनेश्वरं ,
सब भविक जन मिल करो पूजा, जपो नित परमेश्वरम् ॥५॥

सब राज ऋद्धि त्याग जिनजी, दान दे एक वर्ष ही ,
अठ कर्म जीते धार दीक्षा, भयो सुर नर हर्ष ही ।
जय जय करत सब इन्द्र मिल के, पद्मप्रभ श्री जिनेश्वरं ,
सब भविक जन मिल करो पूजा, जपो नित परमेश्वरम् ॥६॥

सब हरण दारिद जगत-स्वामी, भयो नामी जगत ही ,
रवि शेष और नरेश पूजे, इन्द्रलोक सुभक्ति ही ।
सब भाव शुद्धे धार विनवे, सुपार्श्वनाथ जिनेश्वरं ,
सब भविक जन मिल करो पूजा, जपो नित परमेश्वरम् ॥७॥

मुशशाङ्क कर सम विमल विशदं, निष्कलङ्क शरीर ही ,
गिरि मेरु सम नित अचलस्वामी, उदधि सम गम्भीर ही ।
बिन शरण के है शरण जगगुरु, चन्द्रप्रभ श्री जिनेश्वरं ,
सब भविक जन मिल करो पूजा, जपो नित परमेश्वरम् ॥८॥

नव तत्त्व सर्व सुभेद भाख्यो, यति श्रावक धर्म ही ,
भक्ति दान शील सुभाव तपनिधि, षट् आवश्यक कर्म ही ।
सब तार भवजल पार पायो, सुविधिनाथ जिनेश्वरं ,
सब भविक जन मिल करो पूजा, जपो नित परमेश्वरम् ॥६॥

सित चन्दन जिम शीतल जिनप्रभु, करे शीतल दर्श तें ,
ए भव दावानल मेट देवे, बानी वर्षा वर्ष तें ।
श्री मोक्ष मारग भव्य पावे, शीतलनाथ जिनेश्वरं ,
सब भविक जन मिल करो पूजा, जपो नित परमेश्वरम् ।१०।

प्रभु तीन छत्र विराजमान, देव-दुन्दुभि वाजितं ,
शुभ मान-थम्भं धर्मचक्रं, पुष्पवृष्टि सुगाजितम् ।
अशोकवृक्ष सुछाय शीतल, श्रेयांसनाथ जिनेश्वरं ,
सब भविक जन मिल करो पूजा, जपो नित परमेश्वरम् ।११।

शुभ स्वर्ण आसन मन विकासन, जोति लख रवि लाज ही,
सित चमर चौंसठ सीस ढारें, सुर सुभक्ति सुसाज ही ।
नित करो पूजा वासवं प्रभु, वासुपूज्य जिनेश्वरं ,
सब भविक जन मिल करो पूजा, जपो नित परमेश्वरम् ।१२।

जे विमल मनसा करी आराधे, विमल अक्षत पूजहीं ,
धरि गन्ध धूप नैवेद्य दीपक, करें आरति कूजहीं ।
मन वच काया शुद्ध करि प्रभु, विमलनाथ जिनेश्वरं ,
सब भविक जन मिल करो पूजा, जपो नित परमेश्वरम् ।१३।

भवतापहरणं सुख - कारणं, विमल ज्ञान सुथापनं ,
सब नरक टारन दुःख-निवारन, मुक्ति रामा आपनम् ।
अनन्त गुण तुम मांहि प्रभुजी, अनन्तनाथ जिनेश्वरं ,
सब भविक जन मिल करो पूजा, जपो नित परमेश्वरम् । १४।

सब ईत-भीत न रहे कोई, समोसरन प्रताप तें ,
जीव वर भाव विहाय जावें, मोर साँप मिलाप तें ।
तिन धर्म को उपदेश भाख्यो, धर्मनाथ जिनेश्वरं ,
सब भविक जन मिल करो पूजा, जपो नित परमेश्वरम् । १५।

सहु शान्ति वरते जगत मांही, शान्ति शान्ति जो ध्यावही ,
मद काम क्रोध ही शान्त होवे, शान्त खोटे भावही ।
जो करे पूजा शान्ति आपे, शान्तिनाथ जिनेश्वरं ,
सब भविक जन मिल करो पूजा, जपो नित परमेश्वरम् । १६।

हरि तू ही गणपति तू ही, तू ही शङ्कर शेष ही ,
जिन तू ही ब्रह्मा चन्द सूरज, तू ही विष्णु शिवेश ही ।
सब कुन्थु आदिक करत रक्षा, कुन्थुनाथ जिनेश्वरं ,
सब भविक जन मिल करो पूजा, जपो नित परमेश्वरम् । १७।

शुभ भाव पूजा द्रव्य पूजा, करे सुर-नर-नार ही ,
मेट के सब जगत के दुःख, लहे भवजल पार ही ।
जिस नाहि कोई जगत में अरि, श्री अरनाथ जिनेश्वरं ,
सब भविक जन मिल करो पूजा, जपो नित परमेश्वरम् । १८।

सुर करे आरती शंख बाजे, घंट का रणकार ही,
डफ भेरी भल्लर तार बाजे, भांभरा भणकार ही।
बहु निरत निरतें ध्यान पूजें, मल्लिनाथ जिनेश्वरं,
सब भविक जन मिल करो पूजा, जपो नित परमेश्वरम् ।१६।

प्रभु क्षमासागर शील आगर, कोटि रवि जिम ज्योति ही,
भनि बानी सुन्दर अमियसरवी, तृपति सब जिघ होत ही।
नित करो किरपा जानि, सेवक मुनिसुव्रत जिनेश्वरं,
सब भविक जन मिल करो पूजा, जपो नित परमेश्वरम् ।२०।

अनन्त केवल ज्ञान सुन्दर, अमित बल गुण आगरं,
अमित रूप सरूप जिनेश्वरं, अमित दर्शन-सागरम् ।
पग नमत सुर नर नाग किन्नर, श्री नमिनाथ जिनेश्वरं,
सब भविक जन मिल करो पूजा, जपो नित परमेश्वरम् ।२१।

जिन लख जीवन बन्ध छोड़ी, भये दयाल विशालजी,
तिय त्याग राजमति धार दीक्षा, हुए शिवपुर लालजी।
बाल ब्रह्मचारी कहाये, नेमिनाथ जिनेश्वरं,
सब भविक जन मिल करो पूजा, जपो नित परमेश्वरम् ।२२।

सुर नाग-नागन सेव करते, सीस फन बरसात ही,
फूल अलसी तनुज वरणं, भनित जग विख्यात ही।
पारस ते तुम अधिक स्वामी, पार्श्वनाथ जिनेश्वरं,
सब भविक जन मिल करो पूजा, जपो नित परमेश्वरम् ।२३।

सहस्र सत गुण शोभते प्रभु, सहस्र नाम भनन्तजी ,
अपर जग में वीर भनितो, महावीर कहन्तजी ।
बधत बधते सुख बधे कुल, वर्द्धमान जिनेश्वरं ,
सब भविक जन मिल करो पूजा, जपो नित परमेश्वरम् ।२४।

तनु जो राम सुसिद्धि निसपति, मास फागुन सुदि कही ,
तीन दश तिथि भूमि को सुत (मंगल), नगर फगुग्रा कर लही ।
कर जोड़ के मुनि मेघ भाखे, शरण राखूं जिनेश्वरम् ,
सब भविक जन मिल करो पूजा, जपो नित परमेश्वरम् ।२५।



श्री जिनपूजादि चैत्यवन्दन फल

रचयिता-विद्वान् श्री विनय विजयजी महाराज

प्रणामी श्री गुरुराज आज, जिनमन्दिर केरो ।
पुण्य भणी करशुं सफल, जिनवचन भलेरो ॥ १ ॥

दहेरे जावा मन करे, चोथतणुं फल पावे ।
जिनवर जुहारवा उठतां, छट्ट पोते पावे ॥ २ ॥

जावा माण्ड्युं जेटले, अट्टमतणुं फल होय ।
डगलुं भरतां जिन भणी, दशमतणुं फल जोय ॥ ३ ॥

जाईशुं जिनवर भणी, मारग चालन्ता ।
होवे द्वादशतणुं पुण्य, भक्ति मालन्ता ॥ ४ ॥

अर्ध पन्थ जिनहर तरणे, पन्दर उपवास ।
दीठे स्वामीतरणे भवन, लहिये एक मास ॥ ५ ॥

जिनहर पासे आवतां, छमासी फल सिद्ध ।
आव्या जिनहर बारणे, वर्षितप फल लीध ॥ ६ ॥

सौ वरस उपवास पुण्य, प्रदक्षिणा देतां ।
 सहस वर्ष उपवास पुण्य, जिन नजरे जोतां ॥ ७ ॥
 भावे जिनवर जुहारिये, फल होवे अनन्त ।
 तेहथी लहिए सौगणुं, जो पूजे भगवन्त ॥ ८ ॥
 फल घणुं फुलनी माल, प्रभु कण्ठे ठवतां ।
 पार न आवे गीतनाद, केरां फल थुणतां ॥ ९ ॥
 शिर पूजी पूजा करो, दीपे धूपणुं धूप ।
 अक्षतसार ते अक्षयसुख, तनु करे वररूप ॥ १० ॥
 निर्मल तन मने करी, थुणतां इन्द्र जगदीश ।
 नाटक भावना भावतां, पामे पदवी ईश ॥ ११ ॥
 जिनवर तणी भक्ति भली ए, वली प्रेमे प्रकाशी ।
 सुणी श्री गुरुवयणसार, पूर्व ऋषि ए भाषी ॥ १२ ॥
 अष्टकर्मने टालवां, जिनमन्दिर जईशुं ।
 भेटी चरण भगवन्तनां, ह्वे निर्मल थईशुं ॥ १३ ॥
 कीर्त्तिविजय उवज्झायनो ए, विनय कहे करजोड़ ।
 सफल होजो मुज विनति, जिन सेवाना कोड़ ॥ १४ ॥



श्री शाश्वता-अशाश्वता जिन चैत्यवन्दन

(रचयिता-पं. श्री पद्मविजयजी महाराज)

कोडी सातने लाख बहोत्तेर वखाणुं ,
भुवनपति चैत्य संख्या प्रमाणुं ।
एंशी सो जिनबिम्ब एक चैत्य ठामे ,
नमो सासय जिनवरा मोक्षकामे ॥ १ ॥

कोडी तेरशेने नव्याशी वखाणे ,
साठ लाख ऊपर सवि बिम्ब जाणे ।
असंख्यात व्यंतर तणा नगर नामे ,
नमो सासय जिनवरा मोक्षकामे ॥ २ ॥

असंख्यात तिहां चैत्य तेम ज्योतिषीये ,
बिम्ब एकशत एंशी भाख्या ऋषिये ।
नमे ते महा (ऋद्धि) सिद्धि नवनिधि पामे ,
नमो सासय जिनवरा मोक्षकामे ॥ ३ ॥

वली बार देवलोकमां चैत्य सार ,
ग्रैवेयक नव मांहि देहरां उदार ।
तिम अनुत्तरे देखीने म पडो भामे ,
नमो सासय जिनवरा मोक्षकामे ॥ ४ ॥

चौराशी लाख तेम सत्ताणुं सहस्सा ,
ऊपर त्रेंवीश चैत्य शोभाये सरसा ।
ह्वे बिम्ब संख्या कहुं तेह धामे ,
नमो सासय जिनवरा मोक्षकामे ॥ ५ ॥

सौ कोड़ी ने बावन कोड़ी जाणो ,
चौराणुं लख सहस चौआल आणो ।
सय सात ने साठ ऊपरे प्रकामे ,
नमो सासय जिनवरा मोक्षकामे ॥ ६ ॥

मेरु राजधानी गजदंत सार ,
जमक चित्र विचित्र कांचन बखार ।
इखुकार ने वर्षधर नाम ठामे ,
नमो सासय जिनवरा मोक्षकामे ॥ ७ ॥

वली दीर्घ वैताढ्य ने वृत्त जेह ,
जम्बू आदि वृक्षे दिशा गज छे तेह ।
कुण्ड महानदी द्रह प्रमुख चैत्य ग्रामे ,
नमो सासय जिनवरा मोक्षकामे ॥ ८ ॥

माणुषोत्तर नगवरे जेह चैत्य ,
नंदीसर रुचक कुंडल छे पवित्त ।
तिर्छालोक मां चैत्य नमिये सुकामे ,
नमो सासय जिनवरा मोक्षकामे ॥ ९ ॥

प्रभु ऋषभ चन्द्रानन वारिषेण ,
बलि वर्द्धमानाभिधे चार श्रेण ।
एह शाश्वता बिम्ब सविचार नामे ,
नमो सासय जिनवरा मोक्षकामे ॥ १० ॥

सवि कोडी सय पनर बायाल धार ,
अट्टावन लख सहस छत्रीश सार ।
एंशी जोइश वण बिना सिद्धि धामे ,
नमो सासय जिनवरा मोक्षकामे ॥ ११ ॥

अशाश्वत जिनवर नमो प्रेमआणी ,
केम भाखिये तेह जाणी अजाणी ।
बहु तीर्थने ठामे बहु गाम गामे ,
नमो सासय जिनवरा मोक्षकामे ॥ १२ ॥

एम जिन प्रणमीजे, मोह नृपने दमीजे ,
भव भव न भमीजे, पाप सर्वे गमीजे ।
परभाव वमीजे, जो प्रभु अट्टमीजे ,
'पद्मविजय' नमीजे आत्म-तत्त्वे रमीजे ॥ १३ ॥



卐 श्री जिनबिम्ब स्थापन-स्तवन 卐
(रचयिता-महामहोपाध्याय श्री यशोविजयजी महाराज)

भरतादिके उद्धारज कीधो, शत्रुंजय मोभार ;
सोनातणां जेरो देरां कराव्यां, रत्नतणां बिम्ब थाप्यां ,
हो कुमति ! कां प्रतिमा उत्थापी ?
ए जिनवचने थापी, हो कुमति ॥ १ ॥

वीर पछे बसे नेवुं वरसे, सम्प्रति राय सुजाण ;
सवा लाख प्रसाद कराव्यां, सवा क्रोड़ बिम्ब थाप्यां,
हो कुमति ! कां प्रतिमा उत्थापी ॥ २ ॥

द्रोपदी ए जिन प्रतिमा पूजी, सूत्रमां साख ठराणी ;
छट्ठे अंगे ते वीरे भाख्युं, गणधर पूरे साखी ,
हो कुमति ! कां प्रतिमा उत्थापी ॥ ३ ॥

संवत् नवसेंताणु वरसे, विमल मंत्रीश्वर जेह ;
आबु तणां जेरो दहेरां कराव्यां, बे हजार बिम्ब थाप्यां,
हो कुमति ! कां प्रतिमा उत्थापी ॥ ४ ॥

संवत् अगियार नवाणुं वरसे, राजा कुमारपाल ;
पाँच हजार प्रासाद कराव्यां, सात हजार बिम्ब थाप्यां,
हो कुमति ! कां प्रतिमा उत्थापी ॥ ५ ॥

संवत् बार पंचाणु वरसे, वस्तुपाल तेजपाल ;
पाँच हजार प्रासाद कराव्यां, अगियार हजार बिम्ब थाप्यां,
हो कुमति ! कां प्रतिमा उत्थापी ॥ ६ ॥

संवत् बार बोहोंतेर वरसे, संघवी धन्नो जेह ;
राणकपुर जेरो देरां कराव्यां, ऋड नवाणुं द्रव्य खरच्यां,
हो कुमति ! कां प्रतिमा उत्थापी ॥ ७ ॥

संवत् तेर एकोतेर वरसे, समरोशा रंग सेठ ;
उद्धार पंदरमो शेत्रुं जे कीधो, अगियार लाख द्रव्य खरच्यां,
हो कुमति ! कां प्रतिमा उत्थापी ॥ ८ ॥

संवत् पंदर सत्तासी वरसे, बादरशाह ने वारे ;
उद्धार सोलमो शेत्रुं जे कीधो, करमशाहे जश लीधो,
हो कुमति ! कां प्रतिमा उत्थापी ॥ ९ ॥

ए जिन प्रतिमा जिनवर सरखी, पूजे त्रिविध तुमे प्राणी ;
जिन प्रतिमामां संदेह न राखो, वाचक जसनी वाणी,
हो कुमति ! कां प्रतिमा उत्थापी ॥ १० ॥



卐 श्री जिनप्रतिमास्थापन-स्तवन 卐

[रचयिता-महामहोपाध्याय श्री यशविजयजी महाराज]

जेम जिन प्रतिमा वन्दन दीसे, समकित ने अलावे ;
अंगोपांग प्रकट अरथ ए, मूरख मनसां नावे रे,
कुमति ! कां प्रतिमा उथापी ? ॥ १ ॥

एम तें शुभ मति कापी रे-कुमति ! कां प्रतिमा उथापी ?
मारग लोपे पापी रे, कुमति ! कां प्रतिमा उथापी ?
एह अरथ अखंड अधिकारे, जुओ उपांग उववाई ;
ए समकितनो मारग मरडी, कहे दया शी भाई रे,
कुमति ! कां प्रतिमा उथापी ? ॥ २ ॥

ममकित विण सुर दुरगति पामे, अरस विरस आहारे ;
जुओ जमाली दयाए ने तरीओ, हुओ बहुल संसारी,
कुमति ! कां प्रतिमा उथापी ? ॥ ३ ॥

चारण मुनि जिन प्रतिमा वंदे, भाखिऊ भगवई अंगे ;
चैत्य साखि आलयण भाखे, व्यवहारे मन रंगे,
कुमति ! कां प्रतिमा उथापी ? ॥ ४ ॥

प्रतिमा-नति फल काऊस्सग्गे, आवस्यकमां भाख्युं ;
चैत्य अर्थ वेयावच्च मुनि ने, दसमे अंगे दाख्युं रे,
कुमति ! कां प्रतिमा उथापी ? ॥ ५ ॥

सूरियाम सूरि प्रतिमा पूजी, रायपसेणी मांहि ;
समकित विणुं भवजलमां पडतां, दया न साहे बांहि रे,
कुमति ! कां प्रतिमा उथापी ? ॥ ६ ॥

द्रौपदीये जिन प्रतिमा पूजी, छठे अंगे वाचे ;
तो सुं एक दया पोकारी, आणा विण तुं माचे रे !,
कुमति ! कां प्रतिमा उथापी ? ॥ ७ ॥

एक जिन प्रतिमा वंदन द्वेषे, सूत्र घणां तुं लोपे ? ;
नंदी मां जे आगम संख्या, आपमती कां गोपे !
कुमति ! कां प्रतिमा उथापी ? ॥ ८ ॥

जिनपूजा-फल दानादिक सम, महानिशीथे लहिये ;
अन्ध परंपर कुमतिवासना, तो किम मनमां वहिये रे,
कुमति ! कां प्रतिमा उथापी ? ॥ ९ ॥

सिद्धारथ राय जिन पूज्या, कल्पसूत्रमां देखो ;
आणा शुद्ध दया मन धरतां, मिले सूत्रनां लेखो रे !,
कुमति ! कां प्रतिमा उथापी ? ॥ १० ॥

थावर हिंसा जिनपूजामां, जो तुं देखी धूजे ;
तो पापी ते दूर देश थी, जे तुज आवी पूजे रे ?

कुमति ! कां प्रतिमा उथापी ? ॥ ११ ॥

पडिकमणे मुनि दान विहारे, हिंसा दोष विशेष ;
लाभालाभ विचारी जोतां, प्रतिमा मां स्यो द्वेष रे !,

कुमति ! कां प्रतिमा उथापी ? ॥ १२ ॥

टीका चूर्णि भाष्य उवेख्यां, ऊवेखी निर्युक्ति ;
प्रतिमा कारण सूत्र उवेख्यां, दूर रही तुभ मुगति रे !,

कुमति ! कां प्रतिमा उथापी ? ॥ १३ ॥

शुद्ध परंपर चाली आवी, प्रतिमा-वंदन वाणी ;
संमूर्च्छम जे ए मूढ न माने, तेह अदीठ कल्याण रे !,

कुमति ! कां प्रतिमा उथापी ? ॥ १४ ॥

जिन प्रतिमा जिन सरिखी जाणे, पंचाङ्गीना जाण ;
कवि जसविजय कहे ने गिरुआ, कीजे तास वखाण रे !,

कुमति ! कां प्रतिमा उथापी ? ॥ १५ ॥



❀ श्री जिनप्रतिमा-स्थापन ❀
☪ श्री शान्तिनाथ जिनस्तवन ☪
(रचयिता-मुनिराज श्री जीवविजयजी म.)

शान्ति जिनेश्वर साहेब वंदो, अनुभव रस नो कंदो रे ;
मुखने मटके लोचन लटके, मोह्या सुर-नर वृंदो रे ।
शान्ति जिनेश्वर० (१)

मंजर देखी ने कोयल टौके, मेघ घटा जेम मोरो रे ;
तेम जिन प्रतिमा निरखी हरखुं, वली जेम चंद चकोर रे ।
शान्ति जिनेश्वर० (२)

जिन प्रतिमा जिनवर भाखी, सूत्र घणां छे साखी रे ;
सुरनर मुनिवर वंदन पूजा, करता शिव अभिलाषी रे ।
शान्ति जिनेश्वर० (३)

रायपसेणी प्रतिमा पूजी, सूरियाभ समकितधारी रे ;
जीवाभिगमे प्रतिमा पूजी, विजयदेव अधिकारी रे ।
शान्ति जिनेश्वर० (४)

जिनवर बिम्ब विना नवि वंदु, आरांजजी एम बोले रे ;
सातमे अंगे समकित मूले, अवर नहि तस तोले रे ।
शान्ति जिनेश्वर० (५)

ज्ञातासूत्रे द्रौपदी पूजा, करती शिवसुख मांगे रे ;
राय सिद्धारथे प्रतिमा पूजी, कल्पसूत्र मांहे रागे रे ।
शान्ति जिनेश्वर० (६)

विद्याचारण मुनिवरे वंदी, प्रतिमा पांचमे अंगे रे ;
जंघाचारण मुनिवरे वंदी, जिनप्रतिमा मन रंगे रे ।
शान्ति जिनेश्वर० (७)

आर्यसुहस्ति सूरि उपदेशे, चावो सम्प्रतिराय रे ;
सवा क्रोडि जिनबिम्ब भराव्यां, धन्य-धन्य एहनी माय रे ।
शान्ति जिनेश्वर० (८)

मोकली प्रतिमा अभयकुमारे, देखी आर्द्रकुमार रे ;
जातिस्मरणे समकित पामी, वरीओ शिवसुख सार रे ।
शान्ति जिनेश्वर० (९)

इत्यादिक बहु पाठ कह्या छे, सूत्र मांहे सुखकारी रे ;
सूत्र तणो एक वर्ग उत्थापे, ते कह्यो बहुल संसारी रे ।
शान्ति जिनेश्वर० (१०)

ते माटे जिनआणा धारी, कुमति कदाग्रह वारी रे ;
भक्ति तणां फल उत्तराध्ययने, बोधि बीज सुखकारी रे ।
शान्ति जिनेश्वर० (११)

एके भवे दोय पदवी पाम्या, सोलमा श्री जिनराय रे ;
मुज मन मन्दिरए पधराव्या, धवल मंगल गवराय रे ।
शान्ति जिनेश्वर० (१२)

जिन उत्तम पद रूप अनुपम, कीर्त्ति कमलानी शाला रे ;
जीवविजय कहे प्रभुजीनी भक्ति, करता मंगल माला रे ।
शान्ति जिनेश्वर० (१३)



❀ श्री चिन्तामणि पाश्वनाथ जिनस्तवन ❀

भविका श्री जिनबिम्ब जुहारो, आतम परम आधारो रे ।
॥ भविका० ॥

जिन प्रतिमा जिन सारखी, न करो शंका काई ।
आगम वाणी ने अनुसारे, राखो प्रीति सवाई रे ॥
भविका० ॥ १ ॥

जे जिनबिम्ब स्वरूप न जाणे, ते कहिये किम जाणे ।
भूला तेह अज्ञाने भरिया, नहीं तत्त्व पिछ्छाणे रे ॥
भविका० ॥ २ ॥

अम्बड श्रावक श्रेणिक राजा, रावण प्रमुख अनेक ।
विविध परे जिन भगति करंता, पाम्या धर्म विवेक रे ॥
भविका० ॥ ३ ॥

जिन प्रतिमा बहु भगते जोता, होय निश्चय उपगार ।
परमारथ गुण प्रगटे पूरण, जो-जो आर्द्रकुमार रे ॥
भविका० ॥ ४ ॥

जिन प्रतिमा आकारे जलचर, छे बहु जलधि मभार ।
ते देखी बहुधा मत्स्यादिक, पाम्या विरति प्रकार रे ॥
भविका० ॥ ५ ॥

पांचमे अंगे जिन प्रतिमानो, प्रकटपणे अधिकार ।
सूरियाभ सूर जिनवर पूज्या, राधपसेणी मभार रे ॥

भविका० ॥ ६ ॥

दशमे अंगे अहिंसा दाखी, जिन पूजा जिनराज ।
एहवा आगम अरथ मरोड़ी, करिये केम अकाज रे ॥

भविका० ॥ ७ ॥

समकितधारी सतीय द्रौपदी, जिन पूजा मन रंगे ।
जो-जो अहेनो अर्थ विचारी, छट्टे ज्ञाता अंग रे ॥

भविका० ॥ ८ ॥

विजयसुर जिम जिनवर पूजा, कीधी चित्त थिर राखी ।
द्रव्यभाव बिहूं भेदे कीना, जीवाभिगम छे साखी रे ॥

भविका० ॥ ९ ॥

इत्यादिक बहु आगम साखे, कोई शंका मत करजो ।
जिनप्रतिमा देखी नित नवलो, प्रेम घरणो चित्त धरजो रे ॥

भविका० ॥ १० ॥

चिन्तामणि प्रभु पारस पसाये, श्रद्धा होजो सवाई ।
श्री जिनलाभ सुगुरु उपदेशे, श्री जिनचन्द्र सवाई रे ॥

भविका० ॥ ११ ॥



श्री जिनप्रतिमानुं स्तवन
[ए व्रत जगमां दीवो मेरे प्यारे-ए राग]

ए जिनप्रतिमा पूजो मेरे प्यारे ! ए जिनप्रतिमा पूजो ;
जगमां देव न दूजो मेरे प्यारे ! ए जिनप्रतिमा पूजो (१)

करजोड़ी जिनप्रतिमा वंदी, ठाणांगने अनुसारे ;
ठवण निक्षेपानी रचना कहीशुं, गुरुगम विधि सुधारे ।
मेरे० (२)

श्री जिनप्रतिमा जिनवर सरखी, जिनवर गणधर भाखी ;
मुनिवर सुरनर वंदन पूजा, अनेक सूत्र छे साखी ।
मेरे० (३)

जंघा-विद्याचारण मुनिवर, जात्रा कारण जावे ;
पांचमे अंगे भगवती सूत्रे, वीसमो शतक दिखावे ।
मेरे० (४)

सूर्याभदेव जिनप्रतिमा पूजी, रायपसेणी भाखे ;
विजयदेव सिद्ध प्रतिमा पूजी, जीवाभिगमे दाखे ।
मेरे० (५)

इन्द्रादिक सर्व देव मलीने, स्वर्ग-विमाने देखो ;
जिनेश्वरनी दाढ़ा पूजे, जंबुपन्नति में देखो ।
मेरे० (६)

सिद्धारथ राजा त्रिसला राणी, निर्मल समकितधारी ;
अष्ट द्रव्य शुं पूजा कीधी, कल्पसूत्रे अधिकारी ।
मेरे० (७)

सम्प्रति राजा धर्मनो धौरी, त्रिखंड कीरति व्यापी ;
सवा लाख जिनदेरां कराव्यां, सवाक्रोड़ बिम्ब स्थापी ।
मेरे० (८)

अष्टापदगिरि भरत नरेश्वर, बिम्ब चौबीशी थापी ;
आवश्यकसूत्रे गणधरे भाखी, तोही न माने पापी ।
मेरे० (९)

अभयकुमारे जिनप्रतिमा भेजी, आर्द्रकुमार बोध पायो ;
चारित्र लइने मुक्ति पाय्यो, सूयगडांग पाठ दिखायो ।
मेरे० (१०)

मनोमति शुं कुमति बोले, ऊंधो प्रमुख बतावे ;
साहुकार जनो नाम धरावे, सूत्र आधार दिखावे ।
मेरे० (११)

गृहवासमां वसता जिनवर, जिनप्रतिमा नित्य पूजे ;
छट्टे अंगे मल्लि जिनेश्वर, एह अधिकारे सूजे ।
मेरे० (१२)

जिनवर बिब विना न पूजूं, आणंदादिक बोले ;
सूत्र उपासक गणधर भाखे, नहि कोई एने तोले ।
मेरे० (१३)

तुंगीया नगरी श्रावक बहुला, पंचमो अंग दिखावे ;
जिन प्रतिमानी पूजा करी, पछी गुरुवंदन ने जावे ।
मेरे० (१४)

सूत्र समवायांग आवश्यक बोले, जल थल फूल लावे ;
समकित थापनाधारी श्रावक, प्रभुजीने फूल चढ़ावे ।
मेरे० (१५)

फूलपूजा प्रतिमानी करतां, कुमति पाप बतावे ;
कल्पों में देखो फूलनी पूजा, नागकेतु केवल पावे ।
मेरे० (१६)

पांच कोड़ी प्रभु फूलड़े पूजी, पाम्यो देश अठार ;
एकावतारी भावने पाम्यो, कुमारपाल भूपाल ।
मेरे० (१७)

ज्ञातासूत्रे द्रौपदी पूजा, करती शिवसुख मांगे ;
शक्रस्तवनो पाठ ज भणती, प्रभुगुण अनुभव रागे ।
मेरे० (१८)

भीतमां चित्रनी नारी आलेखी, त्यां मुनिने नवि रे' वो ;
दशवैकालिक आठमा अध्ययने, ए न्याय प्रतिमा ले वो ।
मेरे० (१९)

सद्गुण आणाधारक मुनिवर, जिनमारग सत्य भांखें ;
वस्तुगते जे वस्तु प्रकाशे, कूड़ कपट नवि राखे ।
मेरे० (२०)

निज पक्षपात में कुमति पड़िया, जिनप्रतिमा नवि माने ;
विधवा नारी गर्भने न्याये सूत्र पाठ राखे छाने ।
मेरे० (२१)

चक्षुदर्शनावरणी शुं कुमति, जिनप्रतिमा नवि देखे ;
उग्यो प्रभाते रवि जलहलतो, घुवड़ तेज न पेखे ।
मेरे० (२२)

पोते मनमां कुमति जाणे, प्रतिमा सूत्रमां बोली ;
निज जननी डाकण जाणे, मुखशुं न कहे खोली ।
मेरे० (२३)

जे जिनवर प्रतिमा न पूजे, नव दंडक ते जाशे ;
सूत्र आधारे प्रतिमा पूजे, मुक्तितणां फल पाशे ।
मेरे० (२४)

चार निक्षेपा ठाणागे भाख्या, अनुजोग द्वार दिखावे ;
एकने आवरे अवर ने छंडे, कुमति ने लाज न आवे ।
मेरे० (२५)

सुतो माणस शब्द शुं जाणे, जागता कबू न जागे ;
जाणतो जिनवचन उत्थापे, समकित दूर भागे ।
मेरे० (२६)

इत्यादिक सूत्र पाठ सुणीने, कुमति दूर करीजे ;
द्रव्यभावे प्रभुपूजा रचावे, नरभव लाहो लीजो ।
मेरे० (२७)

पंचमे आरे साधु आवक ते, होय आधार सत्य जाणो ;
श्री जिन आगम जिनवर प्रतिमा, सदहणा खरी आणो ।
मेरे० (२७)

तपगच्छ दिनमणी सरिखा दीपे, श्री हर्षविजय गुरुराया ;
तस पद पंकज 'चंद्रविजय' गुरु, 'हितविजय' गुण गाया ।
मेरे (२६०)



卐 श्री जिनमूर्तिस्थापन स्तवन 卐

[रचयिता—आचार्य श्रीमद् विजय सुशील सूरि महाराज]

[मेरे मौला बुलालो मदीने मुझे०—राग में]

मेरे देव जिणंद तू, जगन्नाथ भलो ।
मेरे कर्म-हर्ता तू, मुक्तिदाता खरो ॥
मेरे० ॥ टेरी ॥ या० ॥

मेरी अर्जी ऊपर प्रभो ! ध्यान धरो ,
मेरे दिल के ये दर्द समस्त हरो ॥ मेरे० ॥ टेरे ॥

— शेर —

तू ही ब्रह्मा तू ही विष्णु, तू ही महादेव है ।
तू ही बुद्ध तू ही सिद्ध, तू ही कर्म-निर्मुक्त है ॥
मेरी आधि-व्याधि प्रभो ! दूर करो ॥ मेरे० ॥ (१)

— शेर —

तू ही माता तू ही पिता, तू ही तारणहार है ।
तू ही बन्धु तू ही मित्र, तू ही रक्षणकार है ॥
मेरी सर्व उपाधि भी दूर करो ॥ मेरे० ॥ (२)

-- शेर --

तेरी मूर्ति विश्व में ये, सबसे न्यारी श्रेष्ठ है ।
सुमन्त्र से ही मन्त्रित, प्राणप्रतिष्ठावन्त है ॥
मेरी धर्म श्रद्धा में सुवृद्धि करो ॥ मेरे० ॥ (३)

-- शेर --

तेरी मूर्ति निर्विकारी, दोष-निर्मुक्त रम्य है ।
दर्शनीय, वन्दनीय, पूजनीय भी नित्य है ॥
मेरी लक्ष चौरासी की पीर हरो ॥ मेरे० ॥ (४)

-- शेर --

जिनमूर्ति जिन सदृशी, भाखी जिन-सिद्धान्त में ।
पूजो सदा भक्ति भाव से, मत करो शङ्का उसमें ॥
मेरा नूर मुझे बक्षीस करो ॥ मेरे० ॥ (५)

-- शेर --

सूर्याभदेवे मूर्ति पूजी, रायपसेणी भाखे ए ।
पूजी मूर्ति द्रौपदी ए, ज्ञातासूत्र दाखे ए ॥
मेरा अज्ञान तिमिर दूर करो ॥ मेरे० ॥ (६)

-- शेर --

जंघाचारण मुनि वन्दे, जिनमूर्ति को भावे ए ।
तथा विद्याचारण वन्दे, कहा भगवतीसूत्रे ए ॥
मेरा ज्ञान खजाना प्रगट करो ॥ मेरे० ॥ (७)

-- शेर --

राजा सिद्धार्थ मूर्ति पूजा, विभुवीर पिता जाण ए ।
अधिकार कल्पसूत्र में, कहा है श्रीभद्रबाहु ए ॥
मेरी ज्योति से ज्योति मिलान करो ॥ मेरे० ॥ (८)

-- शेर --

भेजी मूर्ति जिनदेव की, मन्त्री अभयकुमारे ए ।
देवी आर्द्रकुमार पाये, बोधि-संयम-मोक्ष ए ॥
मेरे जन्मादि दुःख को दूर करो ॥ मेरे० ॥ (९)

-- शेर --

विजयदेव जिम पूजा, जिनमूर्ति मन रंगे ए ।
द्रव्य-भाव दोय भेद से, जीवाभिगम भाखे ए ॥
मेरे मृत्यु के दुःख को दूर करो ॥ मेरे० ॥ (१०)

-- शेर --

जिनमूर्ति बिना वन्दु ना, इम कहे श्री आणंद ए ।
उपासकदशाङ्ग जाणना, अनुपम अधिकार ए ॥
मेरे भव भ्रमण को दूर करो ॥ मेरे० ॥ (११)

-- शेर --

श्राद्ध अम्बड़ नृप श्रेणिक, राजा रावण आदि ए ।
भक्ति करते जिनदेव की, पाये धर्म विवेक ए ॥
मेरी डूबत नैया को पार करो ॥ मेरे० ॥ (१२)

-- शेर --

आलोचना चैत्य साक्षी ए, कही व्यवहार सूत्र में ।
चैत्य अर्थ सेवा मुनि को, दाखी दसवें अङ्ग में ॥
मेरे सभी कर्मों का विनाश करो ॥ मेरे० ॥ (१३)

-- शेर --

मूर्ति नति फल ध्यान में, आवश्यके अधिकार हैं ।
जिनबिम्बाकारे मत्स्यादि, देख बोधि अन्य पाये हैं ॥
मेरा मोक्ष में नित्य निवास करो ॥ मेरे० ॥ (१४)

-- शेर --

अर्हन् स्वरूपे साकार तू, सिद्ध रूपे निराकार तू ।
शाश्वत रूपे सर्वदा तू, ज्ञान रूपे परिपूर्ण तू ॥
मुझे सिद्धों की साथ मिलान करो ॥ मेरे० ॥ (१५)

-- शेर --

जग में प्रभो ! तेरी मूर्ति, शाश्वती-अशाश्वती भी हैं ।
पूजित तीन लोक में ये, स्वर्ग-मोक्ष सुखदायी हैं ॥
मेरी सादि अनन्त स्थिति करो ॥ मेरे० ॥ (१६)

— शेर —

दो सहस्र पैंतालीस ये, वर्ष महा वदी पांचमे ।
मेदपाटे फतहपुरे, पार्श्वप्रतिष्ठा शुभ दिने ॥
मुझ पर प्रभो ! उपकार करो ॥ मेरे० (१७)

— शेर —

नेमि-लावण्य - दक्षसूरि, - सुशिष्य सुशीलसूरि ए ।
किया शास्त्रप्रमाण से ही, जिनमूर्ति-स्थापन स्तव ए ॥
मेरी भावना सर्व सफल करो ॥ मेरे० ॥ (१८)



❀ जिनपूजादि-फल स्तवन ❀

[रचयिता—आचार्य श्रीमद् विजय सुशील सूरि महाराज]

(ओ पंखीड़ा ! जाजे पीयुना देशमां—ए राग)

ओ आतमा ! जाना जिनमन्दिर में ।

ओ जीवड़ा ! जाना जिनमन्दिर में ।

लाभ लेना दर्शन-पूजन का....

ओ आतमा ! ० ॥ (१)

चाह जब मन्दिर आने की करता ।

फल उपवास का वहाँ ही मिलता ।

समय मिला पुण्य कमाऊँ का....

ओ आतमा ! ० ॥ (२)

उठा जिणन्द के दर्शन करने को ।

दोय उपवास के पाता है फल को ।

समय मिला प्रभु - दर्शन का....

ओ आतमा ! ० ॥ (३)

जाने लगा है जिनमन्दिर और ।
फल पाता है अट्टम तप सुन्दर ।
समय मिला प्रभु - पूजन का....
ओ आतमा ! ० ॥ (४)

जैसे कदम आगे बढ़ाता है वह ये ।
उपवास चार का पाता है फल ये ।
समय मिला प्रभु - भजन का....
ओ आतमा ! ० ॥ (५)

राह चलते ही पाँच उपवास का ।
अर्ध राह आते मिलता पन्दर का ।
समय मिला सुलाभ लेने का....
ओ आतमा ! ० ॥ (६)

होता दर्शन जब जिनमन्दिर का ।
पाता फल वह मास उपवास का ।
समय मिला प्रभु - भेटने का....
ओ आतमा ! ० ॥ (७)

आया समीप जब जिनमन्दिर के ।
फल पाता है छमास उपवास के ।
समय मिला प्रभु देखने का....
ओ आतमा ! ० ॥ (८)

द्वारे आया जब जिनमन्दिर के ।
फल पाता एक वर्ष उपवास के ।
समय मिला देव - दर्शन का....
ओ आतमा ! ० ॥ (९)

प्रदक्षिणा तीन जिनचैत्य की देता ।
फल शत वर्ष उपवास का पाता ।
समय मिला प्रभु - मिलन का....
ओ आतमा ! ० ॥ (१०)

जिनराज को ही नजरे निहालतां ।
फल सहस्र वर्ष उपवास का पाता ।
समय मिला प्रभु चिन्तन का....
ओ आतमा ! ० ॥ (११)

भाव से जिणन्द को वन्दन करता ।
फल अनन्त भवि वहाँ ही पाता ।
समय मिला निज कर्म-क्षय का....
ओ आतमा ! ० ॥ (१२)

जब जिणन्द को भाव से पूजता ।
शत गुण पुण्य भवि वहाँ ही पाता ।
समय मिला पुण्य कमाऊँ का....
ओ आतमा ! ० ॥ (१३)

प्रभु कण्ठे पुष्प-माला पहिनावतां ।
फल बहुत वहाँ भव्य जीव पाता ।
समय मिला प्रभु अर्चन का....
ओ आतमा ! ० ॥ (१४)

प्रभु आगे भवि गीतनाद करता ।
पार न आये तस फल ही सुनता ।
समय मिला ये प्रभु - भक्ति का....
ओ आतमा ! ० ॥ (१५)

प्रभु के आगे धूप-दीपक करना ।
अक्षत नैवेद्य फल और रखना ।
समय मिला प्रभु की सेवा का....
ओ आतमा ! ० ॥ (१६)

अष्ट द्रव्य से प्रभु पूजन करता ।
भवोदधि से सेवक पार हो जाता ।
समय मिला कर्मों के क्षय का....
ओ आतमा ! ० ॥ (१७)

नाटक करता और भावना भाता ।
वो ही भव्यात्मा भगवान बन जाता ।
समय मिला प्रभु बनने का....
ओ आतमा ! ० ॥ (१८)

फल ये ही जिनदर्शन-पूजन का ।
सुना शास्त्रों से सुधर्मास्वामी आदि का ।
समय मिला मुक्ति पाने का....

ओ आतमा ! ० ॥ (१६)

नित्य प्रभु के दर्शन-पूजन करना ।
कहे दक्ष-सुशील मोक्षफल पाना ।
समय मिला सिद्ध बनने का....

ओ आतमा ! ० ॥ (२०)



卐 जिनमूर्ति-महिमा का गीत 卐

नाम है तेरा तारणहार, कब तेरा दर्शन होगा ?
जिनकी प्रतिमा इतनी सुन्दर, वो कितना सुन्दर होगा ॥

सुरवर मुनिजन जिनके चरणों,
निशदिन शीर्ष झुकाते हैं ।

जो गाते हैं प्रभु की महिमा,
वे सब कुछ पा जाते हैं ।

अपने कष्ट मिटाने को,
तेरे चरणों में वन्दन होगा ॥

जिनकी प्रतिमा० (१)

तुमने तारे लाखों प्राणी,
ये सन्तों की वाणी है ।

तेरी छवि पर मेरे भगवन् !
ये दुनिया दीवानी है ।

भूम-भूम तेरी पूज रचाये,
मन्दिर में मङ्गल होगा ॥

जिनकी प्रतिमा० (२)

मन की मुरादें लेकर स्वामी,
तेरे ही गुण गाते हैं ।

सिद्धचक्र मण्डल के बालक,
तेरे ही गुण गाते हैं ।

जग से पार उतरने को,
तेरे गीतों का सरगम होगा ॥

□ जिनकी प्रतिमा० (३)

* श्री शाश्वत जिन-स्तुति *

ऋषभ चन्द्रानन वन्दन कीजे, वारिषेण दुःख वारे जी,
वर्द्धमान जिनवर वली प्रणामो, शाश्वत नाम ए चारे जी ।
भरतादिक क्षेत्रे मली होवे, चार नाम चित्त धारे जी,
तेणो चारे ए शाश्वत जिनवर, नमिये नित्य सवारे जी ॥१॥

ऊर्ध्व अधो तिर्छा लोके थई, कोडि पन्नरसे जाणो जी,
ऊपर कोडी बेहंतालोस प्रणामो, अडवन लख मन आणो जो ।
छत्रीश सहस एंशी ते ऊपरे, बिम्ब तणो परिमाणो जी,
असंख्यात व्यंतर-ज्योतिषीमां प्रणामुं ते सुविहाणो जी ॥२॥

रायपसेणि जीवाभिगमे, भगवती सूत्रे भाखी जी,
जम्बूद्वीप पन्नत्ति ठाणांणे, विवरीने घणुं दाखी जी ।
वली अशाश्वती ज्ञाताकल्प मां, व्यवहार प्रमुखे आखी जी,
ते जिन प्रतिमा लोपे पापी, जिहां बहु सूत्र छे साखी जी ॥३॥

ए जिनपूजाथी आराधक, ईशान इन्द्र कहाया जी,
तेम सूरियाभ बहु सुरवर, देवी तणा समुदाया जी ।
नंदीश्वर अट्टाई महोत्सव, करे अति हर्ष भराया जी,
जिन उत्तम कल्याणक दिवसे, पद्मविजय नमे पाया जी ॥४॥



卐 श्री वीतरागदेव की भक्ति 卐

जनम-जनम का पापमेल सब,
प्रभु-भक्ति से धुल जाता;
प्रीति सभर भक्ति की खुशबू,
में जीवन जब घुल जाता ।
कठिन कर्म के ढेर में भी,
प्रभु भक्ति आग लगा देती;
वीतरागी की भक्ति आत्मा को,
स्वयं वीतराग बना देती ॥



तीर्थवन्दना-सूत्र

सकल तीर्थ वंदूँ कर जोड़ ,
जिनवर नामे मंगल कोड़ ।
पहले स्वर्गे लाख बत्रीश ,
जिनवर चैत्य नमूँ निशदिश ॥ १ ॥

बीजे लाख अट्ठावीश कह्यां ,
त्रीजे बार लाख सदह्यां ।
चौथे स्वर्गे अड़ लख धार ,
पाँचमे वंदूँ लाख ज चार ॥ २ ॥

छट्ठे स्वर्गे सहस पचास ,
सातमे चालिस सहस प्रासाद ।
आठमे स्वर्गे छह हजार ,
नव-दशमे वंदूँ शत चार ॥ ३ ॥

अग्यार-बारमे त्रणशें सार ,
नव ग्रैवेयके त्रणशें अढ़ार ।
पाँच अनुत्तर सर्वे मली ,
लाख चौराशी अधिकां वली ॥ ४ ॥

सहस्र सत्ताणुं त्रैवीस सार ,
जिनवर भवनतणो अधिकार ।

लांबा सौ जोजन विस्तार ,
पचास ऊँचा बोहोतेर धार ॥ ५ ॥

एक सौ एंशी बिंब प्रमाण ,
सभा सहित एक चैत्ये जाण ।

सौ कोड़ बावन कोड़ संभाल ,
लाख चौराणुं सहस्र चौआल ॥ ६ ॥

सातशे ऊपर साठ विशाल ,
सवि बिंब प्रणमूँ त्रण काल ।

सात कोड़ने बोहोतेर लाख ,
भवनपति मां देवल भाख ॥ ७ ॥

एक सौ एंशी बिंब प्रमाण ,
एक-एक चैत्ये संख्या जाण ।

तेरशे कोड़ नेव्याशी कोड़ ,
साठ लाख वंदूँ कर जोड़ ॥ ८ ॥

बत्रीशे ने ओगणसाठ ,
तिछ्छालोकमां चैत्यनो पाठ ।

त्रण लाख एकाणुं हजार ,
त्रणशे वीश ते बिंब जुहार ॥ ९ ॥

व्यंतर-ज्योतिषिमां वली जेह ,
शाश्वता जिन वंदूँ तेह ।
ऋषभ चन्द्रानन वारिषेण ,
वर्द्धमान नामे गुणसेण ॥ १० ॥

समेतशिखर वंदूँ जिन वीश ,
अष्टापद वंदूँ चौवीश ।
विमलाचलने गढ़ गिरनार ,
आबू ऊपर जिनवर जुहार ॥ ११ ॥

शंखेश्वर केशरियो सार ,
तारंगे श्रीअजित जुहार ।
अन्तरिक्ष वरकाणो पास ,
जीरावलो ने थम्भण पास ॥ १२ ॥

ग्राम नगर पुर पाटण जेह ,
जिनवर चैत्य नमूँ गुण गेह ।
विहरमान वंदूँ जिन वीश ,
सिद्ध अनन्त नमूँ निशदिश ॥ १३ ॥

अढ़ी द्वीपमां जे अणगार ,
अढ़ार सहस सीलांगना धार ।
पंच महाव्रत समिति सार ,
पाले पलावे पंचाचार ॥ १४ ॥

बाह्य अभ्यन्तर तप उजमाल ,
 ते मुनि वंदूँ गुणमणिमाल ।
 नित-नित उठी कीर्त्ति करूँ ,
 जीव कहे भवसायर तरूँ ॥ १५ ॥

भावार्थ—यह सूत्र भाषा में है और स्पष्ट भी है इसलिये इसका भावार्थ कहते हैं—रात्रिक प्रतिक्रमण करने वाला हाथ जोड़ कर तीर्थवन्दना करता है । पहले वह शाश्वत जिनबिम्बों की और पीछे वर्त्तमान के कुछ तीर्थों, विहरमान और सिद्ध तथा साधु को वन्दन करता है ।

ऊर्ध्वलोक में बारह देवलोक, नव ग्रैवेयक और पाँच अनुत्तर विमान में ८४६७०२३ जिनभवन हैं । केवल बारह देवलोक तक में ८४६६७०० जिनभवन हैं । प्रत्येक देवलोक में जिनभवनों की संख्या गाथा में स्पष्ट है । बारह देवलोक के प्रत्येक जिनचैत्य में एक सौ अस्सी-एक सौ अस्सी जिनबिम्ब हैं । नव ग्रैवेयक और पाँच अनुत्तर विमान के ३२३ में से प्रत्येक जिनचैत्य में एक सौ बीस-एक सौ बीस जिनबिम्ब हैं । ऊर्ध्वलोक के जिनबिम्ब सब मिलाकर १५२६४४७६० होते हैं ।

अधोलोक में भवनपति के निवास - स्थान में ७,७२००००० जिनमन्दिर हैं। प्रत्येक जिनमन्दिर में एक सौ अस्सी जिनबिम्ब हैं। सब मिलाकर जिनमूर्ति-प्रतिमाएँ १३८९६०००००० लाख होती हैं। तिरछे-लोक में-मनुष्य लोक में ३२५९ शाश्वत जिनमन्दिर हैं। इन चैत्यों में सब मिलाकर ३९१३२० जिनबिम्ब हैं। शाश्वत चैत्य की लम्बाई १०० योजन, चौड़ाई ५० योजन और ऊँचाई ७२ योजन है।

इसके सिवाय व्यन्तर और ज्योतिष में असंख्य चैत्य और मूर्ति-प्रतिमाएँ हैं। शाश्वत जिनबिम्बों के नाम ऋषभ, चन्द्रानन, वारिषेण और वर्द्धमान^१ हैं।

-
१. प्रत्येक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल में भरत, ऐरवत तथा महाविदेह—सब क्षेत्रों के तीर्थकरों में 'ऋषभ' आदि चार नाम वाले तीर्थङ्कर भगवन्त अवश्य होते हैं। इस कारण ये नाम प्रवाह रूप से शाश्वत हैं।



॥ जिनमूर्ति वन्दन-पूजनादि समर्थक श्लोकादि ॥

• • •

पाताले यानि बिम्बानि,
यानि बिम्बानि भूतले ।
स्वर्गोऽपि यानि बिम्बानि,
तानि वन्दे निरन्तरम् ॥ १ ॥

अर्थ—पाताललोक में रहे हुए, भूतल पर रहे हुए तथा स्वर्ग-देवलोक में रहे हुए सभी जिनबिम्बों को मैं निरन्तर वन्दन करता हूँ ॥ १ ॥

जिने भक्तिजिने भक्ति—
जिने भक्तिदिने दिने ।
सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु,
सदा मेऽस्तु भवे भवे ॥ २ ॥

अर्थ—श्री जिनेश्वर देवों के प्रति भवोभव में सर्वदा के लिए नित्य प्रति मुझे भक्ति प्राप्त होवे ॥ २ ॥

एन्द्रश्रेणिनता प्रतापभवनं भव्याङ्गिनेत्रामृतं,
सिद्धान्तोपनिषद्विचारचतुरैः प्रीत्या प्रमाणीकृता ।
मूर्ति स्फूर्तिमती सदा विजयते जैनेश्वरीन् विस्फुर-
मोहोन्मादघनप्रमादमदिरामत्तैरनालोकिता ॥ ३ ॥

मूर्ति की सिद्धि एवं मूर्तिपूजा की प्राचीनता—२२४

भावार्थ—इन्द्रों की श्रेणी द्वारा नमस्कृत, प्रताप के गृहरूप, भव्य प्राणियों के नेत्रों को अमृत रूप, सिद्धान्त के रहस्य का विचार करने में चतुर पुरुषों द्वारा प्रीति से प्रमाणभूत की हुई और स्फुरायमान ऐसी श्री जिनेश्वर भगवन्त की 'मूर्ति-प्रतिमा' सदा विजय प्राप्त करती है, कि जो मूर्ति-प्रतिमा विविध परिणाम वाले मोह के उन्माद और प्रमाद रूपी मदिरा से उन्मत्त बने हुए ऐसे कुमति-पुरुषों की दृष्टि में अर्थात् देखने में नहीं आती है ॥ ३ ॥

**नामादित्रयमेव भावभगवत्तादप्यधीकारणं,
शास्त्रात् स्वानुभवाच्च शुद्धहृदयै रिष्टं च दृष्टं मुहुः ।
तेनार्हतप्रतिमामनादृतवतां भावं पुरस्कृता-
मन्धानामिव दर्पणे निजमुखालोकार्थिनां का मतिः॥४॥**

भावार्थ—नामादि तीनों निक्षेप प्रभु के तद्रूपपने की बुद्धि के कारण हैं तथा उनको शुद्ध हृदय वाले ऐसे गीतार्थ महापुरुषों ने शास्त्र से और अपने अनुभव से स्वीकार किया है, एवं पुनःपुनः उनका अनुभव किया है । इससे अरिहन्त परमात्मा की मूर्ति-प्रतिमा का अनादर करके मात्र भाव अरिहन्त को जो मानने वाले हैं, उनकी बुद्धि दर्पण में मुख देखने वाले अन्ध पुरुषों की भाँति कुत्सित एवं दोषयुक्त है ॥ ४ ॥

स्वान्तं ध्वान्तमयं मुखं विषमयं दृग् धूमधारामयी ,
 तेषां यैर्न नता स्तुता न भगवन् मूर्त्तिर्न वा प्रेक्षिता ।
 देवैश्चारणपुङ्गवैः सहृदयैरानन्दितैर्वन्दिता ,
 ये त्वेनां समुपासते कृतधियस्तेषां पवित्रं जनुः ॥ ५ ॥

भावार्थ—जिन्होंने प्रभु की मूर्ति-प्रतिमा को नमस्कार नहीं किया, उनका अन्तःकरण अन्धकारमय है, जिन्होंने उनकी स्तुति नहीं की, उनका मुख विषमय है तथा जिन्होंने उनका दर्शन नहीं किया, उनकी दृष्टि धुँ से व्याप्त है । देवों द्वारा, चारण मुनि और तत्त्ववेत्ताओं द्वारा आनन्द से वन्दना की हुई इस मूर्ति-प्रतिमा की जो उपासना करते हैं, उनकी बुद्धि कृतार्थ है । इतना ही नहीं किन्तु उनका जन्म भी पवित्र है ॥ ५ ॥

उत्फुल्लामिव मालतीं मधुकरो रेवामिवेभः प्रियां ,
 माकन्दद्रुममञ्जरीमिव पिकः सौन्दर्यभाजं मघौ ।
 नन्दचन्दनचारुनन्दनवनीभूमिव द्योः पति-
 स्तीर्थेशप्रतिमां न हि क्षणमपि स्वान्ताद्धिमुञ्चाम्यहम् ॥६॥

भावार्थ—जैसे भ्रमर प्रफुल्लित मालती को नहीं छोड़ता है, हाथी मनोहर रेवा नदी को नहीं छोड़ता है, कोयल वसन्त ऋतु में उत्तम आम्रतरु की डाली को

नहीं छोड़ती है तथा इन्द्र चन्दन वृक्षों से सुन्दर ऐसी नन्दनवन की भूमि को नहीं छोड़ता है; वैसे ही मैं प्रभु की मूर्ति-प्रतिमा को अपने अन्तःकरण-हृदय से क्षण भर भी हट नहीं करता हूँ ॥ ६ ॥

मोहोद्दामदवानलप्रशमने पायोदवृष्टिः शम-
 स्रोतानिर्भरिणी समीहितविधौ कल्पद्रुवल्लिः सताम् ।
 संसारप्रबलान्धकारमथने मार्तण्डचण्डद्युति-
 जैनीमूर्तिरूपास्यतां शिवसुखे भव्याः पिपासास्ति चेत् ॥७॥

भावार्थ—हे भव्यजनी ! जो तुम्हें मोक्ष का सुख प्राप्त करने की अभिलाषा हो तो तुम श्री जिनेश्वरदेव की मूर्ति-प्रतिमा की उपासना करो । जो जिनमूर्ति मोह रूपी दवानल को शान्त करने में मेघवृष्टि के समान है, सत्पुरुषों को वाञ्छित देने में कल्पवृक्ष की लता के तुल्य है और संसार रूपी प्रगाढ़ अन्धकार का विनाश करने में मार्तण्ड यानी सूर्य की तीव्र प्रभा रूप है ॥ ७ ॥

दर्शं दर्शमवापमव्ययमुदं विद्योत्तमाना लसद्-
 विश्वासं प्रतिमामकेन रहित ! स्वां ते सदानन्द ! याम् !
 सा धत्ते स्वरसप्रसृत्वरगुणस्थानोचितामानमद्-
 विश्वा सम्प्रति मामके नरहित ! स्वान्ते सदानं दयाम् ॥८॥

भावार्थ—हे समस्त दुःख-रहित प्रभो ! हे नित्य आनन्दमय नाथ ! आपकी मूर्ति-प्रतिमा को देखकर मैं अपने अन्तःकरण में विश्वास रखकर अव्यय एवं अविनाशी आनन्द को प्राप्त हुआ हूँ । हे नर-हितकारी प्रभो ! आपकी यह मूर्ति अभयदान सहित एवं उपाधि रहित वृद्धिगत गुणस्थानक के योग्य दया का पोषण करती है ॥ ८ ॥

त्वद् बिम्बे विधृते हृदि स्फुरति न प्रागेव रूपान्तरं,
 त्वद्रूपे तु ततः स्मृते भुवि भवेन्नो रूपमात्रप्रथा ।
 तस्मात् त्वन्मदभेदबुद्ध्युदयतो नो युष्मदस्मत्पदो-
 ल्लेखः किञ्चिदगोचरं तुलसति ज्योतिः परं चिन्मयम् ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे प्रभो ! आपके बिम्ब को हमारे हृदय में धारण करने के बाद अन्य कोई रूप हृदय में स्फुरायमान नहीं होता है और आपके रूप का स्मरण होते ही पृथ्वी पर दूसरे किसी रूप की प्रसिद्धि भी नहीं होती है । इसके लिए, 'तू वही मैं' इस प्रकार की अभेद बुद्धि के उदय से 'युष्मद् और अस्मद्' पद का उल्लेख भी नहीं होता और कोई अगोचर परम चैतन्यमय ज्योति अन्तर में स्फुरायमान होती है ॥ ९ ॥

किं ब्रह्म कर्मयो किमुत्सवमयो श्रेयोमयो किं किमु,
 ज्ञानानन्दमयो किमुन्नतिमयो किं सर्वशोभामयो ।
 इत्थं किं किमिति प्रकल्पनपरैस्त्वन्मूर्तिरुद्धोक्षिता,
 किं सर्वातिगमेव दर्शयति सद्ध्यानप्रसादान् महः ॥१०॥

भावार्थ—क्या यह मूर्ति-प्रतिमा ब्रह्ममय है ? क्या यह मूर्ति-प्रतिमा उत्सवमय है ? क्या यह मूर्ति-प्रतिमा कल्याणमय है ? क्या यह मूर्ति-प्रतिमा उन्नतिमय है ? या क्या यह मूर्ति-प्रतिमा शोभामय है ? इस प्रकार की कल्पना करते हुए कवियों के द्वारा देखी हुई आपकी मूर्ति-प्रतिमा उत्तम ध्यान के प्रसाद से सबका उल्लंघन करने वाली ज्ञान रूपी प्रभा-तेज को बताती है ॥ १० ॥

त्वद्रूपं परिवर्त्ततां हृदि मम ज्योतिःस्वरूपं प्रभो !
 तावद् यावदरूपमुत्तमपदं निष्पापमाविर्भवेत् ।
 यत्रानन्दघने सुरासुरसुखं संपीडितं सर्वतो,
 भागेऽनन्तमेऽपि नैति घटनां कालत्रयोसम्भवि ॥११॥

भावार्थ—हे प्रभो ! पापविनाशक, उत्तम पदस्वरूप और रूपरहित ऐसा जो अप्रतिपाती ध्यान जहाँ तक प्रकट नहीं होगा वहाँ तक मेरे अन्तःकरण में आपका रूप अनेक प्रकार से ज्ञेयाकार रूप से परिणाम को प्राप्त हो ।

आनन्दघन में त्रिकाल उत्पन्न होने वाले सुख की तुलना में समस्त ओर से एकत्र सुर-असुर का सुख अनन्तवें भाग भी नहीं है ॥ ११ ॥

स्वान्तं शुष्यति दह्यते च नयनं भस्मीभवत्याननं ,
 दृष्ट्वा तत् प्रतिमामपीह कुधियामित्याप्तलुप्तात्मनाम् ।
 अस्माकं त्वनिमेषविस्मितदृशां रागादिमां पश्यतां ,
 सान्द्रानन्दमुधानिमज्जनसुखं व्यक्तीभवत्यन्वहम् ॥१२॥

भावार्थ—जिनकी आत्मा खण्डित हुई है ऐसे दुर्बुद्धियों का हृदय इस मूर्त्ति को देखकर सूख जाता है, नेत्र जल उठते हैं तथा मुख भस्मीभूत हो जाता है; जबकि राग-प्रेम से इस मूर्त्ति-प्रतिमा को अनिमेष दृष्टि से देखते हुए हमको तो आनन्दघन रूपी अमृत में डूबने का सुख सर्वदा प्रगट होता है ॥ १२ ॥

मन्दारद्रुमचारुपुष्पनिकरैर्वृन्दारकैरर्चितां ,
 सद्वृन्दाभिनतस्य निर्वृतिलताकन्दायमानस्य ते ।
 निस्यन्दात् रूपनामृतस्य जगतीं पान्तीममन्दाभया-
 वस्कन्दात् प्रतिमां जिनेन्द्र ! परमानन्दाय वन्दामहे ॥१३॥

भावार्थ—हे जिनेन्द्र ! सत्पुरुषों के द्वारा नमस्कृत तथा मुक्ति रूपी लता के कन्द सदृश ऐसी आपकी

मूर्ति-प्रतिमा, जिसकी देवताओं ने मन्दारवृक्ष के पुष्पों से पूजा की है अर्थात् पूजी है और जो उग्र रोग-व्याधि को शोषण करने वाले ऐसे स्नात्रजल रूपी सुधा-अमृत के भरने से सारे विश्व की रक्षा करती है; ऐसी आपकी मूर्ति-प्रतिमा को हम परमानन्द अर्थात् मोक्ष प्राप्त करने के लिये वन्दन-नमस्कार करते हैं ॥ १३ ॥

[ये तीन से तेरह तक के श्लोक न्यायविशारद-न्यायाचार्य-महामहोपाध्याय श्रीमद् यशोविजयजी महाराज विरचित 'श्रीप्रतिमाशतक' नाम के ग्रन्थ में से उद्धृत किए गए हैं ।]

पापं लुम्पति दुर्गतिं दलयति व्यापादयत्यापदं ,
 पुण्यं संचिनुते श्रियं वितनुते पुष्पाति नीरोगताम् ।
 सौभाग्यं विदधाति पल्लवयति प्रीतिं प्रसूते यशः ,
 स्वर्गं यच्छति निर्वृतिं च रचयत्यर्चा प्रभोर्भावतः ॥ १४ ॥

भावार्थ—प्रभु की (मूर्ति) पूजा भाव से पाप को काट गिराती है, दुर्गति को दलती अर्थात् विनाश करती है, आपत्ति को मार भगाती है, पुण्य का संचय-संग्रह करती है, लक्ष्मी को बढ़ाती है, नीरोगता को पुष्ट करती है, सौभाग्य को उत्पन्न करती है, स्वर्ग देती है और निर्वृति यानी मोक्ष की रचना करती है ॥ १४ ॥

नेत्रानन्दकरी भवोदधितरी श्रेयस्तरुर्मञ्जरी ,
 श्रीमद्धर्ममहानरेन्द्रनगरी व्यापल्लताधूमरी ।
 हर्षोत्कर्षशुभप्रभावलहरी रागद्विषां जित्वरी ,
 मूर्ति श्रीजिनपुङ्गवस्य भवतु श्रेयस्करी देहिनाम् ॥ १५ ॥

भावार्थ—श्री जिनेश्वरदेव की मूर्ति भक्तजनों के नेत्र-नयनों को आनन्द पहुँचाने वाली है, संसार रूपी सिन्धु-सागर को पार करने के लिए नौका-नाव के समान है, श्रेय-कल्याण रूपी वृक्ष की मंजरी जैसी है, धर्म रूप महानरेन्द्र की नगरी सदृश है, अनेक प्रकार की आपत्ति रूपी बेलड़ी-लताओं का विध्वंस-विनाश करने के लिये धूमरी-धूमस के सदृश है, हर्ष-आनन्द के उत्कर्ष के शुभ प्रभाव का विस्तार करने में लहरों का काम करने वाली है और राग तथा द्वेष रूपी शत्रुओं पर विजय प्राप्त कराने वाली है ।

ऐसी श्री जिनेश्वरदेव की मूर्ति-प्रतिमा विश्व के जीवों का कल्याण करने वाली बने !

किं पीयूषमयी ऋपारसमयी कर्पूरधारीमयी ,
 किं वाऽऽनन्दमयी महोदयमयी सद्ध्यानलीलामयी ।
 तत्त्वज्ञानमयी सुदर्शनमयी निस्तन्द्र-चन्द्रप्रभा ,
 सारस्कारमयी पुनातु सततं मूर्तिस्त्वदीया सताम् ॥१७॥

भावार्थ—हे प्रभो ! आपकी मूर्ति क्या अमृतमय है !
 क्या कृपा-दया रसमयी है ! क्या आनन्दमयी है !
 क्या महोदयमयी है ! क्या उत्तम ध्यान की लीलामयी
 है ! क्या तत्त्वज्ञानीमयी है ! क्या दर्शनमयी है !
 या क्या उज्ज्वल चन्द्रप्रभा के उद्योत रूप है ! इस
 प्रकार को आपकी मूर्ति-प्रतिमा सज्जनों को सदा पवित्र
 करती रहे ॥ १७ ॥

धन्या दृष्टिरियं यथा विमलया दृष्टो भवान् प्रत्यहं ,
 धन्याऽसौ रसना यथा स्तुतिपथं नीतो जगद्वत्सलः ।
 धन्यं कर्णयुगं वचोऽमृतरसो पीतो मुदा येन ते ,
 धन्यं हृत् सततं च येन विशदस्त्वन्नाममन्त्रो धृतः ॥ १८ ॥

भावार्थ—उस दृष्टि को धन्य है, जिस निर्मल दृष्टि
 ने हमेशा आपके दर्शन किये । वह रसना (जीभ) भी
 धन्य है, जिसने विश्ववात्सल्य परमात्मा का स्तवन
 किया है । वह कर्ण (कान) भी धन्य है, जिसने
 आपके वचनाऽमृत का रस आनन्द से ग्रहण किया ।
 उस हृदय को भी धन्य है, जिसने आपके नाम रूपी
 निर्मल मन्त्र को सदा धारण किया है ॥ १८ ॥

चित्रं चेतसि वर्ततेऽद्भुतमिदं व्यापल्लताहारिणी ,
 मूर्ति स्फूर्तिमतिमतीव विमलां नित्यं मनोहारिणी ।
 विख्यातां स्नपयन्त एव मनुजाः शुद्धोदकेन स्वयं ,
 संख्यातीततमो मलायन यतो नैर्मल्यमाप्तिभ्राति ॥१९॥

भावार्थ—मेरे अन्तःकरण-चित्त में यह आश्चर्य होता है कि विपत्ति रूपी लताओं को नष्ट करने वाली, सर्वदा मनोहारिणी और निर्मल स्फूर्तिदायक जिनेश्वर परमात्मा की मूर्ति को शुद्ध जल द्वारा स्नान कराने वाले मनुष्य स्वयं अपने असंख्याता अज्ञान रूपी मल को दूर करके निर्मलता को प्राप्त करते हैं। अर्थात् जगत् में हम देखते हैं कि जो स्नान करता है, वह मैलरहित होता है। इसके अलावा परमात्मा की मूर्ति-प्रतिमा को स्नान कराने वाले मैलरहित होते हैं। यह महद् आश्चर्य जान पड़ता है ॥ १६ ॥



उपसंहार

इस संसार में भव्य जीवों का अन्तिम ध्येय जन्म और मरण के महान् दुःखों को सर्वथा विनष्ट कर, मोक्ष का शाश्वत सुख प्राप्त करने का ही होता है। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए अन्यान्य अनेक साधनों में देवाधिदेव श्री वीतराग विभु की निर्विकारो, प्रशान्त मुद्रा एवं ध्यानावस्थित अतिभव्य मनोहर मूर्ति-प्रतिमा एक मुख्य सर्वोत्कृष्ट-सर्वोत्तम साधन है। इस साधन द्वारा भूतकाल में भव्यजीवों ने अपना आत्मश्रेय किया है, वर्तमानकाल में करते हैं और भविष्यत्काल में भी अवश्य ही करेंगे।

भूतकाल में समस्त संसार मूर्तिपूजक था और आज भी किसी-न-किसी प्रकार से मूर्ति का सादर बहुमान-पूर्वक अनुपम सत्कार सारे विश्व में हो रहा है। भविष्यत्काल में भी जहाँ तक जगत् का अस्तित्व है वहाँ तक मूर्ति की चिरस्थायी सत्ता सदा काल रहने वाली है।

इस पंचम आरे में और हुंडावसर्पिणी काल में भव्यात्माओं को सर्वज्ञ विभु श्री जिनेश्वर भगवन्त-भाषित जैनशासन-जैनधर्म में जिनागम-शास्त्र और जिनमूर्ति ये दोनों ही परम आलम्बन एवं सर्वोत्तम आधारभूत हैं ।

प्रस्तुत 'मूर्ति की सिद्धि एवं मूर्तिपूजा की प्राचीनता' का माहात्म्य प्रदर्शित करने वाला यह आलेख मुख्य जिनागम का तथा मुद्रित 'मूर्तिपूजा का प्राचीन इतिहास' 'प्रतिमा पूजन' एवं 'मूर्तिपूजा' आदि पुस्तकों का आलम्बन लेकर और चिन्तन-मननपूर्वक लिखा है ।

इस लेख में मेरे मतिमन्दतादिक कारणों से श्री जिनाज्ञा के विरुद्ध जाने या अनजाने कुछ भी मेरे द्वारा लिखा गया हो तो उसके लिए मन-वचन-काया से मैं 'मिच्छा मि दुक्कडं' देता हुआ विराम पाता हूँ ।

卐 'जैनं जयति शासनम्' 卐



* लेखक *

शासनसम्राट् - सूरिचक्रचक्रवर्ति - तपोगच्छाधिपति-
महाप्रभावशालि-भारतीयभव्यविभूति - अखण्डब्रह्मतेजोमूर्ति-
श्लोकदम्बगिरिप्रमुखानेकप्राचीनतीर्थोद्धारक - श्रीवलभीपुर-
भावनगरादिनरेश - प्रतिबोधक - परमपूज्याचार्यमहाराजा-
धिराज श्रीमद् विजयनेमिसूरीश्वरजी म. सा. के दिव्य-
पट्टालंकार - साहित्यसम्राट् - व्याकरणवाचस्पति - शास्त्र-
विशारद - कविरत्न - साधिक - सप्तलक्षश्लोकप्रमाणनूतन-
संस्कृतसाहित्यसर्जक - बालब्रह्मचारी-परमपूज्याचार्य - प्रवर
श्रीमद् विजयलावण्यसूरीश्वरजी म. सा. के प्रधान
पट्टधर-धर्मप्रभावक - शास्त्रविशारद - व्याकरणरत्न-कवि-
दिवाकर - देशनादक्ष - बालब्रह्मचारी - परमपूज्याचार्यवर्य
श्रीमद् विजयदक्षसूरीश्वरजी म. सा. के सुप्रसिद्ध पट्टधर-
जैनधर्मदिवाकर-शासनरत्न - तीर्थप्रभावक-राजस्थानदीपक-
मरुधरदेशोद्धारक-शास्त्रविशारद - साहित्यरत्न-कविभूषण-
बालब्रह्मचारी-आचार्य श्रीमद् विजयसुशीलसूरि ।

श्रीवीरनिर्वाण सं. २५६४

-स्थल-

विक्रम सं. २०४४

श्री जैन क्रियाभवन

नेमि सं. ३६

जोधपुर, राजस्थान

भादरवा सुद १२, शुक्रवार, दिनांक-२३-९-१९८८

॥ शुभं भवतु श्रीसंघस्य ॥

*** मूर्तिपूजा विषयक प्रश्नोत्तरी ***

विश्व में ऐसी कोई जाति, ऐसा कोई समाज, ऐसा कोई कबीला आदि नहीं रहा है कि कहीं किसी ने कोई मूर्ति नहीं बनाई हो। ग्रनादिकालीन यह विश्व जब से चला आ रहा है तब से मूर्ति भी चल रही है। प्राणी-मात्र की, मनुष्य की बाह्य या आन्तरिक वस्तु की आवश्यकता मूर्ति से ही पूर्ण होती है।

मूर्ति ही चंचल-चपल मन को चित्त-प्रसन्नता की ओर सम्मुख करने हेतु प्रबल समर्थ आलम्बन है। चैतन्यमय आत्मा का मन के साथ मूर्ति का सम्बन्ध अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। जब भक्त भगवान की भक्ति में तल्लीन हो जाता है, तब वह अनुपम आनन्द अपने जीवन में उपलब्ध करता है। अन्त में भक्त भी भगवान बनने के भगीरथ प्रयत्न में सफल हो जाता है।

पूर्व में 'मूर्ति की सिद्धि एवं मूर्तिपूजा की प्राचीनता'

का संक्षिप्त वर्णन शास्त्रीय पद्धति और इतिहास के आधार पर किया गया। अब यहाँ मूर्त्तिपूजा-विषयक संक्षिप्त प्रश्नोत्तरी का मात्र दिग्दर्शन करवाया जाता है—

[१]

प्रश्न—जिनेश्वर भगवान की मूर्त्ति-प्रतिमा कितने निक्षेपों से पूजित होती है ?

उत्तर—जिनेश्वर भगवान की मूर्त्ति-प्रतिमा कम-से-कम चार निक्षेपों से अवश्य पूजित होती है।

[२]

प्रश्न—वे चार निक्षेप कौन-कौनसे हैं ? उनका स्वरूप क्या है ?

उत्तर—नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव इन चार निक्षेपों के नाम आगमशास्त्र में आते हैं। वे नामनिक्षेप, स्थापनानिक्षेप, द्रव्यनिक्षेप और भावनिक्षेप से कहे जाते हैं।

(१) वस्तु-पदार्थ के आकार और गुण से रहित जो नाम, वह 'नामनिक्षेप' कहा जाता है। जैसे—जिनेश्वर

देवों के श्री ऋषभादि चौबीसों भगवन्तों के नाम, वे 'नाम जिन' कहलाते हैं ।

(२) वस्तु-पदार्थ के नाम तथा आकारयुक्त किन्तु गुणरहित जो होता है, वह 'स्थापना निक्षेप' कहा जाता है । जैसे—उन श्री ऋषभादि चौबीसों जिनेश्वर भगवन्तों की मूर्ति-प्रतिमा, 'स्थापना जिन' कहलाती हैं ।

(३) वस्तु-पदार्थ के नाम और आकार तथा अतीत (भूत) और अनागत (भविष्य) गुण युक्त किन्तु वर्तमान गुण से जो रहित हो, वह 'द्रव्य निक्षेप' कहा जाता है । जैसे—जिसने जिननामकर्म बाँधा हो ऐसे श्री ऋषभादि जिनेश्वरदेवों के जीव वे 'द्रव्य जिन' कहलाते हैं ।

(४) वस्तु-पदार्थ के नाम, आकार और वर्तमान गुण युक्त जो हो, वह 'भाव निक्षेप' कहा जाता है । जैसे—दिव्य समवसरण में धर्मोपदेश यानी धर्मदेशना देने के लिए विराजमान साक्षात् श्री ऋषभादि चौबीसों जिनेश्वर देव, वे 'भाव जिन' कहलाते हैं ।

इस तरह श्री ऋषभादि चौबीसों तीर्थंकर भगवन्तों के नामादि चारों निक्षेप जानना ।

इन नामादि चारों निक्षेपों से प्रत्येक जिनेश्वरदेव की मूर्ति-प्रतिमा प्रतिदिन पूजित ही है ।

[३]

प्रश्न—स्थाप्य की स्थापना किये बिना क्या किसी प्रकार की धर्मक्रिया नहीं हो सकती है ?

उत्तर—हाँ, स्थाप्य की स्थापना किये बिना किसी प्रकार की धर्मक्रिया नहीं हो सकती है । इसलिए स्थाप्य की स्थापना अवश्य ही करनी पड़ती है ।

जैनधर्म में सभी धर्मक्रियाएँ स्थापना के सम्मुख ही करनी चाहिए, ऐसा विधान है । इसके लिए आगम-शास्त्र में अनेक सूत्रों के प्रमाण मिलते हैं । जैसे—साक्षात् देव के अभाव में देव की मूर्ति और गुरु के अभाव में गुरु की स्थापना चाहिए । इसके समर्थन में पूर्वधर पूज्य आचार्यदेव श्री जिनभद्रगणि क्षमाश्रमणजी महाराज सा. ने अपने 'श्री विशेषावश्यक महाभाष्य' नामक ग्रन्थ में गुरु के अभाव में गुरु की स्थापना करने के विषय में कहा है कि—

गुरुविरहंमि ठवणा गुरुवएसोवदंसणत्थं च ।

जिणविरहंमि जिणदिब सेवणामंतणं सहलं ॥१॥

❁ श्री ठाणाङ्गसूत्र में भी दस प्रकार की स्थापना करने का उल्लेख है । उसका स्थापन कर 'पंचिदिय' सूत्र द्वारा उसमें आचार्य गुरु महाराज के गुणों का आरोपण करने के पश्चाद् उसके आगे धर्मक्रिया करना योग्य है ।

❁ श्री समवायाङ्गसूत्र में बारहवें समवाय में भी गुरु-वन्दन के पच्चीस बोल पूर्ण करने का आदेश नीचे प्रमाण है—

दुवालसावत्ते कित्तिकम्मे पन्नत्ते । तं जहा—

दुओणयं जहाजायं कित्तिकम्मं बारसावयं ।

चउसिरं तिगुत्तं, दुप्पवेसं एगनिक्खमणं ॥ १ ॥

इस सूत्रपाठ से सिद्ध होता है कि उसमें गुरुमहाराज की हृद में दो बार प्रवेश करना तथा एक बार निकलना यह कथन साक्षात् गुरु के अभाव में गुरु की स्थापना बिना किस तरह सम्भव हो सकता है ? इसलिए जैसे साक्षात् जिन के अभाव में जिनमूर्ति की स्थापना करके धर्मक्रिया की जाती है, वैसे साक्षात् गुरु के अभाव में भी गुरु की स्थापना करके धर्मक्रिया की जाती है । इसमें सन्देह नहीं ।

प्रश्न—इस अवसर्पिणी में प्रथम तीर्थंकर भगवन्त श्री ऋषभदेव-आदिनाथ हुए । उनके समय में श्री अजितनाथ आदि तेईस तीर्थंकरों के जीव संसार में चौरासी लाख जीवायोनी में परिभ्रमण कर रहे थे, तीर्थंकर रूप में नहीं थे तो भी उस समय उन सभी को वन्दन कैसे हो सकता है ?

उत्तर—प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव भगवन्त ने जिन जीवों को मोक्षगामी बताया है, वे सभी वन्दनीय एवं पूजनीय अवश्य ही हैं ।

कारण कि श्री ऋषभदेव स्वामी के समय में श्री अजितनाथ आदि तेईस तीर्थंकरों के वन्दन का विषय द्रव्यनिक्षेप के आधीन है । द्रव्य के बिना न तो भाव हो सकता है, न तो स्थापना हो सकती है, या नाम कुछ भी नहीं हो सकता है ।

परमात्मा के 'विश्वस्तता' रूपी प्रबल कारण से ही प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव के समय में भी बाद में होने वाले शेष श्री अजितनाथादि तेईस तीर्थंकर भी वन्दनीय थे । इसके सम्बन्ध में और समर्थन में श्री आवश्यकसूत्र के मूल पाठ में भी कहा है कि—

चत्वारि-अट्ठ-दस-दोय, वंदिआ जिणवरा चउब्बोसं ।
 परमट्ठ-निट्ठि अट्ठा, सिद्धा सिद्धि मम दिसंतु ॥
 [सिद्धस्तव, गाथा-५]

अर्थ—चार, आठ, दस और दो इस प्रकार वन्दित चौबीस तीर्थंकर-जिनेश्वर तथा जिन्होंने परमार्थ को सिद्ध किया है, ऐसे सिद्ध भगवन्त मुझे सिद्धपद (मोक्षपद) प्रदान करें। इस विषय में निर्युक्तिकार महर्षि श्रुतकेवली पूज्य आचार्य भगवान श्री भद्रबाहु स्वामी महाराज ने कहा है कि—

प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव स्वामी के प्रथम पुत्र चक्रवर्ती श्री भरत महाराजा ने श्री अष्टापद पर्वत पर जिनमन्दिर बनवाकर, उसमें श्री ऋषभदेव भगवान से लगाकर यावत् अन्तिम श्री महावीर भगवान पर्यन्त चौबीसों तीर्थंकर परमात्माओं की मूर्ति-प्रतिमाएँ ठोक वैसे ही आकार की स्थापित की हैं।

अर्थात्—चारों दिशाओं में क्रम से चार, आठ, दस और दो इस तरह चौबीस तीर्थंकरों के भव्य बिम्ब चक्रवर्ती श्री भरत महाराजा ने श्री अष्टापद पर्वत पर स्थापित किये हैं।

इससे यह सिद्ध होता है कि श्री ऋषभदेव भगवान् के समय में श्री अजितनाथादि तेईस तीर्थकरों के होने से पूर्व भी उनको पूजा तथा मूर्ति एवं मन्दिर द्वारा उनकी सेवा-भक्ति आदि करने की प्रथा सनातन काल से चली आ रही है ।

इसका समर्थन विद्वान्-महान् ज्ञानी पुरुषों ने भी सानन्द किया है । इसलिए इसमें सन्देह-संशय नहीं होना चाहिए ।

[५]

प्रश्न—भगवान् निरंजन निराकार हैं, तो उनकी उपासना, आराधक आत्मा ध्यान द्वारा कर सकता है, तो फिर मूर्तिपूजा या प्रतिमापूजन मानने का कारण क्या ?

उत्तर—इन्द्रियों से ग्राह्य वस्तु-पदार्थों का विचार मन अवश्य कर सकता है, किन्तु उनके अतिरिक्त वस्तु-पदार्थों का विचार या कल्पना भी मन को नहीं हो सकती है । कारण यह है कि मनुष्य के मन में यह शक्ति-ताकत नहीं है कि वह निराकार का ध्यान कर सके । छद्मस्थ आत्मा को जब ध्यान करने का होता है

तब उनको भी अपनी दृष्टि के सामने कोई-न-कोई वस्तु अवश्य रखनी होती है ।

ज्योतिस्वरूप भगवान को मानकर उनका ध्यान करने वाला भी उस ज्योति को किसी-न-किसी श्वेतादि रंग वाली मानकर ही उसका ध्यान कर सकता है । सिद्ध भगवन्त अपौद्गलिक हैं । इसलिए उनको सर्वज्ञ केवलज्ञानी बिना अन्य कोई नहीं जान सकते हैं ।

निराकार ऐसे सिद्ध भगवन्तों का ध्यान करने में अतिशयवन्त ज्ञानियों को छोड़कर अन्य कोई भी समर्थ नहीं हो सकता है ।

मन में मानसिक मूर्त्ति की कल्पना करने वाले को समझना चाहिए कि मानसिक मूर्त्ति अदृश्य और अस्थिर है, जबकि प्रकट मूर्त्ति दृश्य और स्थिर है, इसलिए वह ध्यानादिक के लिए विशेष ही अनुकूल है ।

जब साक्षात् तीर्थंकर भगवान-जिनेश्वरदेव दिव्य समवसरण में भी पूर्व दिशा की ओर अपना मुख कर बैठते हैं, उस वक्त शेष उत्तर-पश्चिम-दक्षिण इन तीनों दिशाओं में देवगण भगवान की तीन मूर्त्तियों की स्थापना उसी समवसरण में करते हैं । दिव्य समवसरण की

रचना में भी चित्त की एकाग्रता के लिए प्रभुमूर्ति की अति आवश्यकता सिद्ध होती है। देवाधिदेव तारक भगवान की भव्य-मनोहर मूर्ति के दर्शन से उनके अनन्त गुणों का स्मरण होता है, इतना ही नहीं किन्तु श्रद्धालु भक्तजनों को तो भगवान के प्रत्यक्ष-साक्षात्कार जैसा अत्यन्त आनन्द प्राप्त होता है तथा भगवान की मूर्ति को साक्षात् भगवान समझ कर भावयुक्त उनकी भक्ति होती है।

जब पूजक ही प्रभु की मूर्ति में पूजा योग्य गुणों को आरोपित करता है, तब उसको प्रभु की मूर्ति साक्षात् वीतराग-जिनेश्वर भगवन्त ही प्रतिभासित होने लगती है। जिस भावना से वह प्रभुमूर्ति को देखता है, उसे वह वैसा ही फल देतो है। साक्षात् भगवान के समान मूर्ति भी तारक होते हुए भी उसकी आशातना करने वाले को बुरा फल मिलता है और उसे भोगना भी पड़ता है; इसलिए प्रभु की आशातना नहीं करनी चाहिए।



मूर्ति की नहीं, बल्कि मूर्तिमान की पूजा एक परिचय

मूर्तिपूजा का इतिहास बहुत प्राचीन है। मनुष्य की धार्मिकचर्या में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। आस्था और श्रद्धा के अंग देव-प्रतिमाओं के चरणपीठ बने हुए हैं। मूर्ति में निराकार साकार हो उठता है और इसके भावपक्ष की दृष्टि में साकार निराकार की सीमाओं को छू लेता है। मूर्ति अकम्प और निश्चल होने से सिद्धावस्था की प्रतीक है। उपासक अपनी समस्त बाह्य चेष्टाओं को और शरीर की हलन-चलनात्मक स्पन्दन क्रियाओं को योगमुद्रा में आसीन होकर मूर्तिवत् अचल-अडिग कर ले और सम्मुख स्थित प्रतिमा के समान तद्गुण हो जाए, यह उसकी सफलता है।

मूर्ति में मूर्तिधर के गुण मुस्कराते हैं। वह केवल पाषाणमयी नहीं है। उसके अर्चकों पर “पाषाणपूजक” लाञ्छन लगाना अपने अकिञ्चित्कर बुद्धिवैभव का परिचय

देना है। मूर्ति में जो व्यक्त सौन्दर्य है, उसके दर्शन तो स्थूल आँखों वाले भी कर लेते हैं।

मूर्तिकार जब किसी अनगढ़ पत्थर को तराशता है, तो उसकी छैनी की प्रत्येक टंकोर उत्पद्यमान मूर्ति-विग्रही देव की प्राणवत्ता को जाग्रत करने में अपना अशेष कौशल तन्मय कर देती है। असीम धैर्य के साथ, अश्रान्त परिश्रमपूर्वक, उसके तत्क्षण में गुणाधान की प्रक्रिया कार्य करती रहती है। अवयवों के परिष्कार से, रेखाओं की भंगिमा से, अधरों की बनावट से, चितवन के कौशल से, बरौनियों की छाया में विश्रान्त नीलकमल से, नयनों की विशालता से, पीनपुष्ट भुजदण्डों से न केवल मूर्तिकार अंगसौष्ठव ही तैयार करता है, अपितु वह स्पन्दनरहित प्राणाधान ही मूर्ति में प्रतिष्ठापित कर देता है। उस मूर्ति को, विग्रह को देखने मात्र से प्राण पुलकित हो उठते हैं, चित्त की आह्लाद-शक्ति प्रबुद्ध होकर नाच उठती है; जिसको ढूँढकर नेत्र थक गये थे, उसी की मुद्रांकित प्रतिमा स्वयं साकार होकर समुपस्थित हो जाती है।

हमारा मन, जो एक भाव समुद्र है, मूर्ति उसमें पर्वतिथियों के ज्वार तरंगित कर देती है। जैसे—गुलाब के

सौन्दर्य को देखने वाला उसके मूल में लगे काँटों को नहीं देखता, कमल पुष्प का प्रणयी जैसे उसके पंकमूल का स्मरण नहीं करता, उसी प्रकार आत्मा के समस्त चैतन्य को अपनी प्रशान्तमुद्रा से आकर्षित करने वाले भगवान की प्रतिमा को देखते हुए भक्त के नेत्र उसके पाषाणत्व से ऊपर उठकर गुणधर्मावच्छिन्न लोकोत्तर व्यक्तित्व का ही दर्शन करने लगते हैं और उस समय पूजक के कण्ठ से स्तुतिछन्द गीयमान होते हैं उनमें पाषाणक सत्ता के चिह्न भी नहीं मिलते ।

भक्त के सम्मुख स्थित प्रतिमा में उसके आराध्य की झलक है, उसकी भावनाओं का आकार है । वे प्रभु अनन्त दर्शन और अनन्त ज्ञानमय हैं । देव-देवेन्द्र उनकी पदवन्दना करते हैं । उनका वीतराग विग्रह पाषाण में रति कैसे कर सकता है ? उनका मुक्त आत्मा प्रतिमा में निबद्ध कैसे कहा जा सकता है ? यह तो भक्त की भावना है, उसका उद्दाम अनुरोध है जो सिद्धालय में बिराजमान भगवान के साक्षात् दर्शन के लिए अधीर होकर प्रतिमा के माध्यम से उनकी स्तुति करता है, पूजा-प्रक्षालन करता है । उसकी भावना के समुद्र पर्यन्त विस्तीर्ण मनोराज्य को भुठलाने का साहस स्वयं

भगवान में भी नहीं है। वह प्रतिमा के सम्मुख उपस्थित होकर किस भाषा में बोलता है ? सुनने वाले के प्राण गद्गद् हो उठते हैं। नेत्रों में भावसमुद्र लहराने लगता है—

दृष्ट्वा भवन्तमनिमेषविलोकनीयं ,
 नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः ।
 पीत्वा पयः शशिकरद्युतिदुग्धसिन्धोः ,
 क्षारं जलं जलनिधेरसितुं क इच्छेत् ॥

हे भगवन् ! आपके अनिमेष विलोकनीय स्वरूप को देखकर मेरी आँखें दूसरे किसी को देखना नहीं चाहतीं। भला इन्दु की ज्योत्स्नाधारा पीने वाले को क्षारसमुद्र का जल क्या अच्छा लगेगा ? यहाँ मूर्ति-पूजक के नेत्रों में जो पार्थिव से परे दिव्य रूप नाच रहा है, उसे पाषाण-पूजा कहने का साहस किसमें है ?

पाषाण और मूर्ति में जो भेद है, उसे न जानने से ही इस प्रकार की असत् कल्पना लोग करने लगते हैं।

पाषाण को उत्कीर्ण कर उसमें इतिहास और आगम प्रामाण्य से तत्-तद्-देवता के विग्रहों की रचना की जाती है।

सिंह, वृषभ, कमल इत्यादि चिह्नांकन से तीर्थकरों के पृथक्-पृथक् नाम रूप के अस्तित्व का ज्ञापन मूर्ति में किया जाता है। यदि पाषाण को 'सुवर्ण' कहा जाए तो मूर्तियों को कटक, रुचक, कुण्डल कह सकते हैं। जैसे 'कुण्डल' स्वरूप में 'उत्पाद' अवस्था को प्राप्त हुए सुवर्ण को कोई सुवर्ण नहीं कहता 'कुण्डल' कहता है। उसी प्रकार विधि-सम्मत स्थापनाओं से निमित्त देव-प्रतिमा को पाषाण नहीं कहा जा सकता।

प्रतिमा के पूज्य आसन पर प्रतिष्ठित होने वाली मूर्ति को मन्त्रों से, प्रतिष्ठा-विधि से लक्षणानुसार बनाये गये मन्दिर में बिराजमान किया जाता है और उसमें देवत्व भावना का विन्यास किया जाता है। वह प्रतिमा श्रद्धालुओं की आस्था को केन्द्रित करती है और उसके निमित्त से मन्दिरों और चैत्यालयों में धर्म के घण्टानाद सुनाई देते हैं। मन्त्र, स्तुति-स्तोत्र, पूजा-प्रक्षाल, अर्चन-वन्दन होते हैं और विशाल जनसमुदाय की उदात्त भावनाओं को उस प्रतिमा से सम्बल मिलता है।

इस प्रकार धर्म, समाज और संस्कृति के उत्थान में मूर्तिपूजा का महत्त्व अतिरोहित है। मूर्ति में संस्कारों

की भावना देने से देवत्व की प्रतिष्ठा होती है । इसलिए मन्दिर में स्थापित प्रतिमा और बाजार में बिकते तद्रूप खिलौनों में संस्कार-अभाव से कोई साम्य नहीं । मूर्ति को पवित्र मन्दिर की ऊँची वेदी पर बिराजमान कर अपने मन-मन्दिर में स्थापित करना ही उसकी सच्ची प्रतिष्ठा है ।

यदि पापाण और मूर्ति में भेद नहीं मानोगे तो स्त्री, माता, भगिनी में भेद मानने का क्या आधार रहेगा ? क्योंकि—‘स्त्रीपर्याय से तो ये सब समान हैं’ अपेक्षा और सम्बन्धव्यवच्छेद से ही इनमें व्यावहारिक भेद किया गया है । वही आत्मानुशासित, पूज्यत्व प्रतिष्ठान मूर्ति में किया गया है । हमारे भारतीय ध्वज में और दुकानों के उसी तिरंगे कपड़े में क्या अन्तर है ? वस्त्रजाति तो दोनों में एक ही है; परन्तु लाल किले पर राष्ट्रध्वज के रूप में तिरंगा ही क्यों लहराया जाता है ? क्योंकि २१ जुलाई, ४७ को पं. जवाहरलाल नेहरू के प्रस्ताव पर एक निश्चित आकार में भगवे, श्वेत और हरे तीन रंगों में क्रमशः निष्काम त्याग, पवित्रता और सत्यता तथा प्रकृति के प्रति स्नेह को प्रेरित करने वाले प्रतीकों में राष्ट्रध्वज

का स्वरूप स्थिर किया गया, जिसके बीच में सत्य, ज्ञान और नैतिकता की ओर संकेत करने वाले 'धर्मचक्र' को स्थान दिया गया। इस प्रकार उसे वस्त्रमात्र से भिन्न प्रतीक रूप में मान्यता देकर 'राष्ट्र निशान' के रूप में मान्य किया गया।

यही इसका उत्तर है और इसी के साथ सामान्य 'पाषाण' और 'मूर्ति' के वैशिष्ट्य का उत्तर भी सम्मिलित है।

राष्ट्रध्वज जैसे राष्ट्र की स्वतन्त्रता का प्रतीक है, उसी प्रकार प्रतिमा समाज की दृढ़ आस्थाओं का प्रतीक है। मूर्ति के साथ मनुष्य की पवित्र भावनाओं का सनातन सम्बन्ध है। मूर्ति का दर्शन करने से मूर्ति में प्रतिष्ठा-प्राप्त देव का देवत्व, दर्शन करने वाले में संक्रमित होता है।

अपनी आत्मा में देवत्व की प्रतिष्ठा करना ही पूजा का उद्देश्य है। मूर्तिपूजा में यह विशेष स्मरणीय है कि मनुष्य अपने संस्कारों के उपयुक्त वातावरण को ढूंढता रहता है और वातावरण मिलने से उन भावनाओं और संस्कारों को ही बलवान करता है। वह नई-नई तस्वीरें देखने के लिए अनेक सिनेमाघरों में पैसे देकर

जाता है और अपने मन के अनुकूल उपस्थित उस 'छविअंकन' को देखता है। इससे उसके मन में स्थित चित्रानुबन्धी राग को पोषण मिलता है और उसी राग को पुष्ट करने वह पुनःपुनः उन छवियों को देखना चाहता है। भगवान के देवस्वरूप को देखने के लिए भी सुसंस्कृत आत्मा मन्दिर जाने का व्रत लेता है और अपने मन में—भावना में पूर्व से ही विद्यमान सात्त्विक प्रवृत्ति के पोषण के साधन मूर्ति में पाकर और अधिक धर्मानुरागी होता है। यों देखा जाये तो चित्रदर्शन और मूर्तिदर्शन व्यक्ति के मन में संकुलित हो रहे भावों का स्पर्श कर उन्हें उद्वेलित, तरंगित करने में सहायक होते हैं। एक मदिरा पीने वाला मद्य बिकने के स्थान को देखकर अपनी 'पॉकेट' के पैसे मद्य पीने में लगाता है। वह 'नशा' करके प्रसन्न होता है। 'मदिरागृह' और 'पाकेट का पैसा' तो उसकी पूर्ति में सहायक हैं। इस प्रकार मनुष्य की भावना ही उद्देश्य की और दौड़ती है तथा अपनी उत्कट बुभुक्षा की शान्ति चाहती है। यह भावना 'मद्य' पीने की ओर प्रवृत्त होती है तो लोक में गर्हित कही जाती है; क्योंकि मद्य पीने के परिणाम, उसमें व्यय किया गया धन तथा मूल में मद्य स्वयं दूषित है। यह आत्म-विनाश के लिए

त्रिदोष सन्निपात है। उसके पीने से व्यक्ति का चारित्रिक पतन होता है। पतन का मार्ग 'उन्मत्त' ही स्वीकार करता है। अतः देश, जाति, समाज और स्वयं आत्मा के उत्कर्ष के लिए देवस्थानों की रचना की जाती है। भगवान की प्रतिमाएँ विधिपूर्वक उनमें विराजमान की जाती हैं। भगवान की प्रतिमा-मूर्ति में, उनका अशेष सम्यक्चारित्र जो मानव जाति के लिए श्रेयोमार्ग का निर्देशक है, दर्शक के मन-प्राण पर अंकित होता है। जैसे किसी सुन्दरी को देखकर रागी का मन उसके प्रति आकृष्ट होता है, उसी प्रकार वीतराग प्रतिमा के दर्शन से मन में संसार की असारता के और वैराग्य की ओर प्रवृत्त होने के भाव प्रबल होते हैं। यह मनोवैज्ञानिक सत्य है।

गांधीजी के 'तीन वानर' मनुष्य की भावनाओं के सूचक ही हैं। 'मूर्तिपूजा' शब्द में 'पूजा' शब्द है, उसका अभिप्राय है—सत्कार, भक्ति, उपासना; जिन भगवान की मूर्ति है उनके गुणों का वन्दन करना और उन्होंने लोक को अपने उत्तम चारित्र से सन्मार्ग दिखाया इसके प्रति आत्मा की अशेष गहराइयों से कृतज्ञता ज्ञापन

करना तथा उनके समान अपने आत्म-लाभ के लिए प्रेरणा प्राप्त करना। मूर्ति का दर्शन, उसकी नित्य पूजा सदा से मानव में इन्हीं उदार विशेषताओं की गुणाधान प्रक्रिया को बल प्रदान करती रही है।

समाज के धार्मिक उत्थान में मूर्तिपूजा ने महान् सहयोग दिया है। बड़े-बड़े समाज धर्म के संगठन से ही शक्तिशाली बनते हैं और अपने आत्मिक उत्थान में प्रवृत्त होते हैं। समाज के बहुधन्वी, बहुमुखी व्यक्ति-समुदाय को मन्दिरों के माध्यम से एक स्थान पर 'आत्म-केन्द्र' मिलते हैं। देवालय सार्वजनिक होने से उन्हीं में समाज मिलकर बैठ सकता है। यहाँ पवित्र वातावरण रहता है और भगवान का सान्निध्य भी, इसलिए समाज के लिए मूर्तिपूजा अपने सम्पूर्ण गुण-समवायों के संरक्षण का स्थान है, एकता प्राप्त करने का दैवी सम्बल है। मनुष्य को अमरता का वरदान देव के चरणों में बैठकर ही मिलता है। मूर्ति के चरणों में ही उसका देहाभिमान गलित होता है और आत्मा का उदग्र पुरुषार्थ उदय में आता है। भव्य परिणामों को उपस्थित करने में 'मूर्तिपूजा' का प्रमुख स्थान है। जिस प्रकार युद्धप्रयाण करने वाला सैनिक भरत बाहुबली,

भीम, अर्जुन, हनुमान, चक्रवर्ती खारवेल (उड़ीसा), समर-केसरी श्री चामुण्डराय, महाराणा प्रताप और शिवाजी (महाराष्ट्र) आदि वीरों का स्मरण कर अपने में अतुल शक्ति का संचय करता है, उसी प्रकार आत्मा के पुरुषार्थ में मोक्षमार्ग को प्रशस्त करने वाला भगवान की पवित्र प्रतिमा के दर्शन से अपने में सत्साहस और निर्मलता प्राप्त करता है !

मूर्तिपूजा गुणों की पूजा है। वन्दना के पात्र तो गुण हैं; मूर्ति के माध्यम से पूजित भगवान के गुणों का स्मरण व्यक्ति के गुणों को निर्मलता प्रदान करता है। निर्मलता से परिणाम-विशुद्धि होती है और परिणाम-विशुद्धि ही चारित्र-मार्ग की जननी है। चारित्र से मोक्षसिद्धि होती है। अतः मूर्तिपूजा को अपदार्थ मानने वाले बहुत भ्रम में हैं। उनकी दृष्टि अज्ञान से आच्छन्न है। मूर्तिपूजा की विशाल पृष्ठभूमि से वे नितान्त अपरिचित हैं। मनुष्य अपने उद्धार के लिए किसी-न-किसी संस्कार की पाठशाला में जाता है। देवालय ही वह संस्कार-पाठशाला है। भगवान की मूर्ति ही परमगुरु है। कोई भी सम्यक्चेता भव्य इस पाठशाला से लाभ उठाकर भागवत पद को प्राप्त कर सकता है।

मूर्तिपूजा की प्राचीनता आज प्रमाणित हो चुकी है। 'मोहनजोदड़ो' और 'हड़प्पा' के उत्खनन से जो १००० वर्ष प्राचीन वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं उनमें भगवान आदिनाथ (ऋषभदेव) की खड्गासन प्रतिमा भी है, जो नग्न है और जैनों की मूर्तिपूजा को 'सिन्धुघाटी' सभ्यता तक ले जाती है। वैदिक धर्मानुयायियों ने भी भगवान ऋषभनाथ को ईश्वर का अवतार बताया है और मुक्तिमार्ग का प्रथम उपदेशक स्वीकार किया है। 'भागवत पुराण' में भगवान ऋषभनाथ का बड़ा सजीव वर्णन पौराणिक महर्षि व्यासदेव ने किया है। योग-वाशिष्ठ, दक्षिणामूर्ति सहस्रनाम, वैशम्पायन सहस्रनाम, दुर्वासा ऋषिकृत महिम्न स्तोत्र, हनुमन्नाटक, रुद्रयामल तंत्र, गणेश पुराण, व्याससूत्र, प्रभास पुराण, मनुस्मृति, ऋग्वेद और यजुर्वेद में जैनधर्म का उल्लेख हुआ है और इसकी सनातन प्राचीनता को वैदिक पौराणिक मनीषियों ने साग्रह स्वीकार किया है।

'सिन्धुघाटी' सभ्यता के अन्वेषक श्रीरामप्रसाद चन्दा का कथन है कि "सिन्धुघाटी में प्राप्त देवमूर्तियाँ न केवल बैठी हुई 'योगमुद्रा' में हैं अपितु खड्गासन देवमूर्तियाँ भी हैं, जो योग की 'कायोत्सर्ग मुद्रा' में हैं।

कायोत्सर्ग की ये विशिष्ट मुद्राएँ 'जैन' हैं। 'आदिपुराण' और अन्य जैन ग्रन्थों में इस कायोत्सर्ग मुद्रा का उल्लेख ऋषभ या ऋषभनाथ के तपश्चरण के सम्बन्ध में बहुधा किया गया है। ये मूर्तियाँ ईस्वी सन् के प्रारम्भिक काल की मिलती हैं और प्राचीन मिश्र के प्रारम्भिक राज्यकाल के समय की दोनों हाथ लम्बित किये खड़ी मूर्तियों के रूप में मिलती हैं। प्राचीन मिश्र मूर्तियों में प्रायः खड्गासन में हाथ लटकाये हुए समानाकृतिक मुद्राएँ हैं तथापि उनमें देहोत्सर्ग का (निःसंगत्वक) वह अभाव है जो सिन्धुघाटी की मूर्तियों में मिला है।”

आधुनिक विद्वानों में डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन्, पी. सो. रायचौधरी पटना, भारतीय पुरातत्त्व के मुख्य निर्देशक श्री टी. एन. रामचन्द्रन्, वाचस्पति गैरोला, रामधारीसिंह 'दिनकर' प्रभृति ने जैनधर्म पर निष्पक्ष दृष्टिपात करते हुए उसे वैदिक धर्म का समकालीन अथ च उससे भी पूर्ववर्ती सिद्ध किया है। अनेक विद्वानों का मत है कि 'मूर्त्तिपूजा' जैनों की देन है। इस दृष्टि से मूर्त्तिपूजकों का इतिहास आज ईसा की शताब्दियों के उस पार 'सिन्धुघाटी' सभ्यता के अवशेषों में मिल चुका

है। सम्भव है, पुरातत्त्व के उत्खनन इसे कल और भी पुरातन प्रमाणित कर सकें।

जैन मूर्तियों और मन्दिरों के भव्य स्थापत्य को देखकर किसी का यह साहस तो नहीं हो सकता कि वह जैनों के मूर्त्तिपूजा विषयक बौद्धिक परामर्श को असमीचीन या अबुद्धिसमन्वित कह सके। निश्चय ही सनातन काल से चली आ रही जैनों की मूर्त्तिपूजा ठोस मनोविज्ञान की भूमि पर आधारित है। मूर्त्ति के द्वारा ही अमूर्त परमात्मा की दिव्य भाँकी के आंशिक दर्शन कर पाते हैं और इसी का अवलम्बन लेकर जनसाधारण अपनी श्रद्धा का आधार पाता है। मूर्त्ति के माध्यम से ही प्रत्येक चेतना प्राप्त करता है।

जहाँ कुतर्कियों और अल्पज्ञानियों को मूर्त्ति में पत्थर दिखाई देता है, वहाँ श्रद्धालुओं को उसमें साक्षात् परमात्मा का साक्षात्कार होता है। भावपूजा से अनभिज्ञ द्रव्यपूजकों को मूर्त्तिपूजा से ही आत्मशान्ति मिलती है। मूर्त्तिपूजकों की अविचल निष्ठा को विचलित करने का सामर्थ्य स्वयं स्वयम्भू में भी नहीं है।

प्रस्तुतकर्ता—सुभाष पालीवाल

[भक्ति पुष्पाञ्जलि भाग द्वितीय में से उद्धृत]

मूर्त्ति की सिद्धि एवं मूर्त्तिपूजा की प्राचीनता—२६१



卐 नमामि सब्ब-जिराणं 卐

श्रीजिनप्रतिमाष्टकम्
(भावार्थयुक्तम्)

(वीरः सर्वसुरासुरेन्द्रमहितं वीरं बुधाः संश्रिताः—इत्यनेन
रागेण गीयते)

(शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्)

मूर्तिः स्फूर्तिमयी सदा सुखमयी, लालित्यलीलामयी,
दिव्यानन्दमयी प्रतापतरणी, सद्भावशोभामयी ।
नित्यं सद्बचनमृतैः सुललितैः, सिद्धा च सिद्धान्ततः
अज्ञानावृतचेतसां तनुजुषां, दृष्टिर्न तत्रेङ्गते ॥ १ ॥

भावार्थ—परमाराध्य देवाधिदेव श्री जिनेश्वर भगवान्
की स्फूर्तिमयी मूर्ति सदा सुखकारी ललित लीला युक्त,
दिव्यानन्दमयी, सूर्य के समान तेजस्वी, सद्भावों की

मूर्ति की सिद्धि एवं मूर्तिपूजा की प्राचीनता—२६२

शोभाओं से सुशोभित है; आगमवाणी के वचनामृतों से तथा सैद्धान्तिक प्रमाणों से प्रमाणीकृत है किन्तु जिनके चित्त को अज्ञान रूपी अन्धकार ने आच्छादित कर रखा है, उनकी दृष्टि परमात्मा की परम पावन मूर्ति-प्रतिमा पर नहीं पड़ती है ॥१॥

सौम्या रम्यतरा गुणैकवसतिः, सारस्वतीयं पुनः ,
 गम्भीरा च समुद्रमुद्रमधुरा, माधुर्यधुर्यैर्भृता ।
 सद्भिस्सेवितपादपद्ममनघा, द्रव्यादिभावैर्मुदा ,
 अज्ञानावृतचेतसां तनुजुषां, दृष्टिर्न तत्रेङ्गते ॥२॥

भावार्थ—सार-स्वरूपिणी यह जिनेश्वर प्रभु की मूर्ति-प्रतिमा सौम्य, रम्य और अनन्त गुणों की निवास-भूमि है। समुद्र की तरह से धीर-गम्भीर तथा दर्शन मात्र से माधुर्य भाव का संचार करने वाली मनमोहक ऐसी जिनेश्वर प्रभु की प्रतिमा सज्जनों के द्वारा द्रव्य तथा भाव से पूजित होती है, किन्तु जिनके चित्त को अज्ञान रूपी, अन्धकार ने आच्छादित कर रखा है, उनकी दृष्टि परमात्मा की परम पावन मूर्ति-प्रतिमा पर नहीं पड़ती है ॥२॥

सन्नामाकृतिद्रव्यभावभरितैः शास्त्रानुगे धीर्धनैः ,
 पौनः पुण्यमयैश्च सुष्ठुवचनैः, सद् रूपस्वीकारिता ।
 मूर्तिः श्रीजिनराज-राजमुकुटालङ्काररूपा सती ,
 अज्ञानावृतचेतसां तनुजुषां दृष्टिर्न तत्रेङ्गते ॥३॥

भावार्थ—नाम, आकृति, द्रव्य और भाव की भावनाओं से भावित, शास्त्रों की आज्ञा के अनुसार जीवन-यापन करने वाले महापुरुषों-सज्जनों के द्वारा बारम्बार सूक्ति-सुधा के माध्यम से स्वीकृत, ऐसी श्री जिनेश्वर भगवान की मूर्ति-प्रतिमा सत्स्वरूपिणी है। तथा राजा-महाराजाओं के द्वारा वन्दित होने के कारण, उनके मुकुटों की अलंकरण-स्वरूपा भी है, किन्तु जिनके चित्त को अज्ञान रूपी अन्धकार ने आच्छादित कर रखा है, उनकी दृष्टि परमात्मा की परम पावन मूर्ति-प्रतिमा पर नहीं पड़ती है ॥३॥

येषामत्र सुजीवनं सुललितं, लब्धञ्च पुण्यैः पणैः,
 पूजालग्नमभूत् परैः सुखकरैर्भावैः स्वभावैः परम् ।
 तेषां धन्यतमत्वतत्त्वमगमत्, संमन्यतां मानुजं,
 अज्ञानावृतचेतसां तनुजुषां, दृष्टिर्न तत्रेङ्गते ॥४॥

भावार्थ—पुण्य रूपी पैसों से प्राप्त किया हुआ जिनका जीवन परमात्मा की पूजा में सुखकारी स्वाभाविक भावों से समर्पित है, उनका जीवन धन्य है और मनुष्य-भव सफल है। जिनके चित्त को अज्ञान रूपी अन्धकार ने आच्छादित कर रखा है, उनकी दृष्टि परमात्मा की परम पावन मूर्ति-प्रतिमा पर नहीं पड़ती है ॥४॥

मूर्ति की सिद्धि एवं मूर्तिपूजा की प्राचीनता—२६४

ग्रैषा भगवत् प्रतापलसिता, मूर्तिर्न सम्पूजिता,
 स्वान्तर्ध्वान्तमयैर्धरापि बहुधा, भारीकृता भूरिशः ।
 क्लिष्टं क्लिष्टतरञ्च वञ्चकमयं, सज्जीवनं यापितं,
 अज्ञानावृतचेतसां तनुजुषां, दृष्टिर्न तत्रेङ्गते ॥५॥

भावार्थ—जिन्होंने अनन्त ऐश्वर्यों से सम्पन्न, तेजः-
 स्फूर्ति स्वरूप ऐसी भगवन् मूर्ति की पूजा नहीं की, ऐसे
 आन्तरिक अज्ञान रूपी अन्धकार में फँसे हुए लोगों ने अपने
 भार से पृथ्वी को भारी बनाया है तथा वञ्चकता से
 परिपूर्ण ऐसा अपना समस्त जीवन अत्यन्त क्लेशमय
 व्यतीत किया है । फिर भी, जिनके चित्त को अज्ञान रूपी
 अन्धकार ने आच्छादित कर रखा है, उनकी दृष्टि पर-
 मात्मा की परम पावन मूर्ति-प्रतिमा पर नहीं पड़ती है ॥५॥

अज्ञानान्धतमो विनाशनविधौ, चञ्चत् प्रभाभासुरा,
 भास्वद् भास्करतोऽधिका द्युतिमयी, श्रीकल्पवृक्षोपमा ।
 संसाराब्धिसुपारगन्तुमनसां, पोतायमानाऽनिशं,
 अज्ञानावृतचेतसां तनुजुषां, दृष्टिर्न तत्रेङ्गते ॥६॥

भावार्थ—श्री जिनेश्वर भगवान की दिव्य मूर्ति-
 प्रतिमा अज्ञानरूपी अन्धकार को दूर करने के लिए
 चमकती हुई किरणों से सुशोभित सूर्य से भी अधिक

प्रकाश वाली, समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली, कल्पलता के समान मनोरथों को परिपूर्ण करने वाली, संसार रूपी समुद्र से पार जाने की इच्छा वाले मुमुक्षुओं के लिए जहाज-नौका के समान उपकारी है। किन्तु जिनके चित्त को अज्ञान रूपी अन्धकार ने आच्छादित कर रखा है, उनकी दृष्टि परमात्मा की परम पावन मूर्ति-प्रतिमा पर नहीं पड़ती है ॥६॥

अर्हन्मूर्तिरहो विबोध - तरणी, स्नेहाम्बुवर्षी भरी,
 उत्फुल्लैश्च नितान्त कान्तनयनैर्निभ्रान्त शान्तिप्रदा ।
 सिद्धान्तागमसूक्तिमुक्तिवचनैर्नित्यं प्रमाणीकृता,
 अज्ञानावृतचेतसां तनुजुषां, दृष्टिर्न तत्रेङ्गते ॥७॥

भावार्थ—अरिहन्त भगवान की मूर्ति-प्रतिमा ज्ञान रूपी सूर्य के समान भामती, भरने की तरह स्नेहामृत बरसाने वाली, उत्फुल्ल, अत्यन्त कमनीय नेत्रों से निर्भ्रान्त शान्ति प्रदान करने वाली है और सिद्धान्त-आगम-सूक्ति आदि वचनों से सर्वथा प्रमाणित है। फिर भी जिनके चित्त को अज्ञानरूपी अन्धकार ने आच्छादित कर रखा है, ऐसी उनकी दृष्टि परमात्मा की परम पावन मूर्ति पर नहीं पड़ती है ॥७॥

मूर्ति की सिद्धि एवं मूर्तिपूजा की प्राचीनता—२६६

अर्हन् मूर्त्तिरर्हनिशं हृदि गता, संराजते यस्य च ,
 तच्चित्तानुगताः समस्तविषयाः सम्भान्ति निर्भ्रान्तितः ।
 तस्मात् तां समुपास्य शुद्धहृदयै-र्भाव्यं सदा सज्जनैः ,
 अज्ञानावृतचेतसां तनुजुषां, दृष्टिर्न तत्रेङ्गते ॥ ८ ॥

भावार्थ—श्री अरिहन्त परमात्मा की मूर्त्ति-प्रतिमा जिनके हृदय-कमल पर विराजित है, उनके लिए निगूढ़ से निगूढ़ रहस्य भी भ्रान्ति रहित होकर स्पष्टतया दृग्गोचर होते हैं । अतएव उस परम पावनी की उपासना करके सभी मनुष्यों को निर्मल अन्तःकरण बनना चाहिए । जिनके चित्त को अज्ञान रूपी अन्धकार ने आच्छादित कर रखा है, उनकी दृष्टि परमात्मा की परम पावन मूर्त्ति-प्रतिमा पर नहीं पड़ती है ॥८॥

अर्हन्मूर्त्तिसमर्थकं गुणकरं, सत्तत्त्वसन्दर्शकं ,
 नित्यानन्दकरं सुशान्तिसुखदं, सौहार्दसम्भावकम् ।
 सत्यं शाश्वतमप्रमेयमनघं, माहात्म्यमालामयं ,
 यावच्चन्द्रदिवाकरौ च वसुधा, संराजतामष्टकम् ॥ ९ ॥

भावार्थ—श्री अरिहन्त-जिनमूर्त्ति-प्रतिमा का समर्थक, गुणकारी, सत्तत्त्व - परामर्शक, नित्यानन्दकारी, सुख-शान्तिदायक सुहृद्भाव जागृत करने वाला, सत्य-शाश्वत-

अमेय - परमपवित्र - माहात्म्यमाला - स्वरूप . यह 'श्रीजिनप्रतिमाष्टक' जब तक आकाश में सूर्य और चन्द्र सुशोभित हैं तथा यह पृथिवी कायम है तब तक [सबके हृदयों में] समुल्लसित होता रहे ॥ ९ ॥

(वसन्ततिलका-वृत्तम्)

श्रीनेमिसूरिप्रवरस्य गुरोः सुशिष्यः ।
 लावण्यसूरिरभवन्निखिलागमज्ञः ।
 तदक्षसूरिप्रवरस्य सुशीलसूरिः, ।
 शिष्यो भवन् रचितवान् प्रतिमाष्टकञ्च ॥ १० ॥

भावार्थ—सूरिसम्राट् श्रीमद् विजयनेमिसूरीश्वरजी गुरु महाराज के सुशिष्य श्रीमद् विजयलावण्यसूरिजी महाराज समस्त आगमशास्त्रों के ज्ञाता हुए । उन्हीं के स्वनाम-धन्य शिष्य आचार्य श्रीमद् विजयदक्षसूरिजी महाराज के शिष्य विजयसुशीलसूरि ने इस जिनप्रतिमाष्टक की रचना की ॥ १० ॥

॥ श्रीरस्तु ॥ शुभं भवतु श्रीसंघस्य ॥



मूर्ति की सिद्धि एवं मूर्तिपूजा की प्राचीनता—२६८

श्री प्रतिमा-छत्रीसी

ॐ

[कर्त्ता-उपकेशगच्छीय स्व. आचार्य श्री
देवगुप्तसूरिजी (ज्ञानसुन्दरजी) महाराज]

॥ दूहा ॥

अरिहंतसिद्धने आयरिया, उवभाया अणगार ।
पंचपरमेष्ठी एहने, वन्दूं वारंवार ॥१॥

चारनिक्षेपा जिनतणा, सूत्रा में वन्दनीक ।
भोला भेद जाणे नहिं, जिन आगम प्रत्यनीक ॥२॥

बत्रीस सूत्र के मांयने, प्रतिमा को अधिकार ।
सावधान थई सांभलो, पामो समकित सार ॥३॥

समकित बिन चारित्र नहिं, चारित्र बिण नहिं मोक्ष ।
कष्ट लोच किरियाकरी, जन्म गमायो फोक ॥४॥

[आदर जीव क्षमागुण आदर-ए देशी]

प्रतिमा छत्रीसी सुणो भविप्राणी !

सूत्रां के अनुसारीजी ॥ ए टेक ॥

आचारांग दूजे श्रुतखंधे, पंदरमे अध्ययन मुभारजी ।
पाँच भावना समकित केरी, नित वन्दे अणगारजी ॥
प्रतिमा० ॥ १ ॥

दूजे सूयगडाङ्गे छठे अध्ययने, आद्रनाम कुभारजी ।
प्रतिमा देखी ज्ञान ऊपनो, पाम्यो भवनो पारजी ॥
प्रतिमा० ॥ २ ॥

ठाणायंगे चौथे ठाणे, सत्य निक्षेपा चार जी ।
दशमें ठाणे ठवणासच्चे, इम भाष्यो गणधारजी ॥
प्रतिमा० ॥ ३ ॥

अंजनगिरिने दधिमुखा, नंदीश्वरद्वीप मुभारजी ।
बावन मन्दिर प्रतिमा जिनकी, वन्दे सुर अणगारजी ॥
प्रतिमा० ॥ ४ ॥

स्थापनाचारज चौथे अंगे, द्वादश ठाणा मायजी ।
सतरमे समवायाङ्ग जंघाचारण, प्रतिमा वन्दन जायजी ॥
प्रतिमा० ॥ ५ ॥

शतक तीजो उद्देशो पहेलो, भगवती में सारजी ।
चमरइन्द्र सरणा लइ जावे, अरिहन्त बिम्ब अणगारजी ॥
प्रतिमा० ॥ ६ ॥

सास्वति असास्वति प्रतिमा वन्दे, दुगचारण मुनिरायजी ।
शतक वीस उद्देशे नवमे, बहुवचन कह्यो जिनरायजी ॥
प्रतिमा० ॥ ७ ॥

सतीद्रौपदी प्रतिमा पूजा, ज्ञातासूत्र मुभारजी ।
अणंद श्रावक अङ्ग सातमे सुण तेहनु अधिकारजी ॥
प्रतिमा० ॥ ८ ॥

अन्यतीर्थो ने उणरी प्रतिमा, नहि वन्दूं जावत् जीवजी ।
स्वतीर्थो री प्रतिमा वन्दी ज्यारी सेठी समकितनीवजी ॥
प्रतिमा० ॥ ९ ॥

अन्तगढ ने अणुत्तरोवाइ, प्रथम उपांगरी साखजी ।
अरिहन्त चैत्ये नगरियां शोभे, श्री जिनमुख से भाषजी ॥
प्रतिमा० ॥ १० ॥

प्रश्न व्याकरण पहले संवर, पूजा अहिंसा नामजी ।
प्रतिमाव्यावच्च त्रीजे संवर, करे मुनि गुणधामजी ॥
प्रतिमा० ॥ ११ ॥

विपाकमेसु बाहुप्रमुख, आणंदसरीखा जोयजी ।
उववाइ अरिहतचेइयाणि, अम्बड प्रतिमा वन्दी सोयजी ॥
प्रतिमा० ॥ १२ ॥

रायपसेणी सूरियाभे पूजी, जीवाभिगम विजयसूरंगजी ।
धूवं दाउणं जिणवराणं, ठवणसाची चौथे उपंगजी ॥
प्रतिमा० ॥ १३ ॥

प्रथम तीर्थंकर मोक्षे सिधाया, स्थम्भ कराया तीनजी ।
जम्बूद्वीपपन्नत्ति देखो, सुर होय भक्ति तीमे लीनजी ॥
प्रतिमा० ॥ १४ ॥

जंभकदेवता प्रतिमा पूजी, सास्वता सिद्धायतनबहुजाण जी ।
चंदपन्नत्ति सूर्यपन्नत्ति, प्रतिमा कहि विमानजी ॥
प्रतिमा० ॥ १५ ॥

निरियावलिका पुफियामाहे, चंपानगरी जाणजी ।
उववाइमे वर्णन कीधो, अरिहंत चैत्य प्रमाणजी ॥
प्रतिमा० ॥ १६ ॥

त्रीजे वर्गे दसोइं देवता, पूजा नाटकविध जाणजी ।
चौथे वर्गे दसोइं देवी, प्रतिमा पूजी बहुमानजी ॥
प्रतिमा० ॥ १७ ॥

पांचमे वर्गे द्वारका नगरी, बारे श्रावकरी जोड़जी ।
चंपानीपरे नगरी सोभे, श्रावक पूजी होड़ाहोड़जी ॥
प्रतिमा० ॥ १८ ॥

दशमे अध्ययने गौतमस्वामी, तीर्थ अष्टापद जायजी ।
उत्तराधीन अठारमे देखो, कह्यो उदाईरायजी ॥
प्रतिमा० ॥ १९ ॥

प्रभावतीराणी नाटक कीनो, जिनभक्ति में रागजी ।
गुणतीस अध्ययने चैत्यवन्द को फलभाष्यो वीतरागजी ॥
प्रतिमा० ॥ २० ॥

दशवैकालिक सिद्ध-भंभव भट्ट, प्रतिमाथी प्रतिबोधजी ।
जाणग भवियसरीर निक्षेपा, अणुयोग द्वारल्यो सोधजी ॥
प्रतिमा० ॥ २१ ॥

स्थुभ कह्यो श्रीनन्दीसूत्रे, मुनिमुव्रत विशालामायजी ।
व्यवहारसूत्रे आलोवणा लेवे, मुनि प्रतिमा पासे जायजी ॥
प्रतिमा० ॥ २२ ॥

निसीथकल्पदशा श्रुतरखंधे, नगरियां को अधिकारजी ।
चंपानोपरे मंदिर सोभे, वीतराग वचन ल्यो धारजी ॥
प्रतिमा० ॥ २३ ॥

आवश्यकमहिया शब्द विचारो, भरत-श्रेणिक भराव्या बिम्बजी।
वगुर श्रावक पुरिमताल को, केई चैत्य कराव्या थूभजी ॥
प्रतिमा० ॥ २४ ॥

वादी कहे आतो पंचाङ्गी, मेतो मानां मूलजी ।
वज्र भाषा बोले एसी, नहि समकित को मूलजी ॥
प्रतिमा० ॥ २५ ॥

पंचाङ्गी तो कही मानणी, सुण सूत्र की साखजी ।
समवायाङ्ग द्वादशाङ्गी हुंडी, जिनवर-गणधर भाषजी ।
प्रतिमा० ॥ २६ ॥

शतक पचीस उदेशो तीजो, भगवती अंग पिछ्छाणजी ।
सूत्र-अर्थ-निर्युक्ति मानो, या जिनवर की आणजी ॥
प्रतिमा० ॥ २७ ॥

अनुयोगद्वार सूत्र में देखो, निर्युक्ति की वातजी ।
नन्दी में निर्युक्ति मानी, छोड़ो हठ मिथ्यात्वजी ॥
प्रतिमा० ॥ २८ ॥

वादी कहे वातो निर्युक्ति, गइ काल में वीतजी ।
नवी रची आचारिज ज्यारी, किम आवे प्रतीतजी ॥
प्रतिमा० ॥ २९ ॥

सूत्र रह्या निर्युक्ति बीती, या तें किम करी जाणीजी ।
आचारिज रचिया नहि मानो, सुणजो आगे वाणीजी ॥
प्रतिमा० ॥ ३० ॥

तीन छेद भद्रबाहु रचिया, पन्नवणा श्यामाचारजी ।
दशवैकालिक सिजंभवकृत, निशीथ विशाखा गणधारजी ॥
प्रतिमा० ॥ ३१ ॥

देवढिगणीजी नन्दी बनाइ, घणा सूत्रना नामजी ।
ज्युं वृत्ति रा कर्त्ता जाणो, भद्रबाहु स्वामीजी ॥
प्रतिमा० ॥ ३२ ॥

प्रकरणमां सुढाल-चोपइयां, प्रतिमा देवो गोपजी ।
त्रीजो महाव्रत चवडे भांगो, जिन आज्ञादि विलोपजी ॥
प्रतिमा० ॥ ३३ ॥

एक अक्षर उत्थापे जिणरो, वधे अनंत संसारजी ।
सूत्र का सूत्र नहि माने, ए डूबे डुबावणहारजी ॥
प्रतिमा० ॥ ३४ ॥

बत्रीस सूत्रा में प्रतिमा बोले, चतुरां लीजो जोयजी ।
भावदया मुज घटमा व्यापी, उपकार बुद्धि छे मोयजी ॥
प्रतिमा० ॥ ३५ ॥

प्रतिमा छत्रीसी सुणो भविप्राणी, हृदये करो विचार जी ।
पक्ष छोड़ी समकित आराधो, पामो भव नो पार जी ॥
प्रतिमा० ॥ ३६ ॥



रायसिद्धार्थ वंशभूषण त्रिशलादेवी माय जी ,
शासननायक तीर्थऊशिया रत्नविजय प्रणमे पाय जी ।
शालबहोतेर जेष्ठमासे मुदपंचमी गुरुवार जी ,
गयवर सरणो लीयो तोरो सकल भयो अवतार जी ॥३७॥

॥ इति सम्पूर्णम् ॥



❁ जिनस्तवन ❁

[कर्त्ता—उपदेशगच्छीय आचार्यश्री
देवगुप्तसूरिजी (ज्ञानसुन्दरजी)]

[गोपीचन्द लड़का की—देशी]

आज पूजा के मांहि आठकर्म जावे तूट रे । (पूजा०) ए टेक ।

चैत्यवन्दन-स्तुती करतां, ज्ञानावर्णी तूटे;
दर्शन करतां भावे भावना, दर्शनावर्णी छूटे ।
आज पूजा के मांहि० ॥ १ ॥

प्राणिभूत जीवसत्त्व की, करुणा घट में लावे;
असातावेदनी जाय मूल सें, साता को बंध थावे ।
आज पूजा के मांहि० ॥ २ ॥

आठ कर्म में नायक कहिजे, मोह को मोटो फंद;
दीतराग की भावे भावना, कटे कर्म को कंद ।
आज पूजा के मांहि० ॥ ३ ॥

योग अवस्था ध्यावतां सरे, चारित्र मोह को नाश;
ध्यावो सिद्ध की अवस्था सरे, तूटे दर्शन मोहनी खास ।
आज पूजा के मांहि० ॥ ४ ॥

परिणामां की लहेर चढ़े जद, कैसा आवे भाव ;
आडबांधे सुरतणो सरे, यो पूजा परभाव ।
आज पूजा के मांहि० ॥ ५ ॥

नाम लहुं प्रभु तुम तणु सरे, अशुभ कर्म जाय दूर ;
बंध होय शुभ नाम को सरे, पामे सुख भरपूर ।
आज पूजा के मांहि० ॥ ६ ॥

बन्दणा करतां गोत्रकर्म को, होय नीच को नाश ;
ऊँच गोत्र पदवी मिले सरे, फिर रहु तुमारे पास ।
आज पूजा के मांहि० ॥ ७ ॥

द्रव्य चढ़ावे शक्ति फोरवें, इम तूटे अन्तराय ;
भाग्य उदय हो जेहनां सरे, प्रभु की भक्ति कराय ।
आज पूजा के मांहि० ॥ ८ ॥

अशुभ कर्म को नाश पूजा में, शुभ को बंध ज थावे ;
द्रव्य क्रियासुं भाव आवे जद, वेगो मुक्ति सिधावे ।
आज पूजा के मांहि० ॥ ९ ॥

स्वरूप हिंसा द्रव्य-पूजा में, देखी चमके भोला ;
भक्ति नफो पिछाणे नाहिं, बण रया भर्मका गोला ।
आज पूजा के मांहि० ॥ १० ॥

पाणी मां सुं काढे साध्वी, कहो कैसी हिंसा थावे;
आज्ञा धर्म बतायो जिनवर, यूँ पूजा में भावे ।
आज पूजा के मांहि० ॥ ११ ॥

थोड़ो पाणी मच्छियां घेरी, कोइ करुणा दिल लावे;
जाय नांखे दरियाव में सरे, पाप बिना पुन थावें ।
आज पूजा के मांहि० ॥ १२ ॥

जे आसव्वा ते परिसव्वा, शुभ जोगे संवर होय;
आचारांग भगवति मांहे, पाठ काढल्यो जोय ।
आज पूजा के मांहि० ॥ १३ ॥

रावण गोत्र तीर्थकर बांध्यो, केइ श्रावक पूजा कीनी;
आठ कर्म की होय निर्जरा, भगवन्त आज्ञा दीनी ।
आज पूजा के मांहि० ॥ १४ ॥

दान-शीयल-तप-भावना भावो, पूजा खूब रचावो;
नरभव केरो लाहो लीजे, फेर गर्भ नहिं आवो ।
आज पूजा के मांहि० ॥ १५ ॥

साल बोहोतेर तीर्थ उंशीया, गयवर की अरदास;
वीर प्रभु से वीनती सरे, मैं रहूँ तुमारे पास ।
आज पूजा के मांहि० ॥ १६ ॥

॥ इति सम्पूर्णम् ॥

卐 सद्गुरुभ्यो नमः 卐

जैनधर्मदिवाकर - राजस्थानदीपक - मरुधरदेशोद्धारक
परमपूज्य आचार्यदेव श्रीमद्विजय सुशील सूरीश्वरजी
म. सा. के विक्रम संवत् २०४५ की साल में
श्रीदेसूरी नगर में परमशासन-प्रभावनापूर्वक सम्पन्न
हुए अनुपम-चिरस्मरणीय चातुर्मास का
संक्षिप्त वर्णन

[१]

*** चातुर्मासार्थ नगर में प्रवेश एवं
अष्टाह्निका महोत्सव का प्रारम्भ ***

श्रीवीर सं. २५१५ विक्रम सं. २०४५ नेमि सं. ४०
के आषाढ सुद २ बुधवार दिनांक ५-७-१९८९ के दिन
प्रातः देसूरी नगर में शास्त्रविशारद-साहित्यरत्न-कविभूषण
परमपूज्य आचार्यदेव श्रीमद्विजय सुशील सूरीश्वरजी
म. सा. ने पूज्य मुनिराज श्री रत्नशेखर विजयजी म. सा.,

मूर्ति की सिद्धि एवं मूर्तिपूजा की प्राचीनता-२८०

पूज्य मुनिराज श्री प्रमोद विजयजी म. सा., पूज्य मुनिराज श्री जिनोत्तम विजयजी म. सा., पूज्य मुनिराज श्री अरिहन्त विजयजी म. सा. तथा पूज्य मुनिराज श्री रविचन्द्र विजयजी म. सा. आदि मुनिमंडल समेत एवं पूज्य साध्वी श्री हेमलता श्रीजी म. आदि ठाणा-८ तथा पूज्य साध्वी श्री स्नेहलता श्रीजी म. आदि ठाणा-११ युक्त, देसूरी श्री जैनसंघ के अदम्य उत्साह के साथ हाथी, घोड़े, बैन्ड आदि तथा जैन-जैनेतर विशाल जनता युक्त भव्य स्वागतपूर्वक चातुर्मासार्थ मंगल प्रवेश किया। अनेक स्थलों में विविध गढ़ुलियाँ हुईं। श्री शान्तिनाथ-श्री विमलनाथ, श्री सम्भवनाथ, श्री चन्द्रप्रभस्वामी इन चारों जिनमन्दिरों के दर्शन किये। पश्चात् 'श्री पोरवाल भवन' में चातुर्मासार्थ मंगल प्रवेश किया। प्रवचन के पाट पर प्रवचनपटु पूज्यपाद आचार्य महाराज साहब आदि बिराजमान हुए।

स्वागत-गीत होने के पश्चात् पूज्यपाद आचार्य म. सा. का मंगलप्रवचन तथा 'चातुर्मास की विशिष्टता' पर प्रभावपूर्ण प्रवचन होने के बाद, पूज्यपाद आ. म. सा. के लघु शिष्यरत्न विद्वान् सुमधुरप्रवचनकार पूज्य मुनिराज श्री जिनोत्तम विजयजी म. श्री का भी प्रवचन हुआ।

उस समय श्रीसंघ की ओर से कम्बल वहोराने का विशिष्ट चढ़ावा बोलकर आदेश लेने वाले श्रीमान् मोहनलालजी तथा श्रीमान् केसरीमलजी एवं ताराचन्दजी आदि अम्बावत परिवार ने पूज्यपाद गुरुदेव आचार्य म. सा. को कम्बल वहोराने का लाभ लिया। अन्त में, सर्वमंगल के बाद श्रीसंघ की ओर से प्रभावना हुई। तथा श्री जिनेन्द्र भक्ति रूप 'अष्टाह्निका-महोत्सव' का प्रारम्भ श्री विमलनाथ जिनमन्दिर में हुआ। श्री पार्श्वनाथ पंचकल्याणक पूजा भी प्रभावनायुक्त पढ़ाई गई।

उसी दिन संघ में आयम्बिल की तपश्चर्या हुई तथा श्रीसंघ की तरफ से दो टंक का स्वामिवात्सल्य भी हुआ। प्रातःकाल का श्रीमान् पन्नालाल पूनमचन्द्र अम्बावत का तथा शाम का श्री जिनेन्द्र युवा मण्डल का था। प्रतिदिन व्याख्यान, प्रभु-पूजा, प्रभावना तथा आंगी रोशनी एवं रात को भावना का कार्यक्रम चालू रहा। बाहर से वन्दनार्थ आने वाले सार्धर्मिक बन्धुओं की भक्ति का लाभ अर्हनिश संघ को मिलता रहा।

❀ आषाढ़ सुद ४ शुक्रवार दिनांक ७-७-८६ के दिन

मूर्ति की सिद्धि एवं मूर्तिपूजा की प्राचीनता-२८२

व्याख्यान के बाद श्रीमान् उम्मेदमलजी दानमलजी के घर पर पूज्यपाद आ. म. सा. चतुर्विध संघ के साथ देशी वाजिन्त्रयुक्त स्वागतपूर्वक पधारे। वहाँ पर ज्ञानपूजन, मांगलिक तथा दम्पत्ति को ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा होने के पश्चात् संघपूजा हुई।

* आषाढ सुद ५ शनिवार दिनांक ८-७-८६ के दिन प्रवचन के पश्चात् श्रीमान् मोतीलालजी कुन्दनमलजी के घर पर परमपूज्य आ. म. सा. चतुर्विध संघ के साथ देशी वाजिन्त्रयुक्त पधारे। वहाँ पर ज्ञानपूजन, मांगलिक तथा प्रतिज्ञा होने के बाद संघपूजा हुई। फिर पूज्यपाद आचार्य म. सा. आदि चतुर्विध संघ युक्त स्वागतपूर्वक श्रीमान् मीठालालजी भीमराजजी के घर पधारे। वहाँ ज्ञानपूजन, मांगलिक, पदयात्रा संघ की प्रतिज्ञा के पश्चात् संघपूजा हुई।

* आषाढ सुद ७ सोमवार दिनांक १०-७-८६ के दिन प्रवचन के पश्चात् परमपूज्य आचार्य म. सा. आदि चतुर्विध संघ सहित स्वागतपूर्वक श्रीमान् इन्द्रमलजी अमीचन्दजी के घर पर पधारे। वहाँ पर ज्ञानपूजन, मांगलिक, प्रतिज्ञा के बाद संघपूजा हुई।

उसी माफिक एक अन्य श्रीमान् के घर पर भी

पधारे। वहाँ पर भी ज्ञानपूजनादि के पश्चात् संघपूजा हुई।

❁ आषाढ़ सुद ८ मंगलवार दिनांक ११-७-८६ के दिन प्रवचन के बाद पूज्यपाद आचार्य म. सा. आदि चतुर्विध संघ समेत स्वागतपूर्वक श्रीमान् जालमचंदजी घासीरामजी के घर पर पधारे। वहाँ पर भी ज्ञानपूजन, मांगलिक, पदयात्रा संघ की प्रतिज्ञा के बाद संघ-पूजा हुई।

*** पूज्यश्री भगवतीसूत्र के योग में प्रवेश
तथा श्रीसिद्धचक्रमहापूजन ***

विक्रम सं. २०४५ आषाढ़ सुद-६ बुधवार दिनांक १२-७-८६ के दिन प्रातः शुभ मुहूर्त्त में परमपूज्य आचार्य म. सा. ने नाण समक्ष अपने शिष्यरत्न पूज्य मुनिराज श्री जिनोत्तम विजयजी म. को पंचमांग पूज्य श्री भगवतीसूत्र के योग में मंगलप्रवेश करवाया। प्रवचन के पश्चात् पूर्ववत् श्रीसंघ की ओर से प्रभावना हुई। दोपहर में 'श्रीसिद्धचक्रमहापूजन' विधिपूर्वक पढ़ाया गया। अष्टाह्निका-महोत्सव की पूर्णाहुति हुई।

❁ आषाढ़ सुद १३ रविवार दिनांक १६-७-८६ के

मूर्त्ति की सिद्धि एवं मूर्त्तिपूजा की प्राचीनता-२८४

दिन व्याख्यान में श्रीमान् लालचन्दजी बस्तीमलजी मेहता की ओर से संघपूजा हुई।

उसी दिन पूज्यपाद आचार्य म. सा. आदि चतुर्विध संघ सहित स्वागतपूर्वक श्रीमान् सोमलजी हंसराजजी अम्बावत के घर पर पधारे। वहाँ पर ज्ञानपूजन एवं मंगलाचरण के पश्चात् संघपूजा हुई।

[२]

* चातुर्मास का प्रारम्भ *

आषाढ़ सुद १४ सोमवार दिनांक १७-७-८६ के दिन आषाढ़ी चातुर्मास की आराधना (देववन्दनादि की) संघ में हुई। उसी दिन से संघ में सलंग अट्टम तप का प्रारम्भ हुआ।

आषाढ़ (श्रावण) वद १ बुधवार दिनांक १६-७-८६ के दिन 'पूज्य श्रीभगवतीसूत्र' अपने घर ले जाने का आदेश लेने वाले श्रीमान् मोहनराजजी, केशरीमलजी, ताराचन्दजी, किस्तूरचन्दजी अम्बावत के घर पर परम-शासनप्रभादक पूज्यपाद आचार्य म. सा. चतुर्विध संघ सहित तथा हाथी एवं बैन्ड युक्त जुलूस द्वारा पधारे। वहाँ पर शरणगारे हुए स्थान में पू. श्री भगवतीसूत्र को

स्थापना कर सभी ने ज्ञान की स्तुति आदि की । बाद में ज्ञानपूजन, तीर्थयात्रा-संघ निकालने की प्रतिज्ञा एवं मंगलप्रवचन होने के पश्चात् संघपूजा हुई । रात को प्रभु-भक्ति का कार्यक्रम रहा ।

[३]

* पू. श्री भगवतीसूत्र का तथा श्री विक्रमचरित्र का प्रारम्भ *

आषाढ़ (श्रावण) वद २ गुरुवार दिनांक २०-७-८६ के दिन प्रातः अपने घर से पूज्य श्री भगवतीसूत्र को हाथी, बैन्डयुक्त जुलूस द्वारा श्री पोरवाल भवन में लाकर चतुर्विध संघ के समक्ष परम गुरुदेव पूज्यपाद आचार्य म. सा. को वहोराया । 'श्रीविक्रमचरित्र' आदेश लेने वाले श्रीमान् नेमिचन्दजी धनराजजी ने वहोराया । पूज्य श्री भगवतीसूत्र की प्रथम पूजन गिन्नी से श्रीमान् कालूरामजी जसराजजी ने की । शेष चार पूजन रूपानाणा से भिन्न-भिन्न चार सद्गृहस्थों ने क्रमशः की । सकल संघ ने भी रूपानाणा से पूजन की । बाद में पूज्यपाद आचार्य म. सा. ने 'पूज्य श्री भगवती सूत्र' का वांचन प्रारम्भ किया तथा 'श्रीविक्रम चरित्र' का प्रारम्भ पूज्य श्री जिनोत्तम विजयजी म. ने किया ।

मूर्ति की सिद्धि एवं मूर्तिपूजा की प्राचीनता-२८६

संघ में श्री नमस्कार महामन्त्र की नौ दिन की आराधना का भी प्रारम्भ हुआ ।

दोपहर में पैतालीस आगम की पूजा प्रभावनायुक्त पढ़ाई गई ।

प्रतिदिन पूज्य 'श्री भगवती सूत्र' तथा 'श्री विक्रम-चरित्र' का श्रवण करने का लाभ श्रीसंघ को सुन्दर मिलता रहा ।

* आषाढ (श्रावण) वद १४ सोमवार दिनांक ३१-७-८६ के दिन सामुदायिक एकधान (पीला वर्ण) के आयम्बिल विशेष रूप में हुए ।

* श्रावण सुद २ बुधवार दिनांक ३-८-१९८६ के दिन वन्दनार्थ लुणावा से आये हुए एक सद्गृहस्थ की तरफ से व्याख्यान में संघपूजा हुई ।

* श्रावण सुद ४ शनिवार दिनांक ५-८-८६ के दिन परम पूज्य आचार्य म. सा. आदि चतुर्विध संघ के साथ वाजते-गाजते स्वागतपूर्वक श्रीमान् भंडारी सुपारसमलजी हिम्मतमलजी वकील के घर पर पधारे । वहाँ पर ज्ञानपूजन, मांगलिक एवं प्रतिज्ञा के पश्चात् संघपूजा

हुई । उन्होंने अपनी ओर से भराया हुआ नूतन छोड़ पूज्यपाद आचार्य म. सा. की पावन निश्चा में श्री सम्भवनाथ जिनमन्दिर में प्रभुजी के पृष्ठ भाग में लगाया और पूजा पढ़ाकर प्रभावना भी की । उसी दिन संघ में 'पंचरंगी तप' का प्रारम्भ हुआ ।

❁ श्रावण सुद ६ शुक्रवार दिनांक ११-८-८६ के दिन पंचरंगी तप करने वाले को पारणा कराने का लाभ श्रीमान् मोहनराजजी कस्तूरचन्दजी ने लिया ।

❁ श्रावण सुद १२ सोमवार दि. १४-८-८६ के दिन दांतराई गाँव से वन्दनार्थ आये हुए एक सद्गृहस्थ की ओर से व्याख्यान में संघपूजा दो रुपये से हुई ।

❁ श्रावण सुद १३ मंगलवार दिनांक १५-८-८६ के दिन चाणस्मा (गुजरात) से वन्दनार्थ आये हुए विमावाले श्रीमान् रतिलालभाई तथा श्रीमान् बच्चूभाई की ओर से व्याख्यान में संघपूजा हुई ।

[४]

* नवाहिनका-महोत्सव का प्रारम्भ *

श्रावण सुद १५ गुरुवार दिनांक १७-८-८६ के दिन

परमपूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय सुशील सूरीश्वरजी म. सा. कृत श्री वर्द्धमान तप की ५६ वीं ओली की पूर्णाहुति के पारणा के प्रसंग पर अपने घर पूज्यपाद आचार्य म. सा. के पुनीत पगलियाँ कराने हेतु विशेष बोली बोलकर लाभ लेने वाले श्रीमान् मोतीलालजी कुन्दनमलजी अम्बावत के घर पर पूज्यपाद आचार्य म. सा. आदि चतुर्विध संघ समेत बैन्ड युक्त पधारे । वहाँ पर ज्ञानपूजन और मांगलिक के बाद संघपूजा हुई ।

उसी दिन व्याख्यान में पूज्यपाद आचार्य म. श्री ने श्रीमान् मोहनराजजी अम्बावत तथा श्रीमान् हिम्मतमलजी आदि को परस्पर 'मिच्छामि दुष्कडं' क्षमापन करवाने से ज्ञान्ति हो गई । उससे संघ में हर्ष के वातावरण के साथ सबके आनन्द में अभिवृद्धि हुई । प्रतिदिन व्याख्यान के साथ पूजा-प्रभावना, आंगी-रोशनी तथा रात को भावना का कार्यक्रम चालू रहा ।

* श्रावण (भादरवा) वद ५ सोमवार दिनांक २८-८-८६ के दिन श्रीमान् चम्पालालजी गुलाबचन्दजी के घर पर परमपूज्य आचार्यदेव आदि चतुर्विध संघ समेत स्वागतपूर्वक पधारे । वहाँ पर ज्ञानपूजन, दीक्षा की प्रतिज्ञा एवं मंगलप्रवचन के पश्चात् संघ पूजा हुई ।

* श्रावण (भादरवा) वद ७ बुधवार दिनांक २३-८-८६ के दिन संघ में श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ प्रभु के किये गये अट्टम तप के पारणा कराने का लाभ श्रीमान् राजमलजी डालचन्दजी ने लिया ।

* श्रावण (भादरवा) वद ८ गुरुवार दिनांक २४-८-८६ के दिन जैनधर्मदिवाकर परमपूज्य आचार्य भगवन्त आदि चतुर्विध संघ समेत बैंड युक्त श्रीमान् दीपचन्दजी हंसराजजी नवलखा के घर पधारे । वहाँ पर ज्ञान-पूजन, प्रतिज्ञा एवं मांगलिक के बाद संघ-पूजा हुई ।

उसी दिन 'श्री जैन धार्मिक पाठशाला' का भी उद्घाटन पूज्यपाद आचार्य म. सा. की पावन निश्वा में समारोहपूर्वक हुआ ।

* श्रावण (भादरवा) वद ९ शुक्रवार दिनांक २५-८-८६ के दिन श्रीमान् कान्तिलाल उम्मेदमलजी किसनाजी रानी स्टेशन देसुरीवाले की ओर से विधिपूर्वक 'श्री भक्तामर महापूजन' पढ़ाया गया तथा उनकी ओर से संघ का सार्धार्मिक वात्सल्य भी हुआ ।

* श्रावण (भादरवा) वद १० शनिवार दिनांक

२६-८-८६ के दिन व्याख्यान में श्रीमान् जुहारमलजी हेमाजी लुणावा वाले की ओर से संघपूजा हुई ।

[५]

श्री पर्युषणा महापर्व की अनुपम आराधना

१-श्रावण (भादरवा) वद १२ सोमवार दिनांक २८-८-८६ के दिन से 'श्री पर्युषणा महापर्व की अनुपम आराधना' का प्रारम्भ हुआ । प्रारम्भ में तीन दिन अट्ठाईव्याख्यान तथा बाद में पाँच दिन 'श्री कल्पसूत्र' का व्याख्यान दोनों का क्रमशः श्रवण करने का लाभ श्रीसंघ को 'पोरवाल भवन' में पूज्यपाद आचार्य म. सा., पूज्य मुनिराज श्री जिनोत्तम विजयजी म. तथा पूज्य मुनिराज श्री रविचन्द्र विजयजी म. द्वारा मिलता रहा । उसी माफिक 'ओसवाल उपाश्रय' में भी पूज्य मुनिराज श्री रत्नशेखर विजयजी म., पूज्य मुनिराज श्री प्रमोद विजयजी म., पूज्य मुनिराज श्री जिनोत्तम विजयजी म. तथा पूज्य मुनिराज श्री रविचन्द्र विजयजी म. द्वारा व्याख्यान का लाभ आठों दिन श्रीसंघ को मिलता रहा । उसी दिन श्रीमान् मोहनलालजी कस्तूरचन्दजी अम्बावत के घर पर क्षीरसमुद्र तप के पारणा के उपलक्ष में पगलियाँ करने के लिये परम पूज्य आचार्यदेव

मूर्ति की सिद्धि एवं मूर्तिपूजा की प्राचीनता-२६१

आदि चतुर्विध संघ समेत बैन्ड युक्त पधारे । वहाँ पर ज्ञानपूजन एवं मांगलिक श्रवण के बाद संघपूजा हुई । प्रतिदिन चारों जिनमन्दिरों में भव्य आँगो-रोशनी तथा रात को भावना का कार्यक्रम चालू रहा । व्याख्यान में विशेष प्रभावना का कार्यक्रम भी चालू रहा ।

२-श्रावण (भादरवा) वद १३ मंगलवार दिनांक २६-८-८६ के दिन श्राविका बहिनों के रायणवाला उपाश्रय में पूज्य साध्वी श्री सिद्धिरक्षिता श्रीजी कृत ३१ उपवास की तपश्चर्या के उपलक्ष में पूज्यपाद आचार्य म. सा. आदि चतुर्विध संघ के साथ बैन्ड सहित पधारे । वहाँ पर ज्ञानपूजन एवं मंगल प्रवचन के पश्चात् संघ-पूजा हुई ।

३-श्रावण (भादरवा) वद १४ बुधवार दिनांक ३०-८-८६ के दिन पूज्यपाद आचार्य म. सा. आदि चतुर्विध संघ समेत बैन्ड युक्त अपने घर पर आदेशपूर्वक पूज्य 'श्री कल्पसूत्र' ले जाने वाले श्रीमान् केसरीचन्दजी कस्तूरचन्दजी अम्बावत के घर पर पधारे । वहाँ पर ज्ञानपूजन एवं मांगलिक होने के पश्चात् संघपूजा हुई । रात को भावना का भी कार्यक्रम रहा ।

उसी दिन श्रीमान् जवेरचन्दजी कुन्दनमलजी विठोड़ा वाले की तरफ से भी संघपूजा हुई ।

४-श्रावण (भादरवा) वद १५ गुरुवार दिनांक ३१-८-८६ के दिन श्रीमान् गुलाबचन्दजी कुन्दनमलजी विठोड़ा वाले के घर पर परम पूज्य आचार्य म. सा. आदि चतुर्विध संघ समेत बैन्ड युक्त पधारे । वहाँ पर ज्ञानपूजन एवं मांगलिक के बाद संघपूजा हुई ।

उसी दिन श्रीमान् धनराजजी नेमिचन्दजी विठोड़ा वाले की ओर से भी संघपूजा हुई ।

५-भादरवा सुद १ शुक्रवार दिनांक १-९-८६ विभु श्री महावीर जन्मवांचन के दिन प्रातः व्याख्यान में जवाली निवासी श्रीमान् देवराजजी पाली वाले की ओर से संघपूजा हुई । उसी दिन श्री महावीर जन्मवांचन के बाद अपने घर पर प्रभु का पारणा तथा स्वप्नादि ले जाने के लिए विशेष बोली बोलकर आदेश लेने वाले श्रीमान् मोहनराजजी केसरीमलजी ताराचन्दजी अम्बावत परिवार वाले थे । उनकी ओर से पोरवाल भवन में ही रात को भावना प्रभावना पूर्वक हुई थी ।

उसी दिन बैन्ड युक्त परम पूज्य आचार्य म. सा. के

पगलियाँ चतुर्विध संघ समेत श्रीमान् थानमलजी के घर पर हुए। वहाँ ज्ञानपूजन के पश्चात् संघपूजा हुई। भादरवा सुद बीज के दिन दो टंक व्याख्यानादि का कार्यक्रम रहा।

६-भादरवा सुद ३ रविवार दिनांक ३-९-८९ के दिन पूज्यपाद आचार्य म. सा. आदि चतुर्विध संघ समेत बैन्ड युक्त श्रीमान् वत्सराजजी हजारीमलजी फागणिया, श्रीमान् देवराजजी उम्मेदमलजी तथा श्रीमान् नगराजजी कालूरामजी, इन तीनों के घर पर क्रमशः पधारो। सभी स्थलों में ज्ञानपूजन, प्रतिज्ञा एवं मांगलिक होने के पश्चात् संघपूजा हुई।

७-भादरवा सुद ४ सोमवार दिनांक ४-९-८९ संवत्सरी के दिन वन्दनार्थ आये हुए श्रीमान् मिश्रीमलजी कान्तिलालजी घाणेराव वाले ने व्याख्यान में संघपूजा की। संवत्सरी प्रतिक्रमण के पश्चाद् भी प्रभावना हुई।

विविध-तपश्चर्या

साधुसमुदाय में-

(१) परम पूज्य आचार्य म. सा. की श्री वर्द्धमान तप की ५९ वीं ओली।

मूर्ति की सिद्धि एवं मूर्तिपूजा की प्राचीनता-२९४

- (२) पूज्य मुनिराज श्री प्रमोद विजयजी म. की १८वीं व १९वीं ओली ।
- (३) पूज्य मुनिराज श्री जिनोत्तम विजयजी म. को पंचमांग पूज्य श्री भगवतीजी सूत्र के महान् योग की आराधना ।
- (४) पूज्य मुनिराज श्री अरिहन्त विजयजी म. की श्री वर्द्धमान तप की १८वीं व १९वीं ओली तथा अट्टाई ।
- (५) पूज्य मुनिराज श्री रविचन्द्र विजयजी म. को पूज्य श्री महानिशीथ सूत्र के योग की आराधना ।

साध्वी समुदाय में-

प. पू. शासनसम्राट् समुदाय की आज्ञावर्तिनी पूज्य साध्वी श्री चारित्र श्रीजी महाराज की शिष्या पू. साध्वी श्री हेमलता श्रीजी म. तथा पू. साध्वी श्रीनयप्रज्ञाश्रीजी म. आदि में से-

❀ पू. साध्वीश्री ध्यानमित्राश्रीजी की-अट्टाई ।

❀ पू. साध्वीश्री जिनमित्राश्रीजी म. की अट्टाई ।

❀ पू. साध्वीश्री मुदिताश्रीजी म. की श्रीवर्द्धमान तप की ४७ वीं ओली की आराधना ।

शासनप्रभावक प. पू. आचार्य श्रीमद्विजय अरिहंत सिद्ध सूरेश्वरजी म. सा. की आज्ञावर्तिनी—

❀ पू. साध्वी श्री भाग्यलता श्रीजी म. की सिंहासन-तप की आराधना ।

❀ पू. साध्वी श्री भव्यगुणाश्रीजी म. की श्रीवर्द्धमान तप की ३५वीं-३६वीं ओली की आराधना ।

❀ पू. साध्वी श्री दिव्यप्रज्ञाश्रीजी म. की श्रीवर्द्धमान तप की ६२वीं-६३वीं ओली की आराधना ।

❀ पू. साध्वी श्री सिद्धिरक्षिताश्रीजी म. के ३१ उपवास की आराधना ।

श्रावक-श्राविका वर्ग में—

❀ **तपस्त्रियों की नामावलि** ❀

उपवास

३१—सौ. पानीबाई मोहनलालजी

३०—सौ. मंजुबाई भँवरलालजी

मूर्ति की सिद्धि एवं मूर्तिपूजा की प्राचीनता—२६६

- ३०-सौ. अंशीबाई मूलचन्दजी
 ३०-सौ. भाग्यवन्ती प्रवीणकुमारजी
 ३०-सौ. रतनबाई निहालचंदजी
 ३०-सौ. कस्तूरबाई पुखराजजी
 ३०-सौ. चन्दनबाई जयचंदजी
 ३०-सौ. देवीबाई कालूरामजी
 ३०-सौ. पुष्पाबाई केसरीमलजी
 ३०-सौ. कमलाबाई ताराचन्दजी
 २१-शा. शान्तिलाल निहालचन्दजी फागरिया
 १६-शा. निहालचन्दजी सुखलालजी दोशी
 १६-शा. मोहनलालजी मीठालालजी साकरिया
 १६-जीवीबाई गिरधारीलालजी सोलंकी
 १६-मोतीबाई देवराजजी मांडलगोत्र
 १६-पेरवीबेन विमलचंदजी साकरियां
 १६-धाकूबेन राजमलजी विशभगोत्र
 १५-शा. अशोककुमार मोहनलालजी साकरियां
 १५-शा. विमलचन्द मोहनलालजी साकरियां
 १५-गुणवन्तीबेन अशोककुमारजी साकरियां
 १५-सुशीलाबेन भँवरलालजी साकरियां
 १५-राधाबेन हेमराजजी साकरियां
 १५-सुकीबेन जयचंदजी गोदाणी

- १५—ताराबेन रूपचन्दजी अम्बावत
 १५—सुकनबेन खीमराजजी धनीवाला
 १५—नेनुबेन मोतीलालजी अम्बावत
 १५—मंजुलाबेन मानमलजी अम्बावत
 १५—पवनबेन अमृतलालजी
 १५—संगीताकुमारी जावंतराजजी नेमावत
 ११—शा. महेशकुमार मोहनलालजी साकरियां
 ११—शा. हस्तीमलजी पुखराजजी गोदाणी
 ६—वसन्तीबेन चन्दनमलजी परमार
 ६—भगीबेन पुखराजजी फागणियां
 ६—सूरजबेन उम्मेदमलजी फागणियां
 ६—सतरुबेन जावन्तराजजी साकरियां
 ६—सुकनबेन भैरूलालजी अम्बावत
 ६—चंचलबेन केशरीमलजी अम्बावत
 ६—मोतीबेन मोहनलालजी कोठारी
 ८—शा. मोहनलालजी भागचन्दजी अम्बावत
 ८—शा. जयचन्दजी पन्नालालजी अम्बावत
 ८—शा. जितेन्द्रकुमार मूलचन्दजी
 ८—शा. मूलचन्दजी सुखलालजी दोशी
 ८—शा. उम्मेदमल पुखराजजी फागणियां
 ८—शा. हेमराजजी पुखराजजी साकरियां

- ८-शा. कालूरामजी अमीचन्दजी साकरियां
 ८-शा. मीठालालजी देवीचन्दजी गुर्जर
 ८-शा. विजयकुमारजी केशरीमलजी अम्बावत
 ८-शा. इन्दरमल मोहनलालजी अम्बावत
 ८-शा. पन्नालालजी अनराजजी
 ८-शा. विनोदकुमार निहालचन्दजी
 ८-शा. अशोककुमार जावंतराजजी नेमावत
 ८-शा. जुगराजजी पुखराजजी नेमावत
 ८-सुमित्राकुमारी अमृतलालजी फागणियां
 ८-चन्द्राबेन जुगराजजी नेमावत
 ८-डिम्पल कुमारी राजमलजी अम्बावत
 ८-पुष्पाबेन अशोककुमारजी नेमावत
 ८-वसन्तीबेन कपूरचन्दजी गुर्जर
 ८-पुष्पाबेन देवराजजी साकरियां
 ८-घीसीबाई कालूरामजी साकरियां
 ८-कन्याबेन ताराचन्दजी गुर्जर
 ८-सतकुबेन हस्तीमलजी गुर्जर
 ८-विद्याबेन रतनचन्दजी गोदाणी
 ८-उमरावबेन जवेरचन्दजी मलरेचा
 ८-ललिताबेन फूलचन्दजी अम्बावत
 ८-पानीबेन कुन्दनमलजी अम्बावत

- ८-मीनाक्षीकुमारी जयचन्दजी अम्बावत
- ८-तीजोबेन अनराजजी गोदाणी
- ८-पोपटबेन इन्दरमलजी अम्बावत
- ८-हस्तुबाई शान्तिलालजी फागणिया
- ८-कलावती शान्तिलालजी फागणिया
- ८-संगीताकुमारी मूलचन्दजी
- ८-मुमुक्षु रेखाबेन अगवरी गाँव की
- ८-पानीबेन अमीचन्दजी गुर्जर
- ८-भाग्यवंतीबेन इन्दरमलजी गुर्जर
- ८-शान्ताबेन देवराजजी साकरियां
- ८-वसन्तीबेन शेषमलजी साकरियां
- ८-चौधरी मोड़ाराम धनारामजी सीरवी

तदुपरान्त-सातवाले, पाँचवाले भी थे । अट्टमवाले तो अनेक थे ।

[६]

नवाहिनका-महोत्सव

पर्वाधिराज श्री पर्युषणा महापर्व की हुई मंगल आराधना तथा चतुर्विध संघ में हुई विविध प्रकार की तपश्चर्याओं के निमित्त एवं जैनधर्म दिवाकर-राजस्थान

दीपक-मरुधर-देशोद्धारक पूज्यपाद आचार्य भगवन्त श्रीमद् विजय सुशील सूरीश्वरजी महाराजश्री के ७३वें जन्म दिवस की उजवणी प्रसङ्गे देसूरी श्री जैनसंघ की ओर से श्री जिनेन्द्र भक्ति स्वरूप भादरवा सुद पंचमी से भादरवा सुद १३ तक 'नवाह्निका महोत्सव' का आयोजन हुआ ।

१-भादरवा सुद ५ मंगलवार दिनांक ५-९-१९८९ के दिन प्रातः परम शासनप्रभावक पूज्यपाद आचार्य भगवन्त श्रीमद् विजय सुशील सूरीश्वरजी म. सा. के पुनीत पगलियाँ चतुर्विध संघ तथा बैंड युक्त श्रीमान् मोहनलालजी मीठालालजी के घर पर हुए । वहाँ ज्ञान-पूजन, प्रतिज्ञा एवं मांगलिक श्रवण के पश्चाद् संघपूजा हुई । अट्टाई में लगाकर ३१ उपवास करने वालों को तथा अन्य विविध तपश्चर्या करने वालों को पारणे कराने का सौभाग्य इन्हीं श्रीमान् मोहनलालजी मीठालालजी को प्राप्त हुआ । स्वामीवात्सल्य भी हुआ ।

श्री पंचकल्याणक पूजा-प्रभावना, आंगो-रोशनी भावना आदि के आयोजन शा. कालूरामजी अनोपचंदजी साकरियां परिवार की ओर से हुए ।

२-❖ भादरवा सुद ६ बुधवार दिनांक ६-९-१९८९ के दिन प्रातः पूज्य साध्वी श्री सिद्धिरक्षिता श्रीजी म. के ३१ उपवास की तपश्चर्या के पारणा निमित्त पूज्यपाद आचार्य भगवन्त ने चतुर्विध संघ सहित शा. जीवराजजी गोदाणी के घर पर पगलियाँ किये । वहाँ ज्ञानपूजन, प्रतिज्ञा एवं मांगलिक के बाद संघपूजा हुई ।

उसी तरह श्रीमान् वच्छराजजी हजारीमलजी के घर पर भी पगलियाँ हुए । वहाँ पर भी संघपूजा हुई ।

❖ पू. साध्वी श्री भव्यगुणा श्रीजी म. के वर्द्धमान तप की ३५वीं व ३६वीं आयम्बिल ओली की तपश्चर्या के पारणा के प्रसंग पर परम पूज्य आचार्य म. सा. आदि चतुर्विध संघ समेत बैन्ड युक्त शा. अनराजजी हिम्मतमलजी गोदाणी के घर पर पगलियाँ करने के लिये पधारे । वहाँ पर ज्ञानपूजन, प्रतिज्ञा एवं मांगलिक के बाद संघपूजा हुई ।

❖ उसी दिन शा. उम्मेदमलजी कालूरामजी अनोपचन्दजी साकरियां परिवार की ओर से 'श्री ऋषि मण्डल पूजन' विधिपूर्वक पढ़ाया गया । तथा प्रभावना,

मूर्ति की सिद्धि एवं मूर्तिपूजा की प्राचीनता ३०२

आंगी रोशनी एवं रात को भावना भी उनकी तरफ से हुई ।

✽ स्वामिवात्सल्य शा. उम्मेदमलजी जेठाजी गोदाणी परिवार की ओर से हुआ ।

३-भादरवा सुद ७ गुरुवार दिनांक ७-९-८९ के दिन कुम्भस्थापना, अखण्ड दीपक-स्थापना तथा जवारा-रोपण का कार्य हुआ । तपस्वी महानुभावों का भी बहुमान हुआ । भव्य वरघोड़ा निकाला । स्वामिवात्सल्य श्रीमान् सरेमलजी गंगारामजी गोदाणी परिवार की ओर से हुआ । श्री ज्ञानावरणीय कर्मनिवारण की पूजा प्रभावना-आंगी-रोशनी-भावना श्रीमान् सागरमलजी खीम-राजजी कोठारी परिवार की ओर से हुई ।

४-भादरवा सुद ८ शुक्रवार दिनांक ८-९-८९ के दिन तपस्वी भाई-बहिनों का सम्मान-समारोह श्रीसंघ की ओर से हुआ । 'श्री पार्श्वपद्मावती पूजन' श्रीमान् मीठालाल भीमराजजी साकरियां परिवार की तरफ से विधिपूर्वक पढ़ाई गई । स्वामिवात्सल्य श्रीमान् हिम्मत-मलजी दलीचन्दजी नेमावत परिवार की ओर से हुआ ।

उसीदिन-(१) श्रीमान् मोहनलालजी सागरमलजी

(२) श्रीमान् कालूरामजी केशरीमलजी (३) श्रीमान् मोहनलालजी हिम्मतमलजी (४) श्रीमान् गिरधारीलालजी शोभाचन्दजी (५) श्रीमान् मोहनराजजी कुन्दनमलजी (६) श्रीमान् जावन्तराजजी पुखराजजी इन सभी के घर पर पगलियाँ और संघपूजा हुई !

५-भादरवा सुद ९ शनिवार दिनांक ९-२-८९ के दिन छप्पन दिग्कुमारी का स्नात्र महोत्सव का भव्य कार्यक्रम हुआ। स्वामिवात्सल्य श्रीमान् घासीरामजी गुलाबचन्दजी फागणियां परिवार की तरफ से हुआ। श्रीदर्शनावरणीय कर्मनिवारण - पूजा - प्रभावना - आंगी - रोशनी - भावना श्रीमान् दौलतराजजी गुर्जरगोत्र परिवार की तरफ से हुई।

६-भादरवा सुद १० रविवार दिनांक १०-९-८९ के दिन श्रीवामामाता का थाल का भव्य जुलूस निकाला गया। प्रातः स्वामिवात्सल्य श्रीमान् राजमलजी सोलंकी की तरफ से हुआ। शाम का स्वामिवात्सल्य श्रीमान् हंसराज रतनचन्दजी फागणिया परिवार की तरफ से हुआ। श्रीवेदनीय कर्मनिवारण पूजा-प्रभावना-आंगी-रोशनी-भावना भी उन्हीं की ओर से हुई।

७-भादरवा सुद ११ सोमवार दिनांक ११-६-८६ के दिन श्रीजलयात्रा का भव्य वरघोड़ा निकाला । श्री अन्तराय कर्म निवारण की पूजा-प्रभावना-भावना-आंगी-रोशनी-भावना श्रीमान् कालूराम एवं समस्त गुर्जर गोता परिवार की ओर से हुई । स्वामिवात्सल्य श्रीमान् पुखराज भैरूलालजी फागणियां परिवार की तरफ से हुआ ।

८-भादरवा सुद १२ मंगलवार दिनांक १२-६-८६ के दिन परमपूज्य आचार्य देवश्रीमद् विजय सुशील सूरीश्वरजी म. सा. के ७३ वें जन्म-दिन-समारोह का कार्यक्रम व्याख्यान में रहा ।

मुम्बई-श्रीअगासी तीर्थ में प्रतिष्ठा के प्रसंग पर पूज्यपाद आ. म. सा. को पधारने की विनंति करने के लिये आये हुए श्रीमान् चन्दुभाई बांधणी वाले की ओर से संघपूजा हुई ।

तदुपरान्त श्रीरानीगांव संघ के सद्गृहस्थों की तरफ से संघपूजा हुई । चांदराई से वन्दना हेतु आये हुए एक सद्गृहस्थ की ओर से भी संघपूजा हुई ।

पूज्य मुनिराज श्री रविचन्द्रविजय जी महाराज के श्रीमहानिशीथ सूत्र के योग की पूर्णाहुति निमित्त चतुर्विध

संघ के साथ पूज्यपाद आचार्य म. सा. के पुनीत पगलिये श्रीमान् भैरूलालजी पूनमचन्दजी अम्बावत परिवार के घर पर हुए ।

उसी दिन नवग्रहादिपाटला पूजन हुआ । तथा श्रोबृहद्शान्तिस्नात्र श्रीमान् धनराजजी जसराजजी कोठारी परिवार की ओर से विधिपूर्वक पढ़ाया गया । स्वामि-वात्सल्य श्रीमान् हिम्मतमलजी नेमावत परिवार की तरफ से हुआ ।

६-भादरवा सुद १३ बुधवार दिनांक १३-२-८६ के दिन अष्टादश अभिषेक का कार्यक्रम हुआ तथा सत्तरहभेदी पूजा-प्रभावना-आंगी-रोशनी-भावना श्रीमान् सुखलालजी सूरतरामजी दोशी परिवार की ओर से हुई । इस तरह नवाह्निका श्रीजिनेन्द्रभक्ति महोत्सव की पूर्णाहुति हुई ।

॥ भादरवा [आसो] वद २ रविवार दिनांक १७-६-८६ के दिन धणीगाँव वाले श्रीमान् खीमराजजी की धर्मपत्नी सुगनबाईकी मासखमणकी तपश्चर्या निमित्ते शा.वच्छराजजी हजारीमलजी के घर पर पगलिया हुए । शा. खीमराजजी ने सजोड़े ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा की और संघ की नौकारसी भी की । महोत्सव में और महोत्सव के बाद में भी

जिनवाणी-श्रवण का लाभ श्रीसंघ को अर्हनिश मिलता ही रहा ।

[७]

❀ पंचाह्निका-महोत्सव का प्रारम्भ ❀

भादरवा (आसो) वद ६ बुधवार दिनांक २०-९-८६ के दिन व्याख्यान में संघपूजा चारणस्मावाले वन्दनार्थे आये हुए शा. अरविन्दभाई एवं शा. महेन्द्रभाई आदि ने दो-दो रुपये से की । उसी दिन पू. साध्वी श्रीसिद्धिरक्षिता श्रीजी कृत ३१ उपवास की तपश्चर्या निमित्त उपाश्रय बहिनों की तरफ से पंचाह्निका-महोत्सव का प्रारम्भ हुआ । प्रतिदिन व्याख्यान-पूजा-प्रभावना-आंगी-रोशनी और रात को भावना का कार्यक्रम रहा ।

❀ भादरवा (आसो) वद १० रविवार दिनांक २४-९-८६ के दिन देसूरी में बँधे हुए विशाल मण्डप में जैन-जैनेत्तर विशाल आम जनता के समक्ष जैनधर्म-दिवाकर परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय सुशील सूरेश्वरजी म. सा. का तथा पूज्य मुनिराज श्री जिनोत्तम विजयजी म. का प्रभाविक जाहेर व्याख्यान हुआ ।

❀ भादरवा (आसो) वद १३ बुधवार दिनांक

२७-६-८६ के दिन पूज्य साध्वीश्री दिव्यप्रज्ञा श्रीजी म. कृत श्री वर्द्धमान तप की ६२वीं ओली की पूर्णाहुति के प्रसङ्ग पर परम पूज्य आचार्य म. सा. ने चतुर्विध संघ के साथ बाजते गाजते श्रीमान् जावन्तराजजी गणेशमलजी के घर पर पगलियाँ किये । वहाँ पर ज्ञानपूजन तथा मांगलिक प्रवचन के पश्चाद् संघपूजा हुई ।

❀ आसो सुद २ रविवार दिनांक १-१०-८६ के दिन व्याख्यान में मुम्बई विरले पारले वाले श्रीमान् जसवंत भाई कस्तूरचन्दजी ने संघपूजा की ।

[८]

आसो मास की शाश्वती ओली में

श्री उपधान तप का प्रारम्भ—

देसूरी चातुर्मास में पर्वाधिराज श्री पर्युषण महा-पर्व में बारह मासखमण आदि की विविध तपश्चर्या, श्री पर्युषण महापर्व की अनुपम आराधना एवं श्री पर्युषण महापर्व के पश्चात् महामहोत्सव का सुन्दर आयोजन तथा देवद्रव्यादि में अभिवृद्धि रूप विविध बोलियाँ आदि रेकार्ड रूप में हुई हैं । सोने में सुगन्ध की तरह चातुर्मास के स्वर्ण पृष्ठों में मंगलकारी श्री उपधान

तप की आराधना भी जैनशासन की शोभा में अभिवृद्धि करती है ।

आसो सुद ६ शुक्रवार दिनांक ६-१०-८६ के दिन से शाश्वती ओली का प्रारम्भ हुआ ।

नौ दिन आयम्बिल कराने का लाभ एक सद्गृहस्थ ने लिया ।

विजयादशमी के दिन से देसूरी में श्री उपधान तप की आराधना कराने वाले देसूरीनिवासी स्वर्गीय श्रीमान् पन्नालालजी पूनमचन्द्रजी अम्बावत परिवार की ओर से ५१ दिन के श्री जिनेन्द्रभक्ति महोत्सव का भी आज के दिन से ही प्रारम्भ हुआ ।

प्रतिदिन प्रवचन-पूजा-प्रभावना-आंगी-रोशनी तथा रात को भावना का कार्यक्रम चालू रहा ।

आसो सुद १० (विजयादशमी) मंगलवार दिनांक १०-१०-८६ के दिन से श्रीमान् मोतीलाल-मानमल-छगनलाल-फूलचन्द्र-कुन्दनमलजी अम्बावत की ओर से महामंगल श्री उपधान तप की आराधना का प्रारम्भ हुआ । उसमें ७५ भाई-बहिनों ने श्री उपधान

तप की आराधना विधिपूर्वक करने के लिये मंगल-प्रवेश किया ।

✽ आसो सुद १५ शनिवार दिनांक १४-१०-८६ के दिन पूज्य साध्वी श्री हेमलता श्रीजी म. द्वारा शाश्वती ओली में की हुई मौनपने सहित आराधना तथा अट्टमतप पूर्णाहुति के प्रसंग पर वन्दनार्थ आये हुए जेसर वाले श्रीमान् शान्तिलाल मेहता की ओर से व्याख्यान में संघपूजा हुई ।

✽ आसो (कार्तिक) वद ८ रविवार दिनांक २२-१०-८६ के दिन सोजत रोड से वन्दनार्थ आये हुए संघ के सदगृहस्थों की तरफ से व्याख्यान में संघ-पूजा हुई ।

✽ आसो (कार्तिक) वद ९ सोमवार दिनांक २३-१०-८६ के दिन श्रीमान् गिरधारीलालजी शोभा-चन्दजी की ओर से प्रातः पूजा-प्रभावना हुई तथा साथ में स्वामिवात्सल्य भी हुआ ।

[६]

✽ नूतनवर्ष का प्रारम्भ ✽

१-कार्तिक सुद १ सोमवार दिनांक ३०-१०-८६ के

मूर्ति की सिद्धि एवं मूर्तिपूजा की प्राचीनता-३१०

दिन श्रीवीर सं. २५१६ विक्रम सं. २०४६ तथा श्रीनेमि सं. ४१ नूतनवर्ष का प्रारम्भ हुआ ।

श्रीसंघ को मांगलिक स्मरण, श्रीगौतमस्वामी रास तथा अष्टक एवं शासनसम्राट् अष्टक श्रवण करने का सुन्दर लाभ मिला । श्रीस्थापनाचार्य का मंगल-पूजन पूज्य आचार्य म. सा. के द्वारा हुआ । जिनमन्दिर में पूजा-प्रभावनादि का कार्यक्रम चालू रहा ।

उसी दिन पू. साध्वीश्री भव्यगुणा श्रीजी कृत श्रीवर्द्धमान तप की ३७वीं ओली की तथा पू. साध्वीश्री मुदिता श्रीजी कृत श्रीवर्द्धमान तप की ४७वीं ओली की पूर्णाहुति के पारणा के प्रसंग पर राजस्थानदीपक परम पूज्य आचार्य म. सा. ने चतुर्विध संघ युक्त बाजते-गाजते श्रीमान् केसरी-मलजी रिखबाजी के घर पर पगलियां किये । वहाँ भी ज्ञानपूजन, मांगलिक प्रवचन तथा प्रतिज्ञा के पश्चाद् संघपूजा हुई ।

२-कार्तिक सुद २ मंगलवार दिनांक ३१-१०-८६ के दिन व्याख्यान में संघपूजा श्रीमान् अचलचन्दजी पुखराजजी रानी स्टेशन वालों की तरफ से हुई ।

३-कार्तिक सुद ३ बुधवार दिनांक १-११-८६ के दिन

मूर्ति की सिद्धि एवं मूर्तिपूजा की प्राचीनता-३११

व्याख्यान में घाणेराववाले श्रीमान् सोहनलाल मन्नालालजी की ओर से संघपूजा हुई ।

४-कार्तिक सुद ४ गुरुवार दिनांक २-११-८६ के दिन व्याख्यान में श्रीमान् ताराचन्दजी धर्गीवाले की तरफ से संघपूजा हुई । दूसरी चौथ के दिन भी व्याख्यान के बाद प्रभावना हुई ।

❀ ज्ञानपंचमी की आराधना ❀

कार्तिक सुद ५ [ज्ञानपंचमी] शनिवार दिनांक ४-११-८६ के दिन उपाश्रय में ज्ञान शणगारने में आया । व्याख्यान में सम्यग्ज्ञान की महत्ता एवं आराधना पर पूज्यपाद आचार्य म. सा. ने प्रभाविक प्रवचन किया । दोपहर में देववन्दन भी हुआ । प्रतिदिन व्याख्यान में प्रभावना-उपधान कराने वाले की ओर से आज भी हुई ।

❀ चौमासी पूर्णाहुति की आराधना ❀

कार्तिक सुद १४ रविवार दिनांक १२-११-८६ चातुर्मास पूर्णाहुति का दिन होने से श्रीसंघ को चौमासी व्याख्यान श्रवण करने का लाभ मिला । चौमासी देववन्दन तथा चौमासी प्रतिक्रमण भी सानन्द हुआ । उसी

दिन वन्दनार्थ आये हुए धनला संघ के सद्गृहस्थों की तरफ से देसूरी जैनसंघ के प्रत्येक घर दीठ दो-दो रुपये की प्रभावना हुई ।

❀ चातुर्मास परावर्त्तन ❀

कार्तिक सुद १५ सोमवार दिनांक १३-११-८६ के दिन मरुधरदेशोद्धारक परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय सुशीलसूरीश्वरजी म. सा. आदि ठाणा ६ का तथा पूज्य साध्वीश्री हेमलता श्रीजी आदि ठाणा ८ का एवं पूज्य साध्वीश्री स्नेहलता श्रीजी आदि ठाणा ११ का चातुर्मास परावर्त्तन श्रीमान् देवराजजी मूलचन्दजी साकरियां की तरफ से उन्हीं के घर पर हुआ । वहाँ पर ज्ञानपूजन, मांगलिक प्रवचन तथा संघ प्रतिज्ञा होने के पश्चाद् संघपूजा तथा मोदक की प्रभावना हुई ।

श्री शत्रुञ्जय महातीर्थपट्ट के सामने चतुर्विध संघ युक्त पूज्यपाद आचार्य म. सा. ने चैत्यवन्दन किया तथा श्री शत्रुञ्जय महातीर्थ के २१ खमासमण दिये । उसी दिन ६६ प्रकारी पूजा प्रभावना युक्त पढ़ाने में आई ।

❀ कार्तिक (मागसर) वद २ मंगलवार दिनांक १४-११-८६ के दिन वन्दनार्थ आये हुए चाणस्मा वाले

श्रीमान् सेवन्तीलाल कस्तूरचन्द की ओर से तथा चाणस्मा वाले श्रीमान् दीपक भाई चन्द्रलाल बेचरदास की तरफ से व्याख्यान में संघपूजा हुई ।

* कार्तिक (मागसर) वद ३ बुधवार दिनांक १५-११-८६ के दिन मेवाड़देशोद्धारक पूज्यपाद आचार्य श्रीमद् विजय जितेन्द्र सूरेश्वरजी म. सा. आदि स्वागत पूर्वक पधारे । दोनों आचार्य महाराज के संमिलन से श्रीसंघ के आनंद में अभिवृद्धि हुई । श्री उपधान तपमाला का ११ छोड़ का उद्यापन एवं पूजनादि युक्त नवाह्निका महोत्सव का प्रारम्भ आज के दिन हुआ ।

* कार्तिक (मागसर) वद ५ शुक्रवार दिनांक १७-११-८६ के दिन परम पूज्य आचार्यदेव की वन्दनार्थ श्रीमान् गुमानमलजी लोढा (भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश) पधारे ।

* कार्तिक (मागसर) वद ६ शनिवार दिनांक १८-११-८६ के दिन परमपूज्य आचार्य भगवन्ते व्याख्यान में पूज्य श्री भगवतीजी सूत्र के प्रथम शतक की पूर्णाहुति की । अन्त में भी पूर्व की माफिक प्रथम पूजन गिन्नी से और चार पूजन रूपानाणा से हुए । श्रीमान् कालू-

रामजी ने आदेश लेकर जुलूस द्वारा पूज्य श्री भगवतीजी सूत्र की साथ पूज्य आचार्य म. सा. आदि चतुर्विध संघ के भी अपने घर पर पगलियाँ करवाये। श्री सिद्ध-गिरिजी महातीर्थ की ६६ यात्रा विधिपूर्वक कराने की प्रतिज्ञा करने के पश्चाद् संघ पूजा की।

श्रीमान् ताराचन्दजी ने भी अपने घर पर पगलियाँ करवाकर संघ पूजा की।

उसी दिन 'श्री सिद्धचक्र महापूजन' श्रीमान् देवराज जी मूलचन्दजी की ओर से विधिपूर्वक पढ़ाया गया।

❁ कार्तिक (मागसर) वद ७ रविवार दिनांक १६-११-८६ के दिन 'श्री पार्श्वपद्मावती पूजन' श्रीमान् पन्नालालजी जूनमचन्दजी अम्बावत परिवार की तरफ से विधिपूर्वक पढ़ाया गया।

❁ कार्तिक (मागसर) वद ८ सोमवार दिनांक २०-११-८६ के दिन सादड़ी में चातुर्मास करके बिहार द्वारा प्रवचनकार पूज्य पंन्यास श्री कुन्दकुन्द विजयजी गणिवर्य तथा पू. मुनि श्री विनयधर्म विजयजी म. पूज्यपाद आचार्य म. सा. को वन्दन करने के लिए देसूरी पधारे। पूज्यपाद आचार्य म. सा. के एवं पूज्य पंन्यासजी

म. के प्रवचन का लाभ श्रीसंघ को मिला । व्याख्यान के बाद एक सदगृहस्थ के घर पर पूज्यपाद आचार्य म. सा. तथा पूज्य पंन्यासजी म. आदि चतुर्विध संघ युक्त वाजते-गाजते पधारे । वहाँ भी संघपूजा हुई । उसी दिन 'श्री ऋषि मण्डल पूजन' श्रीमान् मीठालालजी भीम-राजजी सांकरिया परिवार की ओर से विधिपूर्वक पढ़ाया गया ।

❁ कार्तिक (मागसर) वद ६ मंगलवार दिनांक २१-११-८६ के दिन प्रातः मेवाड़-दीपक पूज्य पंन्यास-प्रवर श्री रत्नाकर विजयजी म. सा. एवं पूज्य मुनिराज श्री राजशेखर विजयजी म. आदि के पधारने से श्रीसंघ के आनन्द में अभिवृद्धि हुई । कुम्भस्थापनादि तथा नव-ग्रहादि पाटला पूजन हुआ । दोपहर में पूजा पढ़ाने के पश्चाद् श्री उपधान तप की माला का एवं जल यात्रा का रथ, इन्द्रध्वज, हाथी, घोड़े तथा बैन्ड आदि युक्त भव्य वर घोड़ा निकाला गया ।

उसी दिन मुमुक्षुबालिका संगीता बहिन का देसूरी संघ की ओर से बहुमान समारोह हुआ । रात को माला की बोलियों का कार्यक्रम भी अच्छा रहा ।

श्री उपधान तप मालारोपण समारोह

कार्तिक (मागसर) वद १० बुधवार दिनांक २२-११-८६ के दिन प्रातः विशाल मण्डप में परमपूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय सुशील सूरीश्वरजी म. सा. की शुभ निश्चा में, पूज्य पंन्यास श्री रत्नाकर विजयजी म. तथा पूज्य पंन्यास श्री कुन्दकुन्द विजयजी म. आदि के सान्निध्य में एवं विशाल जैन-जैनेतर समुदाय की उपस्थिति में, श्री जिनेश्वर भगवान की चार मूर्तियों से समलंकृत समवसरण यानी नाण समक्ष विधिपूर्वक श्री उपधान तप मालारोपण आदि का कार्य परम शासन प्रभावनापूर्वक सुसम्पन्न हुआ । उस समय वयोवृद्ध श्रीमान् कालूरामजी भाई ने सजोड़े ब्रह्मचर्य व्रत भी विधिपूर्वक उच्चरा ।

दोपहर में बृहद्शान्तिस्नात्र (अष्टोत्तरी शान्ति-स्नात्र) उपधान कराने वाले श्रीमान् मोतीलालजी कुन्दनमलजी आदि अम्बावत परिवार की ओर से विधिपूर्वक पढाया गया और श्रीसंघ का स्वामिवात्सल्य भी उनकी तरफ से हुआ ।

शाम को परम पूज्य आचार्य महाराज श्री ने अपने

श्रमण परिवार सहित सोजत सिटी तथा आनन्दपुर-कालू जिनमन्दिर की प्रतिष्ठा करने के लिए विहार किया। श्रीमान् उम्मेदमलजी के घर पगलिए करके और श्रीमान् मोहनलालजी मीठालालजी के गाँव के बाहर आए हुए नोहरे में श्रीसंघ को मांगलिक सुनाकर आचार्य-श्री विहार कर श्री सुमेरुतीर्थ में पधारे।

❀ कार्तिक (मागसर) वद ११ बुधवार दिनांक २३-११-८६ के दिन तपस्वियों के पारणे हुए तथा सत्तरह-भेदी पूजा आदि कार्य हुए। श्री उपधान तप मालारोपण निमित्त ५१ दिन का महामहोत्सव पूर्ण हुआ।

विक्रम सं. २०४६ के वर्ष में की हुई

शासनप्रभावना की संक्षिप्त नोंध

शासनसम्राट् समुदाय के सुप्रसिद्ध, जैनधर्मदिवाकर राजस्थान-दीपक-मरुधर-देशोद्धारक - परमपूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय सुशील सूरीश्वरजी म. सा. देसूरी नगर में परमशासन प्रभावना पूर्वक भव्य चातुर्मास समापन के पश्चात् श्री उपधान तप माला महोत्सव सम्पन्न करवाकर सोजत सिटी पधारे, जहाँ आपका अपूर्व स्वागत हुआ।

वहाँ श्री शान्तिनाथ जिनमन्दिर की प्रतिष्ठा एवं अपने शिष्यरत्न सुमधुर प्रवचनकार पूज्य मुनिराज श्री जिनोत्तम विजयजी म. को गरिपद-प्रदान महामहोत्सव सम्पन्न करवाकर, पूज्यपाद आचार्य म. श्री आनन्दपुर-कालू गाँव में स्वागत सहित पधारे। वहाँ पर जीर्णोद्धार कृत श्री आदिनाथ जिन मन्दिर की मंगलकारी प्रतिष्ठा का कार्य सम्पन्न करवाया। अनन्तर पूज्यश्री की पावन निश्चा में मेड़ता सिटी से संघ के साथ मेड़ता रोड की पदयात्रा, मेड़ता रोड श्री फलवृद्धि पार्श्वनाथ जैन तीर्थ पर पौष दशमी के सामुदायिक अट्टम, सोजत रोड में उद्यापन महोत्सव आदि कार्य सम्पन्न हुए। फिर पूज्यपाद आचार्य म. श्री अगवरी पधारे।

अगवरी नगर में श्री वासुपूज्य स्वामी जिनमन्दिर में श्री चौमुखजी भगवान की प्रतिष्ठा तथा आचार्यपद-प्रदान के रजत जयन्ती निमित्त ११ छोड़ के उजमणा युक्त महामहोत्सव सम्पन्न हुआ। सांचोड़ी नगर में श्री पार्श्वनाथ जिनमन्दिर की प्रथम वर्षगाँठ निमित्त भव्य महोत्सव कार्य सम्पन्न होने के पश्चात् मेवाड़-भीलवाड़ा नगर में प्रतिष्ठा महोत्सव, भीलवाड़ा से बनेड़ा तीर्थ का पदयात्रा संघ, श्री जोरावलाजी तीर्थ पर चैत्रमासीय

शाश्वती श्री नवपदजी की ओली की आराधना, शिवगंज शहर में भव्य उद्यापन-महोत्सव, जवाली से बस यात्रा संघ का प्रयाण इत्यादि कार्य अपने मार्गदर्शन में सम्पन्न करवाकर पूज्यश्री जावाल में भव्य स्वागतपूर्वक पधारे । जावाल नगर में जिनमन्दिरों की वर्षगाँठ, पूज्य गणेश श्री जिनोत्तम विजयजी महाराज को पंन्यासपद-प्रदान-महोत्सव तथा तपस्विनी पूज्य साध्वीश्री स्नेहलता श्रीजी म. के श्री वर्द्धमान तप की ढरवीं ओला निमित्त ४१ छोड़ का ऐतिहासिक भव्य उजमणा महोत्सव कार्य सम्पन्न करवाकर आषाढ़ सुद १० सोमवार दिनांक २-७-१९९० के दिन परम शासन-प्रभावक पूज्यपाद आचार्य म. सा. तथा पूज्य पंन्यासजी म. आदि ने भव्य स्वागत पूर्वक श्री धनला नगर में चातुर्मास हेतु प्रवेश किया ।



सद्वचनमृत

- दुषम-काल जिन-बिम्ब जिनागम भवियणकुं आधारा !
- चित्त प्रसन्ने रे पूजन फल कह्युं !
- जिनप्रतिमा जिनवर सम भाखी सूत्रघणां छे साखी !

प्रभु की पूजा का पुण्यफल

सयं पमज्जणे पुण्णं, सहस्सं च विलेवणे ।

सय साहस्सिआ माला, अणंतं गीअवाईए ॥

अर्थ—श्री जिनेश्वर भगवान की मूर्ति-प्रतिमा का प्रमार्जन करते हुए सौ गुना पुण्य, विलेपन करते हुए हजार गुना पुण्य, पुष्प-फूल की माला चढ़ाते हुए लाख गुना पुण्य और गीत गाते तथा वाजिन्त्र बजाते हुए अनंतगुना पुण्य उपार्जन होता है । □□□

जिनदर्शन तथा गुरुवन्दन का अनुपम प्रभाव

दर्शनेन जिनेन्द्राणां, साधूनां वन्दनेन च ।

न तिष्ठति चिरं पापं, छिद्रहस्ते यथोदकम् ॥

अर्थ—श्री जिनेश्वर देवों का दर्शन करने से तथा साधु पुरुषों को वन्दन करने से—छिद्रवाले हाथ में जिस तरह जल टिक नहीं सकता है, उसी तरह दीर्घकाल पर्यन्त पाप टिकता नहीं है । □□□

जिनेश्वर भगवान साक्षात् कल्पवृक्ष हैं
दर्शनाद् दुरितध्वंसी, वन्दनाद् वाञ्छितप्रदः ।
पूजनात् पूरकः श्रीणां, जिनः साक्षात् सुरद्रुमः ॥

अर्थ—श्री जिनेश्वरदेव का दर्शन पाप का विनाश करता है, वन्दन वाञ्छित को देने वाला होता है और पूजन लक्ष्मी को पूरने वाला होता है । इसलिए श्री जिनेश्वर भगवान साक्षात् कल्पवृक्ष हैं । □□□

जिनमन्दिर जाने का अपूर्व फल

संपत्तो जिणभवणे पावइ, छम्मासिअं फलं पुरिसो ।
संवच्छरिअं तु फलं, दारदेसट्ठिओ लहइ ॥

अर्थ—श्री जिनभवन को प्राप्त हुआ पुरुष छह मास के उपवास का फल प्राप्त करता है और द्वारदेशे अर्थात् गभारा के पास में पहुँचा हुआ पुरुष एक वर्ष के उपवास का फल प्राप्त करता है । □□□

अनन्त पुण्योपार्जन

पयाहियेण पावइ वरिस सयं फलं तत्रो जिणे महिए ।

पावइ वरिस सहस्सं अणंतं पुण्णं जिणे थुरिए ॥

अर्थ—प्रदक्षिणा देने से सौ वर्ष के उपवास का फल प्राप्त करता है । श्री जिनेश्वर भगवान की पूजा करने से एक हजार वर्ष के उपवास का फल प्राप्त करता है और श्री जिनेश्वरदेव की स्तुति करने से जीव अनन्त पुण्य का उपार्जन करता है । □□□

अपना मुख्य कर्तव्य

विश्व के प्रत्येक प्राणी को अपने जन्म, अपने जीवन और अपनी ज्ञान-विज्ञान-बुद्धि को सार्थक करने के लिये वीतराग विभु को मूर्ति-प्रतिमा के दर्शन, वन्दन एवं पूजन-पूजा तथा स्तुति-स्तवन-गीतगान-ध्यान इत्यादि शुभ कार्यों में अपना दिल अवश्यमेव जोड़ना चाहिए, यही अपना प्रधान मुख्य कर्तव्य है, क्योंकि जैसे वीतराग विभु-जिनेश्वर भगवान परमानंदमय हैं, वैसे ही उनकी विधि-विधानपूर्वक अंजनशलाका-प्राणप्रतिष्ठा की हुई मूर्ति-प्रतिमा है । □□□



卐 जिनागम और जिनमूर्ति 卐

अनादि और अनंतकालीन समस्त विश्व अक्षर-मय और आकार-आकृतिमय है ।

अपना परम पवित्र जैनागम शास्त्र अक्षरमय है, तथा वीतरागदेव श्री जिनेश्वर भगवान की मूर्तियाँ-प्रतिमाएँ आकार-आकृतिमय हैं । दोनों की अनन्यभावे अनुपम आराधना एवं उपासना अहर्निश अवश्य ही करनी चाहिए ।

दोनों में से एक की भी उपेक्षा करने से अपनी आत्मा कर्म से भारी होती है । अपन स्वयं उपेक्षित होकर सन्मार्ग से भ्रष्ट हो जाते हैं । ऐसी आत्मा को कभी भी न मोक्ष मिलता है और न शाश्वत सुख की प्राप्ति होती है ।

—सुशीलसूरि

